उत्तरतन्त्रशास्त्रम्

(संस्कृत मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

Uttaratantraśāstram

काशीनाथ न्यौपाने

Kashinath Nyaupane

INDIAN MIND

Uttaratantraśāstram

(Sanskrit Text with Hindi Translation)

Translated By

Kashinath Nyaupane
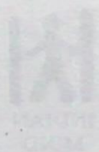
INDIAN
MIND

आर्यमैत्रेयनाथविरचितम्

उत्तरतन्त्रशास्त्रम्

(संस्कृत मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक
काशीनाथ न्यौपाने

विषयसूची

प्रकाशकीय 7

पूर्वपीठिका 9

आर्यमैत्रेयनाथविरचितम्
असङ्गकृतटीकया सहितं च नाम प्रथमः परिच्छेदः 33

अथ बोध्यधिकारो नाम द्वितीयः परिच्छेदः 149

अथ गुणाधिकारो नाम तृतीयः परिच्छेदः 165

अथ तथागतकृत्यक्रियाधिकारो नाम चतुर्थः परिच्छेदः 175

अथानुशंसाधिकारो नाम पञ्चमः परिच्छेदः 199

प्रकाशकीय

वज्रयान का यह अत्यन्त प्रसिद्ध **उत्तरतन्त्रशास्त्रम्** का प्रकाशन कर पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

यह ग्रन्थ प्रथमवार समग्र रूप में प्रकाशित हुआ है। इससे पहले इसके कुछ पटल ही रोमन लिपि में प्रकाशित हुए थे।

प्रस्तुत संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ होने से भी हिन्दी भाषी पाठकों के लिए तथा हिन्दी समझने वाले विद्यार्थी एवं तन्त्र साधकों के लिए नितान्त उपयोगी होगा - ऐसा मुझे विश्वास है।

विगत कई वर्षों से इस काम में एकाग्र होकर लगे हुए थे प्रो० डा० काशीनाथ न्यौपाने। उनके विद्वतापूर्ण श्रम का ही यह फल है, जो आज इसे पाठकों को सौंपने का मधुर, महत्त्वपूर्ण अवसर हमें प्राप्त हुआ है। प्रो० डा० न्यौपाने द्वारा अनुदित एवं सम्पादित अन्य तन्त्र ग्रन्थों की तरह ही यह भी आपके मन को भाएगा और हमें अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन में प्रेरणा प्राप्त होगी यह मुझे विश्वास है।

बौद्ध तन्त्रों का यह प्रकाशन कार्य इसी प्रकार जारी रखने के लिए हम कटिबद्ध हैं। आपके सहयोग की आवश्यकता है।

दिनांक २०१६, ७ मार्च
शिवरात्रि

दिलीप कुमार
इण्डिका बुक्स एवं इण्डियन माइंड

पूर्वपीठिका

आर्य मैत्रेयनाथ

आर्य मैत्रेयनाथ बोधिसत्व हैं तथा महायान सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य भी। महायान सत्रों में बह तवार इनका श्रद्धा सहित उल्लेख हुआ है तथा अनेक बोधिसत्त्वों को इन्हों ने ज्ञान दिया है यह उल्लेख बहुतायत रुप में उपलब्ध है। बोधिचर्या वतार में ......*मैत्रेयनाथ सुधानाय धीमान्* कहकर पुकारा गया है। आर्य मैत्रेय भावी बुद्ध के रुपमें भी प्रसिद्ध हैं तथा वे नित्य निरन्तर तुषित लोक में निवास करने का भी उल्लेख है। इनके कृतियों को देखने से तथा पूर्व-परवर्ती विद्वानों के कृतियों के अधार पर ईसवीय तीसरी शताव्दी में इनके अस्तित्वका पता चलता है। इन्होने ही असंगको तुषितलोक में ज्ञान दिया था यह जनश्रुति विद्वानों में प्रचलित है।

आर्य मैत्रेयनाथ नागार्जुन से परवर्ती तथा असंग, वसुबन्धु से पूर्ववर्ती आचार्य हैं। महायान सम्प्रदाय से उद्भुत दार्शनिक निकाय योगाचार दर्शन के प्रतिष्ठापक आचार्य मैत्रेयनाथ ही हैं। मैत्रेयनाथ द्वारा प्रस्थापित योगाचार के परवर्ती आचार्यों में असंग, वसुबन्धु, स्थिरमति, दिङ्नाग, धर्मपाल, शान्तिरक्षित और कमलशील विख्यात विद्वान् है। असंग ने मैत्रेयनाथ के सिद्धान्तों का योगाचार नाम दिया और बसुबन्धु ने विज्ञानवाद के नाम से इसकी व्याख्या की। आचार्य असंग को महायानी ज्ञान देने वाले मैत्रेयनाथ बोधिसत्व के रुप में एतिहासिक महापुरुष तथा योगाचार (विज्ञानवाद) के वास्तविक प्रतिष्ठापक हैं।

मैत्रेयनाथ का काल निर्णय बसुबन्धु की तिथि पर निर्भर करता है। मैत्रेयनाथ ने नागार्जुन की ...भवसक्रान्ति के व्याख्याता होने के कारण उनसे परवर्ती हैं। मैत्रेय ने नागार्जुन की कृतियों पर टीकाएँ लिखी थीं तथा उनसे प्रभावित थे फिर भी उन्होंने दर्शन में एक नया पथ योगाचार(विज्ञानवाद) का विकास किया जिसमें जागार्जुन के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों को स्वीकारा है। इनका काल तीसरी शताब्दी के उत्तरार्ध से चतुर्थ शताब्दी के उत्तरार्ध तक माना जाता है।

इनके पंचशास्त्र हैं १. अभिसमयालंकार कारिका, २.महायान सूत्रालंकार, ३.मध्यान्त विभंग, ४.धर्मधर्मता विभंग, ५. महायान उत्तर तंत्र।

असंग

बौद्ध योगाचार सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रुप में असंग का नाम प्रसिद्ध है। असंग का मत शून्यवाद और विज्ञानवाद के बीच बदलता रहा किन्त' अन्ततः उन्होंने *सर्वं विज्ञप्तिमात्रकम्* को ही स्वीकार किया। परमार्थ के द्वारा वसुबन्धु की चीनी में उपलब्ध जीवनी के अनसार पुरुषपुर (पेशावर) के एक कौशिक गौत्र के ब्राह्मण परिवार में असंग, वसुबन्ध एवं विरञ्चिवत्स नाम के तीन भाई उत्पन्न हुए थे। असंग ही सबसे बडे थे। इनसे छोटे वसुबन्धु थे। आरम्भ में असंग एवं वसुबन्धु ये दोनों भाई सर्वास्तिवादके अनुयायी थे। असंग ने वसुबन्धु को वृद्धावस्था में महायान की ओर प्रवर्तित किया था।

असंग ने मैत्रेय की सहायता प्रप्त करनेके लिए कुक्कत पाद पर्वत की गुहा में चिरकाल तक तपस्या की। तत्पश्चात् १२ वर्ष की तपस्या के बाद इन्हें मैत्रेय का दर्शन प्रप्त हुआ। मैत्रेय के पूछने पर असंग ने यह बताया कि वे महायान के प्रचार के लिए ज्ञान चाहते हैं। तत्पश्चत् असंग को मैत्रेय अपने साथ तुषित लोक ले गये। योगाचार भूमि के व्याख्याता के अनुसार वे

तुषित लोक में छह माह तक रहे थे और मैत्रेय से शिक्षा प्राप्त की थी। मैत्रेय से उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद सूत्र, योगचर्या तथा अन्य महायान सूत्रों को सीखा। असंग जिसने महायान सम्प्रदाय में तांत्रिक प्रवृत्तियों को समन्वित किया। उन पर नागार्जुन का गहरा प्रभाव था परन्तु उन्होंने एक भिन्न प्रकार की दार्शनिक प्रणाली को विकसित किया जो बौद्ध दर्शन में योगाचार दर्शन के रुप में प्रसिद्ध है। विज्ञानवाद के विकास में असंग ने नागार्जुन के कुछ आधारभूत विचारों को स्वीकार किया है। असंग ने नागार्जुन की कृतियों पर भी टीकाएँ लिखी थीं।

प्रमुख ग्रन्थ

मनुष्य लोक में लौट आने पर असंग ने महायान सम्बन्धी मैत्रेय के प्रसिद्ध ग्रन्थ महायानसूत्र पर अलंकार लिखा। तत्व विनिश्चय, उत्तरतंत्र एवं सन्धि निर्मोचन सूत्र पर व्याख्याएँ उन्हेंने लिखीं। इनके प्रमुख ग्रन्थों में योगाचार भूमिशास्त्र, महायानसूत्रलंकार तथा उसकी वृत्ति, सप्तदश भूमि सूत्र, महायानसंपरिग्रह शास्त्र हैं। इसका अनुवाद परमार्थ ने ५६३ ई. में चीनी भाषा में किया था। प्रकरण आर्यवाचा महायानाभिधर्म संगीतशास्त्र भी इन की कृति है। ये इनके प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थ है।

योगाचारभूमिशास्त्र ग्रन्थ का योगाचार सम्प्रदाय के लिए महत्वपूर्ण स्थान है। महायान सूत्रालंकार का नैतिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्व है। योगाचार भूमिशास्त्र ग्रन्थ की मूल संस्कृत के रुप में खोज महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने की थी। यह ग्रन्थ १७ भूमियों में विभक्त है और योगाचार मत के अनुसार साधन मार्ग का वर्णन करता है। महायान सूत्रालंकार असंग और उनके गुरु मैत्रेयनाथ की संयुक्त रचना है। कारिकाएँ मैत्रेयनाथ के द्वारा लिखी गई हैं और उनकी व्याख्याएँ असंग ने की है। महायान सम्परिग्रह में निम्नांकित १० पदार्थों का विवरण है-

१. आलय विज्ञान अथवा मूल विज्ञान, २. विज्ञप्तिमात्रता अथवा निःस्वभाव, ३. विज्ञप्तिमात्रता का अवबोध, ४. षड्पारमिताएँ ५. दस भूमियाँ ६. शील, ७. समाधि, ८. प्रज्ञा, ९.अविकल्पज्ञान, १०. त्रिकायवाद।

असंग के अनुसार परमार्थ सत्य स्वयं प्रकाश एवं स्वभाव से ही विशुद्ध एवं निर्मल है किन्तु हमारे अन्दर अविद्या है, उसके कारण दूषित अशुद्ध प्रतीत होता है। यही चित्त धर्मधातु, बुद्धता या तथता है, इसकी अनुभूति तब होती है जब साधक दृश्य जगत एवं आत्मा को मिथ्या समझता है। ध्यान में यह अवस्था विकसित होती है कि दृश्य जगत मिथ्या है। यह कल्पनात्मक सृष्टि है, इस अवस्था में साधक का सविकल्प चित्त का भी अन्त हो जाता है, उसमें ज्ञाता एवं ज्ञेय भेद का अन्तर समाप्त हो जाता है। उसे धर्मधातु का, बुद्धता का, तथाता का दर्शन होता है जो द्वेष एवं प्रपंच से परे अनिर्वचनीय परमतत्त्व है। यह शाश्वत, नित्य, दिव्य, परमार्थ, सर्वव्यापी, दुःख निरोध एवं निर्वाण रुप है। इसका ज्ञान तो केवल आर्यज्ञान द्वारा ही सम्भव है जो ध्यान की विशुद्ध चतुर्थ भूमि पर आर्विभूत होता है। यही असंग का विज्ञान तत्त्व है, यही बुद्ध का उपाय कौशल है जिसके द्वारा वे अन्य जनों को भी परमतत्त्व का साक्षात्कार कराते हैं। जिस प्रकार किसी बालक को अँगुली की सहायता से चन्द्रमा या सूर्य का दर्शन कराया जाता है, उसी प्रकार बुद्ध ने बाह्य वस्तुओं की सहायता से परम तत्त्व का दर्शन कराने का प्रयत्न किया है। यद्यपि बाह्य वस्तुएँ परम तत्त्व नहीं है किन्तु फिर भी उनकी सहायता से परम तत्त्व का दर्शन किया जा सकता है।

योगाचार इस शब्द के दो अर्थ हैं - प्रथम अर्थ में आनुभाविक अपना बाह्य जगत की काल्पनिकता को समझने के लिए योग का अभ्यास किया जाता है। द्वितीय अर्थ में योगाचार की दो विशेषताओं को स्वीकार किया जाता है योग एवं आचार। इसका अर्थ सदाचार से लगाया जाता है। इस प्रकार योगाचारी द्वारा योगाचारों के क्रियात्मक पक्ष पर अधिक जोर

दिया गया है। योगाचार दर्शन की शाखा के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि परमतत्त्व अथवा निरपेक्ष पारमार्थिक सत्ता का ज्ञान केवल योग साधना द्वारा ही किया जा सकता है। योगचारी लोग विज्ञानवाद पर अपने दार्शनिक विचारों को आधारित करते हैं।

आर्य मैत्रेयनाथ तथा उनके शिष्य आर्य असङ्गद्वारा विरचित इस महनीय ग्रन्थ के ५ परिच्छेदों में संक्षेप में निम्न बातें आती हैं :

प्रथम परिच्छेद

प्रथम परिच्छेद अन्तर्गत बुद्ध, धर्म, संघ, धातु, बोधि, गुण तथा कर्म वे ही समस्त महायान शास्त्र के शरीर कहे गए हैं। संक्षेप में वे सात वज्रपद कहलाते हैं।

वज्रोपम ज्ञातव्य और ज्ञात अर्थ का स्थान ही वज्रपद से अभिहित किया गया है। क्यों यहाँ वज्र शब्द का प्रयोग किया गया है ? क्योंकि श्रुतमयी, चिन्तामयी, ज्ञानमयी भावनायें अत्यन्त दुष्प्रतिवेध होने से अनभिलाप्य स्वभाववाली हैं इसीलिए प्रत्यात्मवेद्य अर्थ को वज्र की उपमा दी गई है। यहाँ जितने अक्षर हैं उनका अर्थ किया जाता है। वे अक्षर ही उस अर्थ को बताते हैं। क्योंकि वे ही उन अर्थों के प्राप्ति के प्रापक रूप मार्ग के द्योतन करने वाले हैं साथ ही उन अर्थों के प्रतिष्ठापक भी हैं अत एव इन्हें पद कहा गया है।

इस प्रकार कठिन अर्थ के बोधक तथा अर्थ के प्रतिष्ठापक होने से भी वज्र और पद के अभिधा तथा व्यञ्जना को समझना चाहिए। यहाँ अर्थ कौन है ? तथा व्यञ्जना क्या है ? अर्थ सात प्रकार से अभिहित हुआ है। जैसा कि – बुद्धार्थ, धर्मार्थ, संघार्थ, धात्वर्थ, बोध्यर्थ, गुणार्थ और कर्मार्थ। इसे ही अर्थ कहा गया है। जिन अक्षरों से यह सप्तविध अर्थ, जो ज्ञातव्य है

उसको सूचित करने से तथा प्रकाशित करने से इसे व्यञ्जन कहा गया है। इस वज्रपद निर्देश को विस्तारपूर्वक उन-उन सूत्रों से जानना चाहिए।

तथागत का आनन्द अनिदर्शन होता है। अर्थात् तथागत के आनन्द को बाहर देखा नहीं जा सकता। तथागत को चक्षु के द्वारा देखना भी संभव नहीं होता। तथागत के आनन्द-धर्म का वर्णन संभव नहीं है। उसे सुना भी नहीं जा सकता है। संघ का आनन्द भी असंस्कृत ही है। चित्त (मन) तथा शरीर के द्वारा उस आनन्द की उपासना भी संभव नहीं है। वे तीन वज्रपदों को दृढ अध्याशय (श्रद्धापूर्णसंकल्प) के द्वारा ही जानना चाहिए।

तथागत के विषय को केवल तथागत ही जानते हैं। सभी श्रावक और प्रत्येक बुद्धों के द्वारा भी,अपने प्रज्ञा से इसे सुनना देखना और बोलना संभव नहीं है। इससे पूर्व ही कह दिया गया है कि बाल और पृथग्जनों के द्वारा इसे जानना संभव ही नहीं है। तथागत केवल श्रद्धा से ही जाने जाते हैं। परमार्थ का अर्थ ही सत्त्वधातु के लिए निर्देश समझना चाहिए। अर्थात् यह परमार्थ सत्त्व भाजन के कहीं ऊपर है यह जानना चाहिए। सत्त्वधातु भी तथागत गर्भ से कहीं अधिक ऊपर है यह जानना चाहिए। और तथागत गर्भ का अर्थ भी धर्मकाय को निर्देश करने के लिए ही निर्दिष्ट हुआ है। इस प्रकार यह चतुर्थ वज्रपद न्यून न होने से तथा अपूर्ण न होने से निर्देश परिवर्त के अनुसार ही समझना चाहिए।

अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि भी निर्वाण धातु को संकेत करने के लिए ही भगवान् ने कहा है। निर्वाण धातु भी, तथागतधर्मकाय का यह अधिवचन है।

यह पाँचवाँ वज्रपद है जो आर्य श्रीमाला सूत्रानुसार ही बताया गया है इसे जान लेना चाहिए।

यह जो तथागत द्वारा निर्दिष्ट धर्मकाय है यह अविनियोग धर्म है। अविनिर्मुक्त ज्ञान गुण से संयुक्त होने से इसे गंगा के बालुका के समान अनन्त धर्मों से प्रपूरित है। यह छठवाँ वज्रपद है जो न्यून और अपूर्ण नहीं है इसे इसी प्रकार निर्देश के अनुरूप ही समझना चाहिए।

मञ्जुश्री तथागत कल्पना और विकल्पना दोनों नहीं करते हैं। अथवा वे अनाभोगरूप अकल्पना के कारण अविकल्प में रहकर, यह, इस प्रकार की क्रिया करते हैं। यह सातवाँ वज्रपद है, जिसे तथागत गुणज्ञान-अचिन्त्य-विषय के अवतार के निर्देशानुसार ही समझना चाहिए। इस प्रकार वे ही सात वज्रपद हैं, संक्षेप में उद्देश बतलाते हुए संग्रह करके, समग्र शास्त्र का शरीर यही बताया गया है।

इससे क्या दिखाया गया है ?

कुछ भी त्यागने योग्य नहीं है। क्योंकि प्रकृति परिशुद्ध होने से तथागत धातु का संक्लेश निमित्तक आगन्तुक मल शून्यता होने से त्याग योग्य नहीं है। कुछ लेना भी नहीं है क्योंकि व्यवदान निमित्तक अविनिर्भाग शुद्ध धर्म होने से ग्राह्य कुछ भी नहीं है। इसी से कहते हैं - तथागत गर्भ शून्य है, क्योंकि विनिर्भाग मुक्तज्ञ और सर्वक्लेश कोशों के द्वारा यह परि निष्ठित है। यह अशून्य है जैसा कि गङ्गानदी के बालुका के समान अविनिर्भाग अचिन्त्य बुद्ध धर्मों से, अतः कुछ भी ग्राह्य अवशिष्ट नहीं है। जो यहाँ नहीं है यह उससे शून्य है ऐसा दिखता है। जो यहाँ अवशिष्ट है वह सत् भूत धर्म यहाँ है यह यथार्थ वह जानता है।

जिन लोगों का यहाँ शून्यता के अर्थ से चित्त बाहर हो जाता है, विक्षिप्त या चञ्चल होता है, एकाग्र नहीं होता उसी से वे शून्यता विक्षिप्त चित्त कहे गए हैं। परमार्थ शून्यता ज्ञान के बिना अविकल्प धातु का साक्षात्कार या प्राप्ति संभव नहीं है। इसी को मन में रखकर भगवान् ने कहा है। तथागत गर्भ ज्ञान ही तथागतों का शून्यता ज्ञान है। तथागत गर्भ-श्रावक

और प्रत्येक बुद्धों से अदृष्ट पूर्व है। वह तथागत गर्भ जैसा धर्मधातु गर्भ है उसे सत्काय-दृष्टि वाले देख नहीं सकते, क्योंकि दृष्टि प्रतिपक्ष है – धर्म-धातु का स्वभाव। जैसे कि धर्मकाय और लोकोत्तर धर्म गर्भ ऐसे ही विपर्यासाभिरतों के लिए अगोचर है ऐसा कहा है। अनित्य आदि लोक धर्म के प्रतिपक्ष होने के कारण यह लोकोत्तर धर्म का परिदीपन किया गया है। जैसा कि प्रकृति परिशुद्ध-धर्म गर्भ-शून्यता विक्षिप्तों के लिए अगोचर है। ऐसा कहा है – आगन्तुक मल शून्यता प्रकृति होने से विशुद्ध धर्मों का जो अविनिर्भाग लोकोत्तर धर्मकाय प्रभाववित होने के कारण। यहाँ एकनय धर्म धातु असंभेद ज्ञान को लेकर लोकोत्तर धर्मकाय प्रकृति परिशुद्धि को देखना ही यहाँ यथाभूत ज्ञान दर्शन अभिप्रेत है। इससे दशभूमि में अवस्थित बोधिसत्त्व तथागत गर्भ को थोडा सा देखते हैं यह कहा गया है।

मेघ से ढके हुए आकाश में किसी छोटे से मेघ के छिद्र से जैसे सूर्य को थोडा सा देखा जा सकता है, प्रादेशिक (क्षेत्र) बुद्धि से पूर्ण सूर्य नहीं देखे जा सकते। उसी प्रकार अनन्त आकाश में फैले हुए सूर्य के सदृश उस धर्मकाय को पूर्णता से तो वही देख सकते हैं जिनकी अनन्त मति हो गई हो।

इस प्रकार असङ्गनिष्ठ भूमि में प्रतिष्ठित परम आर्यों का यह विषय है अतः सामान्यों के लिए दुर्दृश-कठिनता से ही देखा जा सकता है। तब क्यों बाल पृथग्जनों के लिए देशना की जाती है ?

सब कुछ शून्य है। सर्वथा यत्र तत्र शून्य ही है। उसे मेघ, स्वप्न और माया के तरह ही जानना चाहिए। ऐसा कहा है फिर बुद्ध धातु सभी सत्त्वों में अवस्थित है यह क्यों कहा गया है ?

हीन प्राणियों में चित्त (अहं मम) लीन होने से, हीन सत्त्वों की अवज्ञा होने से, भूत ग्राह होने से, भूत धर्मों में अपवाद और अधिक आत्मस्नेह होने से बुद्ध धातु सभी सत्त्वों में अवस्थित है।

द्वितीय परिच्छेद

द्वितीय परिच्छेद बोधि अधिकारको लेकर रचित हुआ है। इस में अत्यन्त प्राञ्जल रीति से बोधि पर बातें हुईं हैं। वे इस प्रकार हैं -

समल तथता का व्याख्यान पुरा हुआ और निर्मल तथता की व्याख्या अब करना है। कौन सी निर्मल तथता है जो बुद्ध भगवान् का अनास्रव धातु में सर्वाकार मल के न रहने से आश्रय परिवृत्ति की व्यवस्था की जाती है। उसे आठ पदार्थों को लेकर संक्षेप में जानना चाहिए। वे आठ पदार्थ कौन हैं ?

शुद्धि, प्राप्ति, विसंयोग, स्व-परार्थ और उनका आश्रय, गाम्भीर्य, औदार्य और उनका महात्म्य यावत्काल यथावत् रूप से ज्ञेय हैं।

जैसा कि स्वभावार्थ, हेत्वर्थ, फलार्थ, कर्मार्थ, योगार्थ, वृत्यर्थ, नित्यार्थ और अचिन्त्यार्थ। यहाँ जो यह धातु है उसे भगवान् ने अविनिर्मुक्त-क्लेश-कोश-तथागत गर्भ कहा है। उसकी विशुद्धि आश्रय परावृत्ति होती है यही इसका स्वभाव है। सर्व-क्लेश-कोटि गूढ तथागत गर्भ में आकाङ्क्षारहित, सर्वक्लेश कोश विनिर्मुक्ति से तथागत धर्मकाय में भी वह निष्काङ्क्ष ही है। दो प्रकार का ज्ञान-लोकोत्तर अविकल्प तथा उसके पृष्ठ गामी हैं। लौकिक और लोकोत्तर ज्ञान आश्रय परिवृत्तिका हेतु है जिसे प्राप्ति शब्द से परिदीपित किया गया है। जिससे प्राप्त किया जाता है वही प्राप्ति है। उसका फल दो प्रकार का है। विसंयोग दो प्रकार का है। क्लेशावरण विसंयोग और ज्ञेयावरण विसंयोग। क्रमशः स्वपरार्थ संपादन कर्म और उसका अधिष्ठान समन्वागम योग। तीनों गाम्भीर्य-औदार्य महात्म्य से प्रभावितबुद्ध कायों से अवगति के अचिन्त्य प्रकार से रहना हि वृत्ति है।

स्वभाव हेतु फल द्वारा, कर्मयोग की प्रवृत्ति से, नित्य और अतिन्त्य से भी बुद्ध भूमि में अवस्थिति कहा गया है।

स्वभावार्थ और हेत्वर्थ को लेकर बुद्धत्व में उसकी प्राप्ति का उपाय हेतु है।

बुद्धत्व प्रकृतिप्रभास्वर है, यह जो कहा है उसमें आगन्तुक क्लेश आवरण तथा ज्ञेयावारण रूपी मेघ के घटाओं के जाल से आच्छादित सूर्य के तरह ही है। उस आच्छादन को, समग्र बुद्ध गुणों से युक्त निर्मल, नित्य, ध्रुव, शाश्वत तत्त्व को धर्मों के अकल्पनात्मक प्रविचयरूप ज्ञान के द्वारा देखा जा सकता है।

अविनिर्भाग तथा शुक्लधर्म से प्रभावित बुद्धत्व है जो सूर्य के तरह, आकाश के तरह तथा ज्ञान प्रहाण द्वय लक्षणयुक्त भी है।

गङ्गातीर में अवस्थित रजकणों के समान सङ्ख्यायुक्त सभी प्रभास्वर बुद्ध धर्मों से, जो अकृतक लक्षण सम्पन्न हैं और अविनिर्भाग वृत्तियों से युक्त बुद्धत्व है।

स्वभाव–अपरिनिष्पन्न व्यापी होने से और आगन्तुक होने से क्लेशवर ण और ज्ञेयावरण से संयुक्त मेघ के तरह ही बुद्धत्व है।

दो आवरणों के विश्लेष (हटाने से) के द्वारा फिर दो ज्ञान निर्विकल्प और उसके पृष्ठभावी ज्ञान ही इष्ट होते हैं।

उपर्युक्त आश्रयपरावृत्ति का स्वभाव विशुद्धि ही है। विशुद्धि संक्षेप में दो प्रकार का है। प्रकृति विशुद्धि और वैमल्यविशुद्धि। प्रकृति विशुद्धि ही विमुक्ति है किन्तु विसंयोग नहीं है। क्योंकि प्रभास्वर चित्त प्रकृति का आगन्तुक मलों से अविसंयोग है। वैमल्य विशुद्धि विमुक्ति और संयोग पानी का धूल में मिलने जैसा प्रभास्वर चित्त प्रकृति के अनवशेष आगन्तुक मलों से विसंयोग होता है।

स्वच्छ जलयुक्त एवं प्रफुल्लित पद्म से ढके हुए सरोवर के तरह, राहु के मुख से निकला हुआ पूर्ण चन्द्र के तरह, मेघ, धुल आदि क्लेश निर्मुक्त सूर्य के तरह विशिष्ट शुद्ध गुणों से भरा हुआ मुक्त व्यक्ति होता है।

मुनि, वृष, मधु, अन्न, सुवर्ण, निधान, फलयुक्त वृक्ष, सुगत विमल रत्न विग्रह, राजा, काञ्चन बिम्ब के तरह ही जिनत्व है।

राग आदि आगन्तुक क्लेशों की शुद्धि जलह्रद के तरह ही निर्विकल्प ज्ञान का फल संक्षेप में बताया गया है।

विमुक्तिकाय और धर्मका से क्रमशः स्वार्थसम्पत् और परार्थ सम्पत् जानना चाहिए। उनके सिद्ध हो जाने पर उस व्यक्ति में अचिन्त्य गुणों के साथ बुद्धत्व गुण रूप योग प्रकट हो जाता है। तीन ज्ञानों का अविषय होने से सर्वज्ञ का ज्ञान विषय, जो बुद्धत्व है देह धारियों के लिए अचिन्त्य कहा गया है।

सूक्ष्म होने से ज्ञान का अविषय, पारमार्थिक होने से चिन्ता का अविषय, धर्मता के गह्वर (गुफा) होने से लौकिक भावना का भी अविषय है।

बालों द्वारा वह कभी भी नहीं देखा गया है जैसाकि – जन्म से ही अन्धों के तरह और आर्यों ने भी नहीं देखा है जैसे कि प्रभातकालीन बादलों से घिरा हुआ बाल – सूर्य का बिम्ब हो।

उत्पत्ति न होने से वह नित्य है। निरोध न होने से ध्रुव है। द्वय के न होने से शिव है धर्मता के स्थिति के कारण शाश्वत भी है।

निरोध सत्य के होने से शान्त है, सर्व का अवबोध होने से व्यापक है, अप्रतिष्ठित होने से अकल्पनीय है, क्लेशोंके न होने से अनासक्त भी है।

सर्व ज्ञेयावराणों के शुद्धि के कारण व्यापक और अप्रतिघ है। कोमलता होने से कठोरता भी बुद्धत्व में नहीं है। अरूप होने से अदृश्य है,

अनित्यों के काराण अग्राह्य, प्रकृति से ही शुद्ध होने से शुभ और मलों के नाश होने से अमल यह बुद्धत्व है।

और भी, यह बुद्धत्व, आकाश के तरह असंस्कृत गुणों से, अविनिर्भाग व्युत्पत्ति के कारण, वह तथागतत्व भवगति के अग्रिम काल तक अचिन्त्य, महा उपाय, करूणा, ज्ञान-परिकर्म विशेष के कारण, जगत् के हित और सुख साधनों के निमित्त तीन पवित्र - स्वभाव काय - संभोग काय - निर्माण कायों के द्वारा अनुपरत, अनुच्छिन्न, और अनाभोग से प्रवृत्त होता है यह जानना चाहिए क्योंकि उसमें अनन्त धर्म विद्यमान हैं।

आदि, मध्य और अन्तरहित, अभिन्न, अद्वय तथा तीन प्रकार से मुक्त, विमल एवं अविकल्प स्वरूप धर्मधातु का स्वभाव है, जिसे प्रयत्नशील होकर समाधि में प्रविष्ट योगी ही उसे देख सकते हैं।

असङ्ख्यक गङ्गानदी के बालुकाओं के समान अनन्त असमान गुणों से युक्त, समस्त वासनाओं के उन्मूलन के कारण दोष रहित वह तथागत धातु अत्यन्त पवित्र निर्मल कहा गया है।

तृतीय परिच्छेद

तृतीय परिच्छेद गुणको लेकर विरचित हुआ है। इस के रहस्य को देखें -

निर्मल तथता को बताया जा चुका है। वे जो उसके आश्रित होकर मणि-प्रभा-वर्ण-संस्थान के तरह अभिन्न प्रकृतियुक्त अत्यन्त निर्मल गुण हैं, अब उनको बताया जा रहा है।

स्वार्थ सम्पत्ति, परार्थ सम्पत्ति और परमार्थ काय, उसमें आश्रित संवृति कायता तथा उनका फल जो विसंयोग विपाक भावना वे सब ६४ गुणों का भेद (समूह) है।

स्वार्थ सम्पत्ति का अधिष्ठान (आधार) पारमार्थिक शरीर है और परार्थ सम्पत्ति का अधिष्ठान मुनि (तथागत) का सांकेतिक शरीर है।

पहला शरीर बल आदि विसंयोग गुणों से संयुक्त है और दूसरा शरीर (सांकेतिक) विपाक आदि महापुरुषों के गुणों से संयुक्त है।

अज्ञान में निमग्न सत्त्वों के लिए बल है जो वज्र के तरह है। तथागत की व्यापकता और निर्मलता आकाश के तरह है और मुनि के दो प्रकार के स्वरूप पानी में दिखने वाले चन्द्र के तरह ही है।

स्थान, अस्थान, विपाक तथा इन्द्रियों के कर्मों में, धातुओं में, अधिमुक्ति में, सर्वत्रगामी मार्ग में ध्यान आदि से क्लेशों के शुद्धता में, निवास और अनुस्मृति में दिव्य चक्षु में और शान्ति में दश प्रकार का बल कहा गया है।

स्थान-अस्थान विपाक धातुओं मे, जगत् के अनेक विध अधिमुक्ति में, नय में, संक्लेशव्यवदान में, इन्द्रिय गणों में, पूर्व में, निवास के स्मृति में, दिव्य चक्षु में, आस्रवों के क्षय के विधि में, अज्ञान रूपी कठोर त्वचायुक्त पेड के काँटे में कुशल होने से उनका (तथागत का) बल वज्र के तरह है।

सर्व धर्मों के अभिसंबोधि में, विबन्ध के निषेध में, मार्ग को बताने में, निरोध के प्राप्ति में वे चार वैशारद्य कहे गए हैं।

ज्ञेय वस्तुओं में सर्वथा अपना और दूसरों का ज्ञान होने से, हेय वस्तुओं में सर्वथा हानि के कारणों को जानने के कारण, वास्तविक पदार्थों में संलग्न होने से, प्राप्तव्य पदार्थों में जो अति निर्मल है उन्हें अन्तिम छोर तक प्राप्त करने के कारण आर्यों का स्व-परार्थ रूपी सत्य कथन होने से उनका बल कभी हिलने वाला नहीं है। जैसा कि सिंह होता है।

निरन्तर वनों में जैसे सिंह विना किसी भय से अत्रस्त होकर गतिशील रहता है - मृगों के बीच में, उसी प्रकार मुनीन्द्र (बुद्ध) सिंह भी गणों में स्वस्थ, निरास्थ और स्थिर पराक्रम के साथ रहते हैं।

१८ आवेणिक धर्म बुद्धधर्म में आए हुए हैं।

स्खलन नहीं है, चिल्लाना भी नहीं है, न चोरी है न स्मृति ही शास्ता की है, चञ्चलता भी नहीं है, अनेक संज्ञायें भी नहीं हैं, प्रति संख्या, उपेक्षा, हानि भी नहीं है - छन्द तथा वीर्य से और स्मृति तथा प्रज्ञाहीनों को विमुक्ति का ज्ञान देने से, वे सभी कर्म ज्ञान पूर्वक करते हैं, त्रि-अध्व का ज्ञान जिसने दिखाया है, इस प्रकार के १८ गुण तथा अन्य भी आगन्तुक गुण तथागत के हैं।

स्खलित नहीं है, आवाज और चोरी नहीं है चित्त में भेद न होने से, स्वरस होने से संज्ञा नहीं है। छन्द होने से कोई हानि भी नहीं है। वीर्य स्मृति और विशुद्ध विमल प्रज्ञान विमुक्ति के कारण, मुक्ति ज्ञान के निदर्शन एवं निखिल ज्ञेय पदार्थों के संदर्शन से भी सदामुक्ति विद्यमान है।

सभी ज्ञानों में तीव्रता से लगने से, अपरिवर्त्यों में तीन कर्म, तीन अध्वों में अपराहत हैं तथा सुविपुल ज्ञान के प्रति प्रवृत्ति से (निश्चित) ध्रुव है। यही जिनकी जिनता है जो महाकरुणा से सर्वदा संश्लिष्ट रहती है, जिसके बोध से (जिन) तथागतों ने जगत् में सद्धर्म चक्र को प्रवर्तित किया है जो अभय देने वाला है।

चतुर्थ परिच्छेद

चतुर्थ परिच्छेद तथागत के कृत्यों को लेकर विरचित है। आइए इसे भी देखें–

बुद्ध के विमल गुणों को बताया जा चुका है। उनका कर्म-जिनक्रिया को अब बताना है। बह फिर अनाभोग और अप्रतिश्रब्धि नामक दो आकारों से प्रवर्तित होती है।

विनेय धातु में, विनय के अभ्युपाय में, विनय धातु के विनय क्रिया में, उस देशकाल और गमन तथा नित्य में विभु के अनाभोग से ही प्रवृत्ति होती है।

समग्र यान का निष्पादन करके, प्रवर, गुण समूह, ज्ञानरत्न और तथागत गर्भ, पुण्य ज्ञानार्करश्मि का व्यापक प्रसार जो अनन्त आकाश के बीच में है, इसी प्रकार बुद्धत्व भी समग्र प्राणियों के समुहों में फैला हुआ है। जो विशिष्ट-निर्मल निधि और निर्विशिष्ट है को देखकर क्लेश-ज्ञेय मेघ जालों को करुणा से पूर्ण होकर उडा देते हैं। क्लेशों को समाप्त करते हैं।

जिसका, जिससे, जब तक, जब, विनयक्रिया होती है, उस विकल्प के उदय के अभाव के कारण मुनि की सदा अनाभोग स्थिति रहती है।

जिस धातु का जिस बडे उपाय से जो विनीत क्रिया होती है जहाँ, जब जिस देश और काल में, उसके समाप्ति या उसके आरम्भ में उसके फल के समय और उसके ग्रहण में, उसकी आवृत्ति या उच्छित्ति मे भी अविकल्प से ही जानना चाहिये।

भूमियाँ दश हैं। उनका निर्याण (प्रारम्भ) उनका कारण, दो स्मृतियाँ, उनका फल, परम बोधि के सत्त्वों का परिग्रह किया जाता है।

जब तक बोधि की उपलब्धि नहीं होती तबतक वासनाओं की आवृति होती ही रहती है, उससे क्लेश और उपक्लेश वासनायें बनी ही रहती हैं, करुणा से उन क्लेशों का नाश सर्वदा होता है।

इन छ स्थानों को क्रमशः जानना चाहिए- महोदधि, रवि, आकाश, निधि, मेघ और वायु के तरह।

निरन्तर वनों में जैसे सिंह विना किसी भय से अत्रस्त होकर गतिशील रहता है – मृगों के बीच में, उसी प्रकार मुनीन्द्र (बुद्ध) सिंह भी गणों में स्वस्थ, निरास्थ और स्थिर पराक्रम के साथ रहते हैं।

१८ आवेणिक धर्म बुद्धधर्म में आए हुए हैं।

स्खलन नहीं है, चिल्लाना भी नहीं है, न चोरी है न स्मृति ही शास्ता की है, चञ्चलता भी नहीं है, अनेक संज्ञायें भी नहीं हैं, प्रति संख्या, उपेक्षा, हानि भी नहीं है – छन्द तथा वीर्य से और स्मृति तथा प्रज्ञाहीनों को विमुक्ति का ज्ञान देने से, वे सभी कर्म ज्ञान पूर्वक करते हैं, त्रि–अध्व का ज्ञान जिसने दिखाया है, इस प्रकार के १८ गुण तथा अन्य भी आगन्तुक गुण तथागत के हैं।

स्खलित नहीं है, आवाज और चोरी नहीं है चित्त में भेद न होने से, स्वरस होने से संज्ञा नहीं है। छन्द होने से कोई हानि भी नहीं है। वीर्य स्मृति और विशुद्ध विमल प्रज्ञान विमुक्ति के कारण, मुक्ति ज्ञान के निदर्शन एवं निखिल ज्ञेय पदार्थों के संदर्शन से भी सदामुक्ति विद्यमान है।

सभी ज्ञानों में तीव्रता से लगने से, अपरिवर्त्यों में तीन कर्म, तीन अध्वों में अपराहत हैं तथा सुविपुल ज्ञान के प्रति प्रवृत्ति से (निश्चित) ध्रुव है। यही जिनकी जिनता है जो महाकरुणा से सर्वदा संश्लिष्ट रहती है, जिसके बोध से (जिन) तथागतों ने जगत् में सद्धर्म चक्र को प्रवर्तित किया है जो अभय देने वाला है।

चतुर्थ परिच्छेद

चतुर्थ परिच्छेद तथागत के कृत्यों को लेकर विरचित है। आइए इसे भी देखें–

बुद्ध के विमल गुणों को बताया जा चुका है। उनका कर्म-जिनक्रिया को अब बताना है। बह फिर अनाभोग और अप्रतिश्रब्धि नामक दो आकारों से प्रवर्तित होती है।

विनेय धातु में, विनय के अभ्युपाय में, विनय धातु के विनय क्रिया में, उस देशकाल और गमन तथा नित्य में विभु के अनाभोग से ही प्रवृत्ति होती है।

समग्र यान का निष्पादन करके, प्रवर, गुण समूह, ज्ञानरत्न और तथागत गर्भ, पुण्य ज्ञानार्करश्मि का व्यापक प्रसार जो अनन्त आकाश के बीच में है, इसी प्रकार बुद्धत्व भी समग्र प्राणियों के समुहों में फैला हुआ है। जो विशिष्ट-निर्मल निधि और निर्विशिष्ट है को देखकर क्लेश-ज्ञेय मेघ जालों को करुणा से पूर्ण होकर उडा देते हैं। क्लेशों को समाप्त करते हैं।

जिसका, जिससे, जब तक, जब, विनयक्रिया होती है, उस विकल्प के उदय के अभाव के कारण मुनि की सदा अनाभोग स्थिति रहती है।

जिस धातु का जिस बडे उपाय से जो विनीत क्रिया होती है जहाँ, जब जिस देश और काल में, उसके समाप्ति या उसके आरम्भ में उसके फल के समय और उसके ग्रहण में, उसकी आवृत्ति या उच्छित्ति मे भी अविकल्प से ही जानना चाहिये।

भूमियाँ दश हैं। उनका निर्याण (प्रारम्भ) उनका कारण, दो स्मृतियाँ, उनका फल, परम बोधि के सत्त्वों का परिग्रह किया जाता है।

जब तक बोधि की उपलब्धि नहीं होती तबतक वासनाओं की आवृति होती ही रहती है, उससे क्लेश और उपक्लेश वासनायें बनी ही रहती हैं, करुणा से उन क्लेशों का नाश सर्वदा होता है।

इन छ स्थानों को क्रमशः जानना चाहिए- महोदधि, रवि, आकाश, निधि, मेघ और वायु के तरह।

ज्ञानरूपी जल के गुण के समान होने से यह अग्रयान समुद्र के तरह है। सभी सत्वों का आधार होने से संभार द्वय युक्त है जो सूर्य के तरह है।

विपुल, अनन्त और मध्य होने से बोधि आकाश धातु के तरह है। सम्यक् सम्बुद्ध धर्म होने से सत्त्व धातु रत्नों के खानों के तरह है।

आगन्तुक धर्मों के व्याप्ति के निष्पत्ति के कारण वह संक्लेश भी मेघराशि के तरह ही है। उस आगन्तुक क्लेश रूपी मेघों को हटाने के लिए करुणा से उदित वायु के तरह भगवान् तथागत हैं।

दूसरों के अधिकार को निर्याण के कारण सभी सत्वों में अपने समान भाव रहने के कारण, समग्र कृत्यों को समाप्त करने के कारण इसकी क्रिया सर्वत्र व्यापक होकर रहती है।

जो अनुत्पादक और निरोध से प्रभावित है वह बुद्धत्व कैसे यहाँ असंस्कृत, अप्रवृत्ति लक्षणभुत है उससे अनाभोग अप्रतिश्रब्ध कहा गया और लोक से अविकल्प बुद्ध कार्य प्रवृत्त होता है। बुद्ध महात्म्य धर्म को लेकर विमति, सन्देह आदि से युक्त बुद्ध विषय में अधिमुक्ति उत्पन्न करने के लिए है।

शक्र(इन्द्र) के दुन्दुभि के तरह, मेघ, ब्रह्मा, सूर्य और मणिरत्नों के तरह और प्रतिश्रुति के तरह जो आकाश और पृथिवी में होती है के तरह तथागत का स्वरूप है।

शक्र के प्रतिभास के कारण– यदि सभी पृथिवी तल वैडुर्य मणि से शुद्ध हो या ढक दिया जाय तब अत्यन्त स्वच्छ होने से देवेन्द्र अप्सराओं के सहित देखे जा सकते हैं। वैजयन्त नामक इन्द्र के भवन, अन्य देवतागण, उनके विमान, चित्र, वे दिव्य विभुतियां देखे जा सकते हैं। अब नरनारीगण– जो पृथिवी के वासी हैं, यह सब देवों की उपस्थिति देखकर इस प्रकार का

संकल्प कर सकते हैं। आज ही, तत्काल ही हम भी देवता बन जायें और कुशल पुण्यों के लेकर उसकी प्राप्ति के लिए लग जायें। यह इस प्रकार का प्रतिभास है- पृथिवी का, यह न जानते हुए भी च्युति के कारण स्वर्ग में पहुँच सकते है अच्छे युण्य कर्मों के कारण । यह प्रतिभास अत्यन्त अविकल्पान्तक है, विकल्पहीन है इस प्रकार बडे अर्थ से पृथिवी मे आ जा जाते हैं, उपस्थित हो जाते हैं। तथा अतिशय श्रद्धा के द्वारा भावित प्रतिभास को सत्त्वगण संबुद्ध को देखते हैं और प्रतिभास को अपने चित्त में देखते हैं । लक्षण और व्यञ्जन से य'क्त विचित्र इर्यापथ की क्रिया को देखते हैं और इसके साथ चङ्क्रमण करते, उठते, बैठते शयन करते, बोलते - शिवधर्म को, समाधि में मौन होते हुए देखते हैं साथ ही प्रतिहार्य चित्र को, महाद्युति को दिखाते हुए उनको देखकर उनके साथ हो जाते हैं । बुद्धत्व की कामना करने वाले और उसके कारण को लेकर अपने इप्सित पद को प्राप्त कर देते हैं।

वह प्रतिभास अत्यन्त अविकल्पक होता है। इस प्रकार महान् अर्थ से लोकों में उपस्थित होता है। अपने चित्त का ही यह विकल्प है इस प्रकार वे पृथग्जन नहीं जान सकते, इसीलिए उनका बिम्बदर्शन अबन्ध्य ही है। वह भी जब दर्शन की स्थिति में आ जाता है तब, क्रमशः इस नय में स्थित होने पर सद्धर्म काय को जो मध्यस्थ है ज्ञान चक्षु से देखते हैं। भूमि में चारों ओर विषय स्थानों मे मल रहते हैं, उसी जगह पर वेडूर्यमणि रख दिया जाय तो वह जगह अत्यन्त शुभ्र, विमल मणि के गण से अत्यन्त स्वच्छ हो जाता है। शुद्ध होने से वहाँ पर बिम्ब बन जाता हैं तथा पृथिवी के गुण दूर हो जाते हैं। उस प्रकार के स्वर्गीय विषयों को पाने के लिए नियमतः उपवास, व्रत, पूजा आदि विभिन्न नर नारीगण करते हैं और पुष्प आदि का निक्षेपण भी करते हैं- अच्छे मन से, इसी प्रकार वैडुर्यमणि द्वारा स्वच्छ मन में मुनियों के प्रति-बुद्ध के छत्र छाया मे चित्र आदि उत्पन्न करते हैं- प्रमुदित होकर, उसी प्रकार जिन सुत- बोधिसत्त्वगण भी किया करते हैं।

जैसे वैडुर्यमणि से पवित्र भूमि पर इन्द्र के काय का बिम्ब का होना संभव है उसी प्रकार जगत् के चित्त रूपी पवित्र भूमि मे मुनीन्द्र - तथागत का प्रतिबिम्ब उपलब्ध होना भी संभव है। बिम्बों का उदय अभुत पदार्थों का भी जो अन्यत्र है, काल्पनिक है- केवल चित्त के प्रवृत्ति के कारण हो जाता हे। उसी प्रकार लोक में भी बिम्ब का अवभास - उपस्थित हो जाता है। इसीलिए सत् भी नहीं है, असत् भी नही है देनों भी नहीं है यह देखना चाहिए। जैसे स्वर्ग(अन्तरिक्ष) में पूर्वकृत पुण्यकर्मों के प्रभाव से देवताओं के यत्न, स्थान, इच्छा और विकल्प रहित होते हुए भी अनित्य, दुःख, नैरात्म्य आदि शान्त शब्दों से प्रमादि देवताओं को अनेक बार दुन्दुभि का स्वर जैसा उनके अपने कर्मों के प्रभाव से जन्य है उसी प्रकार धर्म का घोष भी भगवान् का लोक में उनके अपने ही कर्मों के कारण है। वह शब्द (धर्म) यत्न, स्थान, शरीर, चित्त आदि से रहित होते हुए भी शान्ति का स्थल है उसी प्रकार यह चार प्रकार का धर्म शान्ति का स्थान है। संग्राम जन्य क्लेश वृत्ति के अवसर पर अपना जय होने पर बलपूर्वक असुरों को हटाने पर दुन्दुभि के अनेक मधुर धुन निकलते हैं, वे अभयप्रद होते हैं, देवताओं के लोक में, उसी प्रकार संसार के प्राणियों में क्लेश दुःखों का शमन करने वाले उत्तम विधि में ध्यान, आरूप्य आदि हेतुओं से उत्पन्न होता है।

क्यों यहाँ धर्म दुन्दुभि मात्र अधिकृत किया गया है न अन्य दिव्य वाद्य गण ?

वे भी देवताओं के पूर्वकृत कुशल कर्मों के कारण ही उपलब्ध हैं और दिव्य, मनोहर श्रवण योग शब्दों को, संगीत को प्रकट करते हैं। उन वाद्यों का तथागत घोष के साथ चार प्रकार के असमानतायें हैं वह कौन सा है ? जैसा कि प्रादेशिकत्व, अहितत्त्व, अमुखत्व और अनैर्याणिकत्व। धर्मदुन्दुभि के द्वारा फिर अप्रादेशिकत्व, अशेष प्रमत्त देवगणों को प्रेरणा से तत्काल ही अनतिक्रमण से यह परिदीपित हुआ है। हितत्व-असुर आदि पर

चक्रों का उपद्रव जन्य भय से रक्षा के कारण और अप्रमाद को देखना भी है। नैर्याणिकत्वम् - अनित्य, दुःख, शून्य आदि शब्दों के उच्चारण से सर्वोपद्रवों की शान्तिकरण को भी दिखाया गया है। संक्षेप में इन चार आकारों से धर्मदुन्दुभि के समानता से बुद्ध का स्वरमण्डल विशिष्ट है। सभी के लिए हित और सुख जो तीन प्रतिहार्यों से समन्वित है - यह मुनि का घोष, अतएव दिव्यतुर्यों के घोषों से विशिष्ट है।

दुन्दुभियों के महान् शब्द स्वर्ग मे होते हैं किन्तु वे पृथिवी के क्षेत्र में नहीं सुने जा सकते। किन्तु बुद्ध के शब्द घोष संसार में, पाताल में भी सुन सकते हैं। देवताओं के स्वर्ग में बहुत तुर्य के घोष बजते हैं जो उनके कामभाव को बढाने में सहयोग करते हैं। बढ़ाते हैं। किन्तु एक ही घोष करुणात्मक बुद्धों का, समस्त संसार के दुःखाग्नि के कारण को शान्त करते हैं।

पञ्चम परिच्छेद

पाँचवाँ परिच्छेद बोधि के प्रशंसा हेतु विरचित हुआ है। इसे भी संक्षेप मे यों देखा जाता है–

बुद्ध धातु, बुद्ध बोधि, बुद्ध धर्म और बुद्ध कृत्य, बुद्ध गोत्रीय-सत्त्वों के लिए भी अचिन्त्य हैं किन्तु तथागत इन्हें जानते हैं।

यहाँ जिनों के विषयों मे जो अधिमुक्ति बुद्धि होती है, उससे बुद्ध के अनन्त गुणों को रखने की पात्रता उस बुद्धि (व्यक्ति) में उत्पन्न होती है। वह व्यक्ति समस्त संसार के सत्त्वों के पुण्यो कों स्वतः ही अपने पुण्यों से ढ़क देता है, और अचिन्त्य गुणों के अभिलाष रूप योग से यह संभव होता है।

जो कोई बोधि का अर्थी संस्कृत रत्नों को और अनेक सुवर्ण क्षेत्रों के परमाणु के सङ्ख्या के समान धर्मेश्वरों को सदा देता हो, वह व्यक्ति उस दान से जितना पुण्य कमाता है उसके अनन्त गुणों से ज्यादा पुण्य केवल वह व्यक्ति जो इन ग्रन्थ से एक पद भी सुनता है और सुनाता है, प्राप्त करेगा।

जो, शरीर, वचन और मन से अनाभोग दृष्टि से युक्त होकर अनेक कल्पों तक शील का धारण करता हो, उससे वह बहुत ज्यादा पुण्य कमात है। उसी प्रकार कोई ध्यान करता हो जिससे त्रिभुवन का ही समस्त क्लेशगण का नाश होता हो, और दिव्य ब्रह्म विहार में पारंगत हो तथा संबोधि के उपायों से अच्युत हो वह जितना पुण्य कमाता है, इन सभी से बहुत ज्यादा पुण्य समूह केवल इस धर्म पर्याय से एक पद श्रवण तथा प्रकाशन करने से प्राप्त करता है।

उपर्युक्त विषयों के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि दान अनाभोगता, शील, स्वर्ग, भावना, क्लेशहानि, क्लेश-ज्ञेय-आवरणों का नाश यह प्रज्ञा करती है, अतः इसके हेतु को हमें जानना चाहिए। उसकी परावृत्ति, उसके गुण, अर्थसाधन तथा चार प्रकार के जिन ज्ञान के विषयों के उदित हेने पर तथा अस्तित्व, शक्तवत्व, गुणवत्व एवं अधिमुक्ति के कारण धीमान् बोधिसत्व तत्काल ही भव्य तथागत पद को प्राप्त कर लेता है। उसकी चित्त वृत्ति उस अवस्था मे ऐसी होती है- यह विषय अचिन्त्य है, मेरे जैसे व्यक्तियो के द्वारा यह अचिन्त्य है इस प्रकार के गुण के प्राप्ति के कारण तथा प्रज्ञा आदि गुणों का स्थान-भूत यह बोधिचित्त निरन्तर उपस्थित होता है उस व्यक्ति के लिए। ऐसे चित्त के प्रत्युपस्थान द्वारा यह जिनात्मज अविवर्त्य रूप से पुण्यात्मक पारमिता के परिशुद्धि में पूर्ण हो जाता है। पुण्य पारमितायें पाँच हैं, तीन प्रकार के अविकल्पों से उनकी पूर्णता तथा परि शुद्धता होती है और उसके विपक्ष के हानि से भी यह हो जाता है। दान, दानमय पुण्य, शील, शीलमय स्मृति, क्षान्ति तथा ध्यान जो भावनामय हैं और वीर्य सभी में समान रूप में स्थित है।

त्रिमण्डल का विकल्प– वह ज्ञेयावरण है। मात्सर्य आदि का विकल्प क्लेशावरण कहा गया है। इनके प्रहाण का हेतु प्रज्ञा ही है, उसके अतिरिक्त अन्य नहीं है। प्रज्ञा ही श्रष्ठ है इसका मूल भी श्रुत है और उसका अन्त्य भी प्रज्ञा ही है।

इस प्रकार यह आप्तों के आगम और युक्ति के संश्रय पूर्ण जो विषय रखे गए हैं केवल आत्मशुद्धि के लिए ही बताए गए हैं। उनके अनुग्रह हेतु भी यह लिखा गया है। प्रदीप, विद्युत, मणि, चन्द्र और सूर्य के सहयोग से लोग संसार को देखते हैं। किन्तु महार्थ–धर्म–प्रतिभा रूप मुनि का आश्रय ग्रहण करके वे उदाहरण यहाँ रखे गए हैं। जो यह जिस अर्थ को लेकर धर्मपदों से संयुक्त त्रिधातु संक्लेश को हटाने वाले वचन हैं। निश्चय ही वे वचन शान्ति के अन'शंसक हैं, वे ऋषि के द्वारा बताए गए है इससे अन्यथा जो भी है वह धर्मपदों के विपरीत है।

जो वचन कहे गए हैं वे, अविक्षिप्त मानसिक स्थिति में अर्थात् समाधि के अवस्था में कहे गए हैं। वे निश्चय ही एक ही शास्ता को प्रतिपादित करते हैं। साथ ही वे मोक्ष प्राप्ति के विशालपथ के अनुकूल हैं, अतः उन्हें ऋषि- जिन–तथागत के तरह ही शिर से प्रणाम करते है, धारणा करते हैं। इस जगत में जिन–तथागत से बढकर कोई भी पण्डित कहीं भी नहीं है। वे सर्वज्ञ हैं अतएव विधिवत् सभी तत्त्वों को जानते हैं और इनसे परे कोई भी तत्त्व नहीं है। इसीलिए उन्होंने स्वयं जिनसूत्रौं का उपदेश किया है, उसे किसी को भी नहीं विगाडना चाहिए। यदि कोई उसे क्षति पहुँचाते हैं तो यह सद्धर्म के प्रति अपवाद है तथा धर्म का भेद भी कहलाता है।

जो इस धर्म की निन्दा करते हैं वे आर्यों का भी अपवाद करते हैं यह सब अन्य दुष्कृत मलों के अभिनिवेश का फल है और विमूढ़मति व्यक्तियों का क्लेश ही है। अतएव अभिनिवेश के द्वारा मलीन दृष्टियुक्त

जो कोई बोधि का अर्थी संस्कृत रत्नों को और अनेक सुवर्ण क्षेत्रों के परमाणु के सङ्ख्या के समान धर्मेश्वरों को सदा देता हो, वह व्यक्ति उस दान से जितना पुण्य कमाता है उसके अनन्त गुणों से ज्यादा पुण्य केवल वह व्यक्ति जो इन ग्रन्थ से एक पद भी सुनता है और सुनाता है, प्राप्त करेगा।

जो, शरीर, वचन और मन से अनाभोग दृष्टि से युक्त होकर अनेक कल्पों तक शील का धारण करता हो, उससे वह बहुत ज्यादा पुण्य कमात है। उसी प्रकार कोई ध्यान करता हो जिससे त्रिभुवन का ही समस्त क्लेशगण का नाश होता हो, और दिव्य ब्रह्म विहार में पारंगत हो तथा संबोधि के उपायों से अच्युत हो वह जितना पुण्य कमाता है, इन सभी से बहुत ज्यादा पुण्य समूह केवल इस धर्म पर्याय से एक पद श्रवण तथा प्रकाशन करने से प्राप्त करता है।

उपर्युक्त विषयों के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि दान अनाभोगता, शील, स्वर्ग, भावना, क्लेशहानि, क्लेश-ज्ञेय-आवरणों का नाश यह प्रज्ञा करती है, अतः इसके हेतु को हमें जानना चाहिए। उसकी परावृत्ति, उसके गुण, अर्थसाधन तथा चार प्रकार के जिन ज्ञान के विषयों के उदित हेने पर तथा अस्तित्व, शक्त्वत्व, गुणवत्व एवं अधिमुक्ति के कारण धीमान् बोधिसत्त्व तत्काल ही भव्य तथागत पद को प्राप्त कर लेता है। उसकी चित्त वृत्ति उस अवस्था मे ऐसी होती है- यह विषय अचिन्त्य है, मेरे जैसे व्यक्तियो के द्वारा यह अचिन्त्य है इस प्रकार के गुण के प्राप्ति के कारण तथा प्रज्ञा आदि गुणों का स्थान-भूत यह बोधिचित्त निरन्तर उपस्थित होता है उस व्यक्ति के लिए। ऐसे चित्त के प्रत्युपस्थान द्वारा यह जिनात्मज अविवर्त्य रूप से पुण्यात्मक पारमिता के परिशुद्धि में पूर्ण हो जाता है। पुण्य पारमितायें पाँच हैं, तीन प्रकार के अविकल्पों से उनकी पूर्णता तथा परि शुद्धता होती है और उसके विपक्ष के हानि से भी यह हो जाता है। दान, दानमय पुण्य, शील, शीलमय स्मृति, क्षान्ति तथा ध्यान जो भावनामय हैं और वीर्य सभी में समान रूप में स्थित है।

त्रिमण्डल का विकल्प– वह ज्ञेयावरण है। मात्सर्य आदि का विकल्प क्लेशावरण कहा गया है। इनके प्रहाण का हेतु प्रज्ञा ही है, उसके अतिरिक्त अन्य नहीं है। प्रज्ञा ही श्रेष्ठ है इसका मूल भी श्रुत है और उसका अन्त्य भी प्रज्ञा ही है।

इस प्रकार यह आप्तों के आगम और युक्ति के संश्रय पूर्ण जो विषय रखे गए हैं केवल आत्मशुद्धि के लिए ही बताए गए हैं। उनके अनुग्रह हेतु भी यह लिखा गया है। प्रदीप, विद्युत, मणि, चन्द्र और सूर्य के सहयोग से लोग संसार को देखते हैं। किन्तु महार्थ–धर्म–प्रतिभा रूप मुनि का आश्रय ग्रहण करके वे उदाहरण यहाँ रखे गए हैं। जो यह जिस अर्थ को लेकर धर्मपदों से संयुक्त त्रिधातु संक्लेश को हटाने वाले वचन हैं। निश्चय ही वे वचन शान्ति के अन'शंसक हैं, वे ऋषि के द्वारा बताए गए है इससे अन्यथा जो भी है वह धर्मपदों के विपरीत है।

जो वचन कहे गए हैं वे, अविक्षिप्त मानसिक स्थिति में अर्थात् समाधि के अवस्था में कहे गए हैं। वे निश्चय ही एक ही शास्ता को प्रतिपादित करते हैं। साथ ही वे मोक्ष प्राप्ति के विशालपथ के अनुकूल हैं, अतः उन्हें ऋषि– जिन–तथागत के तरह ही शिर से प्रणाम करते है, धारणा करते हैं। इस जगत में जिन–तथागत से बढकर कोई भी पण्डित कहीं भी नहीं है। वे सर्वज्ञ हैं अतएव विधिवत् सभी तत्त्वों को जानते हैं और इनसे परे कोई भी तत्त्व नहीं है। इसीलिए उन्होंने स्वयं जिनसूत्रौं का उपदेश किया है, उसे किसी को भी नहीं विगाडना चाहिए। यदि कोई उसे क्षति पहुँचाते हैं तो यह सद्धर्म के प्रति अपवाद है तथा धर्म का भेद भी कहलाता है।

जो इस धर्म की निन्दा करते हैं वे आर्यों का भी अपवाद करते हैं यह सब अन्य दुष्कृत मलों के अभिनिवेश का फल है और विमूढ़मति व्यक्तियों का क्लेश ही है। अतएव अभिनिवेश के द्वारा मलीन दृष्टियुक्त

व्यक्ति या सिद्धान्तों में बुद्धि नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि शुद्ध वस्त्र में ही नया रंग चढ़ता है पहले से ही अन्यरंग चढ़े हुए बस्त्रों में अन्य कोई रंग नहीं चढ़ता।

बुद्धि के मलीनता से, अधिमुक्ति शुक्ल कर्मों के न होने से, मिथ्या अभिमान के कारण, सद्धर्म के व्यसन के अभाव होने से, नेयार्थ तत्त्वों के ग्रहण से, लोभ में फँसने के कारण, विकृत दर्शनों के कारण, धर्म के द्वेषी जनों के संगत के कारण, धर्म के ग्राहक किन्तु हीन रूचि वालों को देखकर ही सामान्य लोग सद्धर्म की निन्दा करते हैं, जिसे आर्य अपनाते हैं।

इस प्रकार यह रत्नगोत्र विभाग नामक उत्तर तन्त्र पूर्ण होता है। यह अद्भुत शास्त्र है। इसका जितना अभ्यास हो उतना ही अच्छा है।

आभार प्रदर्शन

इस प्रकार यह महनीय ग्रन्थ हिन्दी में अनुदित होकर आप के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। आशा है अध्येतृगण लाभान्वित होंगे और चिर काल से बहुप्रतीक्षित इस ग्रन्थ को हिन्दी के साथ पाकर हर्षित होंगे।

इस पुस्तक को तदारुपता के साथ छाप कर प्रस्तुत करने के लिए इण्डियन माइन्डस् तथा इन्डिका बुक्स् के प्रमुख श्री दिलीपकुमार जायसवाल जी को हृदय से धन्यवाद व्यक्त करता हूं।

इस कृति में रह गयी अशुद्धियों को दिखाकर मुझे पाठक गण कृतार्थ करें जिस से आगामी संस्करणों में सुधारा जा सके।

भवतु सर्वमंगलम्।

सम्पादक एवं अनुवादक
काशीनाथ न्यौपाने
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, वाल्मीकि क्यैम्पस,
प्रदर्शनी मार्ग, काठमाण्डू नेपाल।
Email: kashinathguru@gmail.com

दिनांक २०१६, ७ मार्च
शिवरात्रि

आर्यमैत्रेयनाथविरचितम्

असङ्गकृतटीकया सहितं च

महायानोत्तरतन्त्रशास्त्रम्

ओं नमः श्रीवज्रसत्त्वाय।

बुद्धश्च धर्मश्च गणश्च धातु-
बोधिर्गुणाः कर्म च बौद्धमन्त्यम्।
कृत्स्नस्य शास्त्रस्य शरीरमेतत्
समासतो वज्रपदानि सप्त॥ १ ॥

वज्रोपमस्याधिगमार्थस्य पदं स्थानमिति वज्रपदम्। तत्र श्रुति-चिन्तामयज्ञानदुष्प्रतिवेधादनभिलाप्यस्वभावः प्रत्यात्मवेदनीयोऽर्थो वज्रवद्वेदितव्यः। यान्यक्षराणि तमर्थमभिवदन्ति तत्प्राप्त्यनुकूलमार्गाभि-द्योतनतस्तानि तत्प्रतिष्ठाभूतत्वात् पदमित्युच्यन्ते। इति दुष्प्रतिवेधार्थेन प्रतिष्ठार्थेन च वज्रपदत्वमर्थव्यञ्जनयोरनुगन्तव्यम्। तत्र कतमोऽर्थः कतमद् व्यञ्जनम्। अर्थ उच्यते सप्तप्रकारोऽधिगमार्थो यदुत बुद्धार्थो धर्मार्थः संघार्थो धात्वर्थो बोध्यर्थो गुणार्थः कर्मार्थश्च। अयमुच्यतेऽर्थः। यैरक्षरैरेष सप्तप्रकारोऽधिगमार्थः सूच्यते प्रकाश्यत इदमुच्यते व्यञ्जनम्। स चैष वज्रपदनिर्देशो विस्तरेण यथासूत्रमनुगन्तव्यः।

अनिदर्शनो ह्यानन्द तथागतः। स न शक्यश्चक्षुषा द्रष्टुम्। अनभिलाप्यो ह्यानन्द धर्मः। स न शक्यः कर्णेन श्रोतुम्। असंस्कृतो ह्यानन्द संघः। स न शक्यः कायेन वा चित्तेन वा पर्युपासितुम्। इतीमानि त्रीणि वज्रपदानि दृढाध्याशयपरिवर्तानुसारेणानुगन्तव्यानि।

तथागतविषयो हि शारिपुत्रायमर्थस्तथागतगोचरः। सर्वश्रावक-प्रत्येकबुद्धैरपि तावच्छारिपुत्रायमर्थो न शक्यः सम्यक् स्वप्रज्ञया द्रष्टुं वा प्रत्यवेक्षितुं वा। प्रागेव बालपृथग्जनैरन्यत्र तथागतश्रद्धागमनतः। श्रद्धागमनीयो हि शारिपुत्र परमार्थः। परमार्थ इति शारिपुत्र सत्त्वधातोरेतदधिवचनम्। सत्त्वधातुरिति शारिपुत्र तथागतगर्भस्यैतदधिवचनम्। तथागतगर्भ इति शारिपुत्र धर्मकायस्यैतदधिवचनम्। इतीदं चतुर्थं वज्रपदमनूनत्वापूर्णत्वनिर्देशपरिवर्तानुसारेणानुगन्तव्यम्।

अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरिति भगवन् निर्वाणधातोरेतदधिवचनम्। निर्वाणधातुरिति भगवन् तथागतधर्मकायस्यैतदधिवचनम्। इतीदं पञ्चमं वज्रपदमार्यश्रीमालासूत्रानुसारेणानुगन्तव्यम्।

योऽयं शारिपुत्र तथागतनिर्दिष्टो धर्मकायः सोऽयमविनिर्भागधर्मा। अविनिर्मुक्तज्ञानगुणो यदुत गङ्गानदी बालुकाव्यतिक्रान्तैस्तथागतधर्मैः। इतीदं षष्ठं वज्रपदमनुनत्वापूर्णत्वनिर्देशानुसारेणानुगन्तव्यम्।

न मञ्जुश्रीस्तथागतः कल्पयति न विकल्पयति। अथवास्यानाभोगेना-कल्पयतोऽविकल्पयत इयमेवंरूपा क्रिया प्रवर्तते। इतीदं सप्तमं वज्रपदं तथागतगुणज्ञानाचिन्त्यविषयावतारनिर्देशानुसारेणानुगन्तव्यम्। इतीमानि समासतः सप्त वज्रपदानि सकलस्यास्य शास्त्रस्योद्देशमुखसंग्रहार्थेन शरीरमिति वेदितव्यम्।

श्रीवज्रसत्त्व को नमस्कार है।

बुद्ध, धर्म, संघ, धातु, बोधि, गुण तथा कर्म वे ही समस्त महायान शास्त्र के शरीर कहे गए हैं। संक्षेप में वे सात वज्रपद कहलाते हैं ॥ १ ॥

वज्रोपम ज्ञातव्य और ज्ञात अर्थ का स्थान ही वज्रपद से अभिहित किया गया है। क्यों यहाँ वज्र शब्द का प्रयोग किया गया है? क्योंकि श्रुतमयी, चिन्तामयी, ज्ञानमयी भावनायें अत्यन्त दुष्प्रतिवेध होने से अनभिलाप्य

---

१. 'बालिका' इति मूलपाठ उपलभ्यते।

स्वभाववाली हैं इसीलिए प्रत्यात्मवेद्य अर्थ को वज्र की उपमा दी गई है। यहाँ जितने अक्षर हैं उनका अर्थ किया जाता है। वे अक्षर ही उस अर्थ को बताते हैं। क्योंकि वे ही उन अर्थों के प्राप्ति के प्रापक रूप मार्ग के द्योतन करने वाले हैं साथ ही उन अर्थों के प्रतिष्ठापक भी हैं अत एव इन्हें पद कहा गया है।

इस प्रकार कठिन अर्थ के बोधक तथा अर्थ के प्रतिष्ठापक होने से भी वज्र और पद के अभिधा तथा व्यञ्जना को समझना चाहिए। यहाँ अर्थ कौन है? तथा व्यञ्जन क्या है? अर्थ सात प्रकार से अभिहित हुआ है। जैसा कि - बुद्धार्थ, धर्मार्थ, संघार्थ, धात्वर्थ, बोध्यर्थ, गुणार्थ और कर्मार्थ। इसे ही अर्थ कहा गया है। जिन अक्षरों से यह सप्तविध अर्थ, जो ज्ञातव्य है उसको सूचित करने से तथा प्रकाशित करने से इसे व्यञ्जन कहा गया है। इस वज्रपद निर्देश को विस्तारपूर्वक उन-उन सूत्रों से जानना चाहिए।

तथागत का आनन्द अनिदर्शन होता है। अर्थात् तथागत के आनन्द को बाहर देखा नहीं जा सकता। तथागत को चक्षु के द्वारा देखना भी संभव नहीं होता। तथागत के आनन्द-धर्म का वर्णन संभव नहीं है। उसे सुना भी नहीं जा सकता है। संघ का आनन्द भी असंस्कृत ही है। चित्त (मन) तथा शरीर के द्वारा उस आनन्द की उपासना भी संभव नहीं है। वे तीन वज्रपदों को दृढ अध्याशय (श्रद्धापूर्णसंकल्प) के द्वारा ही जानना चाहिए।

हे शारिपुत्र! तथागत के विषय को केवल तथागत ही जानते हैं। सभी श्रावक और प्रत्येक बुद्धों के द्वारा भी, हे शारिपुत्र! अपने प्रज्ञा से इसे सुनना देखना और बोलना संभव नहीं है। इससे पूर्व ही कह दिया गया है कि बाल और पृथग्जनों के द्वारा इसे जानना संभव ही नहीं है। हे शारिपुत्र तथागत केवल श्रद्धा से ही जाने जाते हैं। परमार्थ का अर्थ ही सत्त्वधातु के लिए निर्देश समझना चाहिए अर्थात् यह परमार्थ सत्त्व भाजन के कहीं ऊपर है यह जानना चाहिए। सत्त्व धातु भी तथागत गर्भ से कहीं अधिक ऊपर है यह जानना चाहिए। और तथागत गर्भ का अर्थ भी धर्मकाय को निर्देश करने के लिए ही निर्दिष्ट हुआ है। इस प्रकार यह चतुर्थ वज्रपद न्यून न होने से तथा अपूर्ण न होने से निर्देश परिवर्तन के अनुसार ही समझना चाहिए।

अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि भी निर्वाण धातु को संकेत करने के लिए ही भगवान् ने कहा है। निर्वाण धातु भी, हे भगवन्! तथागतधर्मकाय का यह अधिवचन है।

यह पाँचवाँ वज्रपद है जो आर्य श्रीमाला सूत्रानुसार ही बताया गया है इसे जान लेना चाहिए।

हे शारिपुत्र! यह जो तथागत द्वारा निर्दिष्ट धर्मकाय है यह अविनियोग धर्म है। अविनिर्मुक्त ज्ञान गुण से संयुक्त होने से इसे गंगा के बालुका के समान अनन्त तथागत धर्मों से प्रपूरित है। यह छठवाँ वज्रपद है जो न्यून और अपूर्ण नहीं है इसे इसी प्रकार निर्देश के अनुरूप ही समझना चाहिए।

मञ्जुश्री तथागत कल्पना और विकल्पना दोनों नहीं करते हैं। अथवा वे अनाभोगरूप अकल्पना के कारण अविकल्प में रहकर यह, इस प्रकार की क्रिया करते हैं। यह सातवाँ वज्रपद है, जिसे तथागत गुणज्ञान - अचिन्त्य-विषय के अवतार के निर्देशानुसार ही समझना चाहिए। इस प्रकार वे ही सात वज्रपद हैं, संक्षेप में उद्देश बतलाते हुए संग्रह करके, समग्र शास्त्र का शरीर यही बताया गया है। इसे समझना चाहिए॥ १ ॥

स्वलक्षणेनानुगतानि चैषां
यथाक्रमं धारणिराजसूत्रे।
निदानतस्त्रीणि पदानि विद्या-
च्चात्वारि धीमज्जिनधर्मभेदात्॥ २ ॥

एषां च सप्तानां वज्रपदानां स्वलक्षणनिर्देशेन यथाक्रम-मार्यधारणीश्वर-राजसूत्रनिदानपरिवर्तानुगतानि त्रीणि पदानि वेदितव्यानि। तत ऊर्ध्वमवशिष्टानि चत्वारि बोधिसत्त्वतथागतधर्मनिर्देशभेदादिति। तस्माद्यदुक्तम्।

भगवन् सर्वधर्मसमताभिसंबुद्धः सुप्रवर्तितधर्मचक्रोऽनन्त-शिष्यगणसुविनीत इति। एभिस्त्रिभिर्मूलपदैर्यथाक्रमं त्रयाणां रत्नानामनुपूर्वसमुत्पादसमुदागमव्यव-स्थानं वेदितव्यम्। अवशिष्टानि चत्वारि पदानि त्रिरत्नोत्पत्त्यनुरूपहेतुसमुदागमनिर्देशो वेदितव्यः। तत्र यतोऽष्टम्यां बोधिसत्त्वभूमौ वर्तमानः सर्वधर्मवशिताप्राप्तो भवति तस्मात्

स बोधिमण्डवरगतः सर्वधर्मसमताभिसंबुद्ध इत्युच्यते। यतो नवम्यां बोधिसत्त्वभूमौ वर्तमानोऽनुत्तरधर्मभाणकत्वसंपन्नः सर्वसत्त्वाशयसुविधिज्ञ इन्द्रियपरमपारमिताप्राप्तः सर्वसत्त्वक्लेश - वासनानुसंधि-समुद्घातनकुशलो भवति तस्मात् सोऽभिसंबुद्धबोधिः सुप्रवर्तितधर्मचक्र इत्युच्यते। यतो दशम्यां भूमावनुत्तरतथागतधर्मयौवराज्याभिषेक-प्राप्त्यनन्तरमनाभोगबुद्धकार्याप्रतिप्रश्रब्धो भवति तस्मात् स सुप्रवर्तितधर्मचक्रोऽनन्तशिष्यगणसुविनीत इत्युच्यते। तां पुनरनन्तशिष्य-गणसुविनीततां तदनन्तरमनेन ग्रन्थेन दर्शयति। महता भिक्षुसंघेन सार्धं यावदप्रमेयेण च बोधिसत्त्वगणेन सार्धमिति। यथाक्रमं श्रावकबोधौ बुद्धबोधौ च सुविनीतत्वादेवंगुणसमन्वागतैरिति।

ततःश्रावकबोधिसत्त्वगुणवर्णनिर्देशानन्तरमचिन्त्यबुद्धस-माधिवृषभितां प्रतीत्य विपुलरत्नव्यूहमण्डलव्यूहनिर्वृत्तितथागतपरि-षत्समावर्तनविविधदिव्यद्रव्य-पूजाविधानस्तुतिमेघाभिसंप्रवर्षणतो बुद्धरत्नगुणविभागव्यवस्थानं वेदितव्यम्। तदनन्तरमुदारधर्मासनव्यूह-प्रभाधर्मपर्यायनामगुणपरिकीर्तनतो धर्मरत्नगुणविभागव्यवस्थानं वेदितव्यम्। तदनन्तरमन्योन्यं बोधिसत्त्वसमाधिगोचरविषय-प्रभावसंदर्शनतद्विचित्रगुणवर्णनिर्देशतः संघरत्नगुणविभागव्यवस्थानं वेदितव्यम्। तदनन्तरं पुनरपि बुद्धरश्म्यभिषेकैरनुत्तरधर्मराजज्येष्ठ-पुत्रपरमवैशारद्यप्रतिभानोपकरणतां प्रतीत्य तथागतभूतगुणपरमार्थस्तुति-निर्देशतश्च महायानपरमधर्मकथावस्तूपन्यसनतश्च तत्प्रतिपत्तेः परमधर्मैश्वर्यफलप्राप्तिसंदर्शनतश्च यथासंख्यमेषामेव त्रयाणां रत्नानामनुत्तरगुणविभागव्यवस्थानं निदानपरिवर्तावसानगतमेव द्रष्टव्यम्।

ततः सूत्रनिदानपरिवर्तानन्तरं बुद्धधातुः षष्ट्याकारतद्विशुद्धि-गुणपरिकर्मनिर्देशेन परिदीपितः। विशोध्येऽर्थे गुणवति तद्विशुद्धिपरि-कर्मयोगात्। इमं चार्थवशमुपादाय दशसु बोधिसत्त्वभूमिषु पुनर्जातरूपपरिकर्मविशेषोदाहरणमुदाहृतम्। अस्मिन्नेव च सूत्रे तथागतकर्मनिर्देशानन्तरमविशुद्धवैडूर्यमणिदृष्टान्तः कृतः।

तद्यथा कुलपुत्र कुशलो मणिकारो मणिशुद्धिसुविधिज्ञः।

स मणिगोत्रादपर्यवदापितानि मणिरत्नानि गृहीत्वा तीक्ष्णेन खारोदकेनोत्क्षाल्य कृष्णेन केशकम्बलपर्यवदापनेन पर्यवदापयति। न च तावन्मात्रेण वीर्यं प्रश्रम्भयति। ततः पश्चात् तीक्ष्णेनामिषरसेनोत्क्षाल्य खण्डिकापर्यवदापनेन पर्यवदापयति। न च तावन्मात्रेण वीर्यं प्रश्रम्भयति। ततः स पश्चान्महाभैषज्यरसेनोत्क्षाल्य सूक्ष्मवस्त्रपर्यवदापनेन पर्यवदा-पयति। पर्यवदापितं चापगतकाचमभिजातवैडूर्यमित्युच्यते। एवमेव कुलपुत्र तथागतोऽप्यपरिशुद्धं सत्त्वधातुं विदित्वानित्य-दुःखानात्माशुभोद्वेगकथया संसाराभिरतान् सत्त्वानुद्वेजयति। आर्ये च धर्मविनयेऽवतारयति। न च तावन्मात्रेण तथागतो वीर्यं प्रश्रम्भयति। ततः पश्चाच्छून्यानिमित्ताप्रणिहितकथया तथागतनेत्री- मवबोधयति। न च तावन्मात्रेण तथागतो वीर्यं प्रश्रम्भयति। ततः पश्चादविवर्त्यधर्मचक्रकथया त्रिमण्डलपरिशुद्धिकथया च तथागतविषये तान् सत्त्वानवतारयति नानाप्रकृतिहेतुकान्। अवतीर्णाश्च समानास्तथागतधर्मतामधिगम्यानुत्तरा दक्षिणीया इत्युच्यन्त इति।

एतदेव विशुद्धगोत्रं तथागतधातुमभिसंधायोक्तम् -

यथा पत्थरचुण्णम्हि जातरूपं न दिस्सति।

परिकम्मेण तद् दिट्ठं एवं लोके तथागता इति॥

तत्र कतमे ते बुद्धधातोः षष्ट्याकारविशुद्धिपरिकर्मगुणाः। तद्यथा चतुराकारो बोधिसत्त्वालंकारः। अष्टाकारो बोधिसत्त्वावभासः। षोडशाकारी बोधिसत्त्वमहाकरुणा। द्वात्रिंशदाकारं बोधिसत्त्वकर्म।

तन्निर्देशानन्तरं बुद्धबोधिः षोडशाकारमहाबोधिकरुणानिर्देशेन परिदीपिता। तन्निर्देशानन्तरं बुद्धगुणा दशबलचतुर्वैशारद्याष्टाद-शावेणिकबुद्धधर्मनिर्देशेन परिदीपिताः। तन्निर्देशानन्तरं बुद्धकर्म द्वात्रिंशदाकार- निरुत्तरतथागतकर्मनिर्देशेन परिदीपितम्। एवमिमानि सप्त वज्रपदानि स्वलक्षणनिर्देशतो विस्तरेण यथासूत्रमनुगन्तव्यानि। कः पुनरेषामनुश्लेषः।

इन सातों वज्रपदों का स्वलक्षण के निर्देश द्वारा क्रमशः आर्य धारणीश्वर राजसूत्र निदान परिवर्तन के अनुसार तीन पदों को जानना चाहिए। उससे ऊपर

अवशिष्ट चार पदों का अर्थ बोधिसत्त्व-तथागत-धर्म-निर्देश के भेदों से जानना चाहिए। उसमें जैसा कहा गया है।

हे भगवन्! आप सर्वधर्मसमताभिसम्बुद्ध हैं। जिसने धर्मचक्र प्रवर्तन को अत्यन्त निपुणता से प्रारंभ किया और जिसके विनीत अनन्त शिष्यगण भी हैं। इन तीन मूलपदों से क्रमशः तीन रत्नों का अनुक्रम से उत्पाद होने से उच्च स्थान समझना चाहिए। अवशिष्ट चार पद त्रिरत्नों के उत्पत्ति अनुरूप हेतु से समुत्पन्न समझना चाहिए।

वहाँ पर, क्योंकि आठवीं बोधिसत्त्व भूमि में वर्तमान - सर्वधर्म वशिता की प्राप्ति होती है, इसी से बोधिमण्डप में गया हुआ श्रेष्ठ सर्वधर्म समता से संबुद्ध है ऐसा कहा जाता है। क्योंकि नवमी बोधिसत्त्व भूमि में रहकर, अनुत्तर धर्म का अनुभावक, सभी सत्त्वों के आशय के विज्ञाता, इन्द्रियों से सुदूरवर्ती पारमिता को प्राप्त, सभी प्राणियों के क्लेश वासना के जाल को काटने में कुशल होते हैं इसीलिए उन्हें अभिसम्बोधि सम्पन्न धर्मचक्र के प्रवर्तक कहा गया है। और दशवीं भूमि में अनुत्तर तथागत धर्मराज्य के युवराज पद में अभिषिक्त होने से अनारब्ध बुद्धकाय के प्रति योग्यतासिद्ध हाने से, इन्हें सुप्रवर्तित धर्मचक्र तथा अनन्त विनीत शिष्य सम्पत्तियुक्त हैं ऐसा कहा जाता है। उस बोधि के बाद में अनन्त विनीत शिष्यगणों से घिरे हुए हैं यह बाद में दिखाने वाले हैं। बड़े भिक्षुसंघ के साथ वे थे तथा अनेक उत्तम बोधिसत्त्वों से भी घिरे हुए थे। क्रमशः श्रावक बोधि में, बुद्ध बोधि में भी वे अवस्थित थे क्योंकि सुविनीत गुणों से वे चारों ओर से घिरे हुए थे।

उसके बाद, श्रावक-बोधिसत्त्वों के गुणों के अवगाहन पूर्वक अचिन्त्य बुद्धों के अचिन्त्य समाधियों को प्राप्त होकर, विपुल रत्नसमूह मण्डलों से निःसृत होकर तथागत के परिमण्डल में समाविष्ट होकर विविध दिव्य-द्रव्यों से किए जाने वाले पूजाविधान पूर्वक स्तुति करते हुए बुद्धरत्नगुण विभाग का व्यवस्थान, व्यवस्थित ही इसे समझना चाहिए। और, उदार धर्मासन के समूह में अवस्थित होने से तथा धर्म के रहस्य का परिकीर्तन करने से धर्मरत्न गुण विभाग की व्यवस्थिति है ऐसा समझना चाहिए।

उसके बाद अन्योन्य बोधिसत्त्वों को समाधि के ज्ञान के विषयगत प्रभाव के दर्शनपूर्वक विचित्रगुण वर्णनगत निर्देश द्वारा संघरत्नगुण विभाग का बोध करना चाहिए। उसके बाद फिर भी बुद्धरश्मि के अभिषेकों से अनुत्तर धर्म राज के ज्येष्ठ पुत्र के परम वैशारद्य प्रतिमा के उपकरण बनकर तथागत भूतगुण परमार्थ स्तुति के निर्देश पूर्वक महायान परम धर्म कथावस्तु के उपन्यास के द्वारा उसके ज्ञान से परम धर्म, ऐश्वर्य, फल प्राप्ति के दर्शन से, क्रमशः इन-इन तीन रत्नों का विशिष्ट गुण विभाग की व्यवस्था को निदान परिवर्तन के अन्तिम में बताया गया है ऐसा जानना चाहिए।

अब, सूत्र के निदान परिवर्तन के अनन्तर, बुद्ध धातु, ६ प्रकार के आकार और उनकी विशुद्धि को गुण परिकर्म-निर्देश के द्वारा जानना चाहिए। विशोध्य अर्थ के गुण के विषय में उसके विशुद्धि परिकर्म योग से जानना चाहिए। इसी अर्थ को हृदयङ्गम करते हुए दश बोधिसत्त्व भूमियों में पुनर्जात नामक परिकर्म विशेष को उदाहरण के रूप में रखा गया है। इसी सूत्र में तथागत कर्म निर्देश के बाद अविशुद्ध वैडुर्य मणि का दृष्टान्त दिया गया है।

जैसा कि हे कुलपुत्र! कुशल रत्नकार ही मणि के गुण दोष को जानकर उसे शुद्ध करता है। वह मणिकार खानि से अशुद्ध मणिरत्नों को लेकर तीक्ष्ण हथियार (वज्र आदि) से उसे काटकर काले केश के बने हुए कम्बल से फिर ठक देता है। केवल इतने मात्र से इसका सामर्थ्य प्रकट नहीं होता है। उसके बाद तीक्ष्ण आमिष के रस से उसे धोकर विभिन्न औषधों से परिदीपित करता है। केवल इतने मात्र से वह शक्ति सम्पन्न नहीं होता। फिर वह मणिकार महान् औषधियों के रस से उसे धोकर सूक्ष्म (पतले) वस्त्र खण्ड से ढक देता है। इस प्रकार के शुद्धि द्वारा उसके काच आदि अशुद्धियों के निवारण से शुद्ध वैडूर्यमणि है यह ऐसा कहा जाता है।

इसी प्रकार, हे कुलपुत्र! तथागत भी अशुद्ध सत्त्वों को जानकर अनित्य, दुःख, अनात्म, अशुभ आदि कथाओं से संसार में लिप्त प्राणियों को उद्वेलित करते हैं। आर्य धर्म के विनय में उन्हें अवतरित करते हैं। इतने मात्र से तथागत का उत्साह पूर्ण नहीं होता। उसके बाद शून्य आदि अनिमित्त, अप्रणिहित कथाओं से तथागत के ज्ञान का बोध कराते हैं। इतने मात्र से

तथागत का उत्साह पूर्ण नहीं होता। उसके बाद कभी न समाप्त होने वाले धर्मचक्र के कथा से तथा त्रिमण्डल परिशुद्धि कथा से भी तथागतों के विषय में उन सत्त्वों को अनेक प्रकृति कारणों से प्राणियों को अवतरित करते हैं। उसमें अवतीर्ण सत्त्वों को समान तथागत धर्मों का बोध कराकर उन्हें अनुत्तर सम्बोधि युक्त करते हैं। अतः इन्हें दक्षिणीय कहा जाता है।

इसी विशुद्ध तथागत धातु को मन में रखकर यह कहा गया है – जब तक पत्थरों को अलग नहीं किया जाता, तब तक उसके भीतर अवस्थित सुवर्ण नहीं मिलता है। इसी प्रकार विशिष्ट कर्मों के द्वारा ही लोक में तथागत दिखते हैं।

वे कौन से बुद्ध धातु के विशुद्ध ६० परिकर्म गुण हैं? वे हैं – ४ प्रकार के बोधिसत्त्वालङ्कार। ८ प्रकार के बोधिसत्त्वाभास। १६ प्रकार के बोधिसत्त्व-महाकरुणा। ३२ प्रकार के बोधिसत्त्व कर्म हैं।

इस निर्देशन के बाद १६ प्रकार के दलों से संयुक्त महाबोधि करुणा के निर्देश से बुद्ध बोधि परिदीपित होती है। उस निर्देश के बाद, ३२ आकार से युक्त निरुत्तर तथागत कर्म निर्देश से बुद्ध कर्म परिदीपित होता है। इस प्रकार के वे सात वज्रपद स्वलक्षण निर्देश के द्वारा विस्तारपूर्वक उन सूत्तों से जानने चाहिए। इनका अनुश्लेष (सम्बन्ध) क्या है? ॥ २॥

बुद्धाद्धर्मो धर्मतश्चार्यसंघः
संघे गर्भो ज्ञानधात्वाप्तिनिष्ठः।
तज्ज्ञानाप्तिश्चाग्रबोधिर्बलाद्यै-
धर्मैर्युक्ता सर्वसत्त्वार्थकृद्भिः॥ ३ ॥

उक्तः शास्त्रसंबन्धः।

इदानीं श्लोकानामर्थो वक्तव्यः। ये सत्त्वास्तथागतेन विनीतास्ते तथागतशरणं गच्छन्तो धर्मतानिष्यन्दाभिप्रसादेन धर्मं च संघं च शरणं गच्छन्ति। अतस्तत्प्रथमतो बुद्धरत्नमधिकृत्य श्लोकः।

बुद्ध से धर्म, धर्म से आर्यसङ्घ, संघ में बोधिगर्भ, जो ज्ञानधातु के आप्रत्व में परिनिष्ठित होता है। उस ज्ञान के द्वारा अग्रगति में अवस्थित बोधिसत्त्व, महासत्त्वों के गणों से सर्वप्राणियों के हित के लिए धर्मप्राप्त होता

है। वही ज्ञप्ति भी है॥ ३ ॥

इस प्रकार शास्त्र का सम्बन्ध निरूपित किया गया है। यहाँ, अब, श्लोक का अर्थ करना चाहिए। जो सत्त्वगण तथागत के द्वारा दीक्षित हुए हैं वे तथागत के शरण में जाते हुए धर्मनिष्यन्द के प्रसाद से आप्लावित होकर धर्म और संघ के शरण में जाते हैं। इसीलिए सर्वप्रथम बुद्धरत्न को मन में रखकर यह श्लोक कहा गया है।

यो बुद्धत्वमनादिमध्यनिधनं शान्तं विबुद्धः स्वयं
बुद्ध्वा चाबुधबोधनार्थमभयं मार्गं दिदेश ध्रुवम्।
तस्मै ज्ञानकृपासिवज्रवरधृग्दुःखाङ्कुरैकच्छिदे
नानादृग्गहनोपगूढविमतिप्राकारभेत्ते नमः॥ ४ ॥

उस दुःख के अङ्कुर को काटने वाले (बुद्ध को) नमस्कार है। जिस बुद्ध ने आदि, मध्य और अन्तिम रहित शान्त बुद्धत्व को स्वयं ही जानकर मूर्ख-अल्पज्ञ व्यक्तियों को निश्चित मार्ग का उपदेश दिया है, ऐसे ज्ञान कृपा रूपी उत्तम खड्ग के धारण से दुःख रूपी अङ्कुर का छेदन किया है तथा अनेक दिशाओं में परिव्याप्त, मजबूत विमति (मूर्खता) रूप प्राकार (दिवार) का भेदन किया है॥ ४ ॥

अनेन किं दर्शयति।

असंस्कृतमनाभोगमपरप्रत्ययोदितम्।
बुद्धत्वं ज्ञानकारुण्यशक्त्युपेतं द्वयार्थवत्॥ ५ ॥

अनेन समासतोऽष्टाभिर्गुणैः संगृहीतं बुद्धत्वमुद्भावितम्। अष्टौ गुणाः कतमे। असंस्कृतत्वमनाभोगतापरप्रत्ययाभिसंबोधिर्ज्ञानं करुणा शक्तिः स्वार्थसंपत् परार्थसंपदिति।

इससे क्या दिखाते हैं?

बुद्धत्व में आठ गुण हैं। वे हैं – असंस्कृत, अनाभोग जो अपर प्रत्यय से उदित हुआ है। वही ज्ञान करुणा रूपी शक्ति से युक्त है दो अर्थों – सम्पत्तियों के तरह॥ ५ ॥

अनादिमध्यनिधनप्रकृतत्वादसंस्कृतम्।
शान्तधर्मशरीरत्वादनाभोगमिति स्मृतम्॥ ६ ॥

इस श्लोक के द्वारा संक्षेप में आठ गुणों से संग्रह करके बुद्धत्व का उद्भावन किया गया है। वे आठ गुण कौन से है?

१ – असंस्कृतत्व, २ – अनाभोगत्व, ३ – अपरपत्ययत्व, ४ – अभिसंबोधि, ५ – ज्ञान, ६ – करुणा, ७ – शक्ति = स्वार्थ संपत् + परार्थ-संपत्। ॥ ६ ॥

अनादि अमध्य और अनिधन होने से ही यह असंस्कृत है। शान्त धर्मयुक्त होने से ही इसे अनाभोग कहा गया है॥ ६ ॥

प्रत्यात्ममधिगम्यत्वादपरप्रत्ययोदयम्।
ज्ञानमेवं त्रिधा बोधात् करुणा मार्गदेशनात्॥ ७ ॥

प्रत्येक चित्त में बोध होने से, अपर प्रत्यय के रूप में उदित हुआ है। इस प्रकार ज्ञान तीन प्रकार का है – बोध से, करूणा से तथा मार्ग के उपदेश के कारण॥ ७ ॥

शक्तिर्ज्ञानकृपाभ्यां तु दुःखक्लेशनिबर्हणात्।
त्रिभिराद्यैर्गुणैः स्वार्थः परार्थः पश्चिमैस्त्रिभिः॥ ८ ॥

ज्ञान और कृपा के द्वारा साथ ही दुःख और क्लेश के नाश से शक्ति की अवस्थिति होती है। उपर्युक्त आदि के तीन गुणों से स्वार्थ सम्पत् (शक्ति) तथा परार्थ (शक्ति) अन्य तीन गुणों से घोषित होती है॥ ८ ॥

संस्कृतविपर्ययेणासंस्कृतं वेदितव्यम्। तत्र संस्कृतमुच्यते यस्योत्पादोऽपि प्रज्ञायते स्थितिरपि भङ्गोऽपि प्रज्ञायते। तदभावाद्बुद्धत्व-मनादिमध्यनिधनमसंस्कृतधर्मकायप्रभावितं द्रष्टव्यम्। सर्वप्रपञ्चविकल्पोपशान्तत्वादनाभोगम्। स्वयंभूज्ञानाधिगम्यत्वादपर-प्रत्ययोदयम्। उदयोऽत्राभिसंबोधोऽभिप्रेतोत्पादः। इत्यसंस्कृतादप्रवृत्ति-लक्षणादपि तथागतत्वादनाभोगतः सर्वसंबुद्धकृत्यमा-संसारकोटेरनुपर-तमनुपच्छिन्नं प्रवर्तते।

इत्येवमत्यद्भुताचिन्त्यविषयं बुद्धत्वमश्रुत्वा परतः स्वयमनाचार्यकेण स्वयंभूज्ञानेन निरभिलाप्यस्वभावतामभिसंबुध्य तदनुबोधं प्रत्यबुधानामपि जात्यन्धानां परेषामनुबोधाय तदनुगामिमार्गव्युपदेशकरणादनुत्तरज्ञानकरुणान्वितत्वं वेदितव्यम्।

मार्गस्याभयत्वं लोकोत्तरत्वात्। लोकोत्तरत्वमपुनरावृत्तितश्च। यथाक्रमं परदुःखक्लेशमूलसमुदघातं प्रत्यनयोरेव तथागतज्ञानकरुणयोः शक्तिरसिवज्रदृष्टान्तेन परिदीपिता। तत्र दुःखमूलं समासतो या काचिद्भवेषु नामरूपाभिनिर्वृत्तिः। क्लेशमूलं या काचित्सत्कायाभिनिवेशपूर्विका दृष्टिर्विचिकित्सा च। तत्र नामरूपसंगृहीतं दुःखमभिनिर्वृत्तिलक्षणत्वादङ्कुरस्थानीयं वेदितव्यम्। तच्छेत्तृत्वे तथागतज्ञानकरुणयोः शक्तिरसिदृष्टान्तेनोपमिता वेदितव्या। दृष्टिविचिकित्सासंगृहीतो दर्शनमार्गप्रहेयः क्लेशो लौकिकज्ञानदुरवगाहो दुर्भेद्त्वाद्वनगहनोपगूढप्राकारसदृशः। तद्भेत्तृत्वात् तथागतज्ञानकरुणयोः शक्तिर्वज्रदृष्टान्तेनोपमिता वेदितव्या।

इत्येते यथोद्दिष्टाः षट् तथागतगुणा विस्तरविभागनिर्देशतोऽनयैवानुपूर्व्या सर्वबुद्धविषयावतारज्ञानालोकालंकारसूत्रानुसारेणानुगन्तव्याः। तत्र यदुक्तमनुत्पादोऽनिरोध इति मञ्जुश्रीस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध एष इत्यनेन तावदसंस्कृतलक्षणस्तथागत इति परिदीपितम्। यत्पुनरनन्तरं विमलवैडूर्यपृथिवी-शक्रप्रतिबिम्बोदाहरणमादिं कृत्वा यावन्नवभिरुदाहरणैरेतमेवानुत्पादानिरोध-तथागतार्थमधिकृत्याह। एवमेव मञ्जुश्रीस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो नेञ्जते न विठपति न प्रपञ्चयति न कल्पयति न विकल्पयति। अकल्पोऽविकल्पोऽचित्तोऽमनसिकारः शीतीभूतोऽनुत्पादोऽनिरोधोऽदृष्टोऽश्रुतोऽनाघ्रातोऽनास्वादितोऽस्पृष्टोऽनिमित्तोऽविज्ञप्तिकोऽविज्ञपनीय इत्येवमादिरुपशमप्रभेदप्रदेश निर्देशः। अनेन स्वक्रियासु सर्वप्रपञ्चविकल्पोपशान्तत्वादनाभोगस्तथागत इति परिदीपितम्। तत ऊर्ध्वमुदाहरणनिर्देशादवशिष्टेन ग्रन्थेन सर्वधर्मतथताभिसंबोधमुखेष्वपरप्रत्ययाभिसंबोधस्तथागतस्य परिदीपितः। यत्पुनरन्ते षोडशाकारां तथागतबोधिं निर्दिश्यैवमाह। तत्र मञ्जुश्रीस्तथागतस्यैवंरूपान् सर्वधर्मानभिसंबुध्य सत्त्वानां च धर्मधातु व्यवलोक्याशुद्धमविमलं साङ्गनं विक्रीडिता नाम सत्त्वेषु महाकरुणा प्रवर्तत इति। अनेन तथागतस्यानुत्तरज्ञानकरुणान्वितत्वमुद्भावितम्। तत्रैवंरूपान् सर्वधर्मानिति यथापूर्वं निर्दिष्टानभावस्वभावात्। अभिसंबुध्येति यथाभूतम-

विकल्पबुद्धज्ञानेन ज्ञात्वा। सत्त्वानामिति नियतानियतमिथ्यानियतराशिव्यवस्थितानाम्। धर्मधातुमिति स्वधर्मताप्रकृतिनिर्विशिष्टतथागतगर्भम्। व्यवलोक्येति सर्वाकारमनावरणेन बुद्धचक्षुषा दृष्ट्वा। अशुद्धं क्लेशावरणेन बालपृथग्जनानाम्। अविमलं ज्ञेयावरणेन श्रावकप्रत्येकबुद्धानाम्। साङ्गनं तदुभयान्यतमविशिष्टतया बोधिसत्त्वानाम्। विक्रीडिता विविधा संपन्नविनयोपायमुखेषु सुप्रविष्टत्वात्। सत्त्वेषु, महाकरुणा प्रवर्तत इति समतया सर्वसत्त्वनिमित्तमभिसंबुद्ध बोधेः स्वधर्मताधिगमसंप्रापणाशयत्वात्। यदुत ऊर्ध्वमनुत्तरज्ञानकरुणाप्रवृत्तेरसमधर्मचक्रप्रवर्तनाभिनिर्हारप्रयोगाश्रंसनमियमनयोः परार्थकरणे शक्तिर्वेदितव्या। तत्रैषामेव यथाक्रमं षण्णां तथागतगुणानामाद्यैस्त्रिभिरसंस्कृतादिभिर्योगः स्वार्थसंपत्। त्रिभिरवशिष्टैर्ज्ञानादिभिः परार्थसंपत्। अपि खलु ज्ञानेन परमनित्योपशान्तिपदस्वाभिसंबोधिस्थानगुणात् स्वार्थसंपत् परिदीपिता। करुणाशक्तिभ्यामनुत्तरमहाधर्मचक्रप्रवृत्तिस्थान गुणात् परार्थसंपदिति।

संस्कृत के विपर्यय को ही असंस्कृत कहा गया है। जिसकी उत्पत्ति का ज्ञान हो साथ ही स्थिति और नाश का भी ज्ञान होता हो तो वह संस्कृत है। उस संस्कृत के अभाव होने से बुद्धत्व आदि, मध्य और अन्त से रहित प्रकट हुआ है। साथ ही वह बुद्धत्व धर्मकाय से युक्त भी है। समग्र प्रपञ्च विकल्प रहित होना ही अनाभोग है। स्वयं भू-ज्ञान के अधिगम के कारण उसे अपर प्रत्यय कहा गया है। उदय का अर्थ अभिसंबोधि है। वही उत्पत्ति है। इस प्रकार असंस्कृत और अप्रवृत्तिलक्षण से भी तथागत होने से अनाभोग के द्वारा सर्वबुद्धों के कृत्य समग्र संसार में अनुपरत एवं अनुच्छिन्न भी है।

इस प्रकार का का अद्भुत एवं अचिन्त्य विषय रूप बुद्धत्व को विना श्रवण किए ही दूसरे को आचार्य न बनाकर ही निरभिलाप्य स्वभाव को जानकर, उसे समझकर विद्वान होते हुए भी जन्म से ही अज्ञानान्धकार में रमे हुए लोगों के बोध के लिए उनके अनुसरण हेतु मार्ग के उपदेश से अनुत्तर ज्ञान के दाता भगवान् तथागत महाकरुणा से आप्लावित हैं यह जानना चाहिए। लोकोत्तर होने से यह मार्ग अभय है। लोकोत्तर होने से फिर लौटना भी इसमें नहीं है। क्रमशः दूसरों के दुःख और क्लेशों को समूल उखाड़ने के लिए ही

तथागत के ज्ञान और करुणाओं के शक्ति लगी रहती है यह वज्र और खड्ग के दृष्टान्त से बताया गया है। यहाँ दुःख का मूल, संक्षेप में, संसार में फिर जन्म लेना ही है। क्लेश का मूल इस संसार में शरीर के प्रति आसक्ति पूर्वक पदार्थों की कामना ही है। अतएव नाम और रूपों के द्वारा सिंचित यह भव ही दुःख का अङ्कुर है यह समझना चाहिए।

उन दुःख और क्लेशों को छेदन करने के लिए ज्ञान और करूणा की शक्ति को खड्ग के दृष्टान्त से दिखाया गया है। दृष्टि और विचिकित्सा को संग्रहीत करके उस क्लेश मार्ग को छोड़ने के लिए लौकिक ज्ञान से वह संभव नहीं है इस प्रकार सांसारिक क्लेशों का मार्ग भी अत्यन्त कठोर है जिसे बताने के लिए जंगल के भयङ्कर दिवार की उपमा दी गई है। उस दिवार को गिराने के लिए ही तथागत के ज्ञान और करुणा हैं वही शक्ति है, इसीलिए यह उपमा दी गई है।

इस प्रकार ऊपर निर्दिष्ट ६ तथागत के गुणों को उन-उन निर्देशों से यथाक्रम सर्वबुद्ध विषय-अवतार ज्ञानालोक अलङ्कार सूत्रानुसार ही जानना चाहिए। वहाँ जो अनुत्पाद निरोध आदि कहा गया है, वह मञ्जुश्री, तथागत, अर्हत् वह सम्यक सम्बुद्ध ही है। इस प्रकार असंस्कृत लक्षण वाले ही तथागत हैं यह दिखाया गया है। उसके बाद निर्मल वैडुर्य, शुक्र आदि प्रतिबिम्बों के उदाहरण हैं उन्हें अन्य ८ उदाहरणों से इसी अनुत्पाद-निरोध को ही दिखाया गया है। इसी प्रकार मञ्जुश्री तथागत, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध कभी भी नहीं देखते, नहीं बोलते, प्रपञ्च नहीं करते, कल्पना नहीं करते और विकल्प भी नहीं करते हैं। (यहाँ) अकल्पना, अविकल्पना, अचित्त मनसिकार, शीतीभूत, अनुत्पाद, अनिरोध, अदृष्ट, अश्रुत, अनाघ्रात, अनास्वादित, अस्पृष्ट, अनिमित्त, अविज्ञप्तिक, अविज्ञापनीय आदि के द्वारा उपशम (शान्त) के प्रभेद ही निर्दिष्ट हुए हैं। इसके द्वारा अपनी क्रिया में, सर्वप्रपञ्च, विकल्पों के उपशान्ति के कारण तथागत अनाभोग हैं यह बताया गया है। उसके ऊपर उदाहरण के द्वारा अवशिष्ट ग्रन्थ से सर्व-धर्म-तथता के अभिसंबोधि में अपर प्रत्यय के अभिज्ञान युक्त तथागत हैं यह दिखाया गया है। अन्तिम में फिर १६ आकारों वाला तथागत बोधिका निर्देश किया गया है। वहाँ पर मञ्जुश्री

तथागत का यह स्वरूप है कि सभी धर्मों को जानकर, प्राणियों के धर्मधातु को देखकर अविशुद्ध, अविमल, अङ्गों के सहित समग्र प्राणियों में उनकी महाकरूणा प्रसृत-परिव्याप्त होती है। इसके द्वारा तथागत का अनुत्तर ज्ञान और करूणा का निर्देश हुआ है। इस प्रकार के स्वरूप को सर्वधर्मयुक्त बताते हुए पूर्व निर्दिष्ट गुण ही प्रकारान्तर से कहे गए हैं। अभिसंबुद्ध का अर्थ है यथार्थ तत्त्व को उसी रूप में ग्रहण करने से है। सत्त्वों का अर्थ है नियत, अनियत तथा मिथ्या नियत वाले प्राणियों से है। धर्म धातु का तात्पर्य स्वधर्म-प्रकृति निर्विशिष्ट तथागत गर्भ से है।

देखकर का तात्पर्य - सर्वाकार को अनावृत करके बुद्ध चक्षु से देखना है। क्लेशावरण के द्वारा बाल-पृथग्जनों का अशुद्ध निर्दिष्ट हुआ है। ज्ञेयावरण से श्रावक-प्रत्येक बुद्धों का अविमल प्रकट किया गया है। ज्ञेयावरण तथा क्लेशावरण दोनों की बोधिसत्त्वों को भी पार करना है यह साङ्गन शब्द से अभिहित है। विनयों से सम्पन्न शिष्यों के लिए ही क्रीडा की बात हुई है। प्राणियों में महाकरूणा प्रवर्तित हुई है इसी के लिए समता से सभी प्राणियों के निमित्त अभिसंबुद्ध बोधि की स्वधर्मताधिगम प्राप्ति के आशय के कारण निर्दिष्ट किया गया है। अनुत्तर ज्ञान और करूणा प्रवृत्ति के कारण असमधर्मचक्र प्रवर्तना के बहाने से परार्थ के लिए ही शक्ति को जानना चाहिए। इन्हीं का क्रमशः ६ तथागत गुणों में से पहले के ३ से असंस्कृत योग नामक स्वार्थ संपत् निर्दिष्ट है। अवशिष्ट तीनों से परार्थ संपत् कहा गया है। और भी, ज्ञान के द्वारा परम, नित्य, उपशान्ति का अपना स्थान बोधिगुणों से स्वार्थसंपत् प्रकाशित हुई है। करूणा और शक्ति से अनुत्तर महान् धर्मचक्र प्रवृत्ति स्थानात्मक गुण के द्वारा परार्थ संपत् को दर्शाया गया है॥ ८ ॥

अतो बुद्धरत्नाद्धर्मरत्नप्रभावनेति तदनन्तरं तदधिकृत्य श्लोकः।

यो नासन्न च सन्न चापि सदसन्नान्यः सतो नासतो
ऽशक्यस्तर्कयितुं निरुक्त्यपगतः प्रत्यात्मवेद्यः शिवः।
तस्मै धर्मदिवाकराय विमलज्ञानावभासत्विषे
सर्वारम्वणरागदोषतिमिरव्याघातकर्त्रे नमः॥ ९ ॥

अतः बुद्धरत्न से ही धर्मरत्न का प्रादुर्भाव हुआ है वह बताने के लिए निम्न श्लोक अवतरित हुआ है।

जो असत् नहीं है, सत् भी नहीं है। सत् और असत् दोनों भी नहीं है। सत् और असत् दोनों से पृथक् भी नहीं है। जिसे तर्क से जानना संभव नहीं है। परिभाषा से ही कुछ जाना जा सकता है। प्रत्यात्मवेद्य और शिव है। ऐसे विमल-ज्ञान को प्रकाशित करने वाले, धर्म के सूर्यस्वरूप, सभी प्रकार के राग दोष जन्य अन्धकार को नाश करने वाले बुद्ध को नमस्कार है॥ ९ ॥

अनेन किं दर्शितम्।

अचिन्त्याद्वयनिष्कल्पशुद्धिव्यक्तिविपक्षतः।
यो येन च विरागोऽसौ धर्मः सत्यद्विलक्षणः॥ १० ॥

अनेन समासतोऽष्टाभिर्गुणैः संगृहीतं धर्मरत्नमुद्भावितम्। अष्टौ गुणाः कतमे। अचिन्त्यत्वमद्वयता निर्विकल्पता शुद्धिरभिव्यक्तिकरणं प्रतिपक्षता विरामो विरागहेतुरिति।

इससे क्या दिखाया गया है।

इस श्लोक से संक्षेप में आठ गुणों से युक्त धर्मरत्न का निर्देश किया गया है। वे आठ गुण हैं - अचिन्त्य, अद्वय, निर्विकल्प, शुद्धि, अभिव्यक्तिकरण, प्रतिपक्षता, विराग और विराग का कारण॥ १० ॥

निरोधमार्गसत्याभ्यां संगृहीता विरागिता।
गुणैस्त्रिभिस्त्रिभिश्चैते वेदितव्ये यथाक्रमम्॥ ११ ॥

एषामेव यथाक्रमं षण्णां गुणानां त्रिभिराद्यैरचिन्त्याद्वयनिर्विकल्पतागुणैर्निरोधसत्यपरिदीपनाद्विरागसंग्रहो वेदितव्यः। त्रिभिरवशिष्टैः शुद्ध्यभिव्यक्तिप्रतिपक्षतागुणैर्मार्गसत्यपरिदीपनाद्विरागहेतुसंग्रह इति। यश्च विरागो निरोधसत्यं येन च विरागो मार्गसत्येन तदुभयमभिसमस्य व्यवदानसत्यद्वयलक्षणो विरागधर्म इति परिदीपितम्।

इन्हीं ६ गुणों का क्रमशः प्रथम तीन गुणों से निरोधसत्य का परीदीपन करके विराग का संग्रह किया गया है। अवशिष्ट तीनों से मार्गसत्य का परिदीपन करके विराग का हेतु ही अभिव्यक्त हुआ है। जो विराग है वह निरोध सत्य है, जिससे विराग मार्ग सत्य से दोनों ही अभि समय-व्यवदान

सत्यरूप द्वयलक्षण ही विरागधर्म है ऐसा परिदीपन हुआ है॥ ११ ॥

अतर्क्यत्वादलाप्यत्वादार्यज्ञानादचिन्त्यता।
शिवत्वादद्वयाकल्पौ शुद्ध्यादि त्रयमर्कवत्॥ १२ ॥

समासतो निरोधसत्यस्य त्रिभिः कारणैरचिन्त्यत्वं वेदितव्यम्। कतमैस्त्रिभिः। असत्सत्सदसन्नोभयप्रकारैश्चतुर्भिरपि तर्कागोचरत्वात्। सर्वरुतरवितघोषवाक्पथनिरुक्तिसंकेतव्यवहाराभिलापैरनभिलाप्यत्वात्। आर्याणां च प्रत्यात्मवेदनीयत्वात्।

संक्षेप में निरोध सत्य का तीन कारणों से अचिन्त्यता उल्लिखित है। वे तीन हैं असत्, सत्, सदसत् और दोनों का अभाव करके कभी-कभी चार भी कारण होते हैं क्योंकि वह तर्कों से परे है। यह सभी प्रकार के शब्दों के द्वारा किए जाने वाले समस्त वाग्व्यवहार से यह तत्त्व बहुत दूर है। इसके क्षेत्र में यह कभी भी नहीं आता है। और आर्यों के द्वारा यह प्रत्यात्मवेद्य है। स्वसंवेदनात्मक मात्र है।

तत्र निरोधसत्यस्य कथमद्वयता निर्विकल्पता च वेदितव्या। यथोक्तं भगवता। शिवोऽयं शारिपुत्र धर्मकायोऽद्वयधर्माविकल्पधर्मा। तत्र द्वयमुच्यते कर्म क्लेशाश्च। विकल्प उच्यते कर्मक्लेशसमुदयहेतुरयोनिशोमनसिकारः। तत्प्रकृति-निरोधप्रतिवेधाद् द्वयविकल्पासमुदाचारयोगेन यो दुःखस्यात्यन्तमनुत्पाद इदमुच्यते दुःखनिरोधसत्यम्। न खलु कस्यचिद्धर्मस्य विनाशाद्दुःखनिरोधसत्यं परिदीपितम्। यथोक्तम्। अनुत्पादानिरोधे मञ्जुश्रीश्चित्तमनोविज्ञानानि न प्रवर्तन्ते। यत्र चित्तमनोविज्ञानानि न प्रवर्तन्ते तत्र न कश्चित्परिकल्पो येन परिकल्पेनायोनिशोमनसिकुर्यात्। स योनिशोमनसिकारप्रयुक्तोऽविद्यां न समुत्थापयति। यच्चाविद्यासमुत्थानं तद् द्वादशानां भवाङ्गानामसमुत्थानम्। साजातिरिति विस्तरः। यथोक्तम्। न खलु भगवन् धर्मविनाशो दुःखनिरोधः। दुःखनिरोधनाम्ना भगवन्ननादिकालिकोऽकृतोऽजातो-ऽनुत्पन्नोऽक्षयः क्षयापगतः नित्यो ध्रुवः शिवः शाश्वतः प्रकृतिपरिशुद्धः सर्वक्लेशकोशविनिर्मुक्तो गङ्गाबालुका व्यतिवृत्तैरविनिर्भागैरचिन्त्यै-र्बुद्धधर्मैः समन्वागतस्तथागतधर्मकायो देशितः। अयमेव च भगवंस्तथाग-

तधर्मकायोऽविनिर्मुक्तक्लेशकोशस्तथागतगर्भः सच्यते। इति सर्वविस्तरेण यथासूत्रमेव दुःखनिरोधसत्यव्यवस्थानमनुगन्तव्यम्।

निरोधसत्य की निर्विकल्पता और अद्वयता कैसे जाने? जैसा कि भगवान् ने कहा है - हे शारिपुत्र! यह धर्मकाय शिव है, जितने भी धर्म हैं वे ही अद्वय हैं। कर्म और क्लेश ही द्वय हैं। विकल्प हैं - कर्म, क्लेश, समुदय, हेतु और अयोनिशोमनसिकार। उसके प्रकृति निरोध के द्वारा द्वय के विकल्प असमुदाचार से दुःख का आत्यन्तिक अनुत्पाद होता है वही दुःख-निरोध सत्य है। किसी भी धर्म के विनाश से दुःखनिरोध सत्य का निषेध नहीं होता। जैसा कि कहा है - अनुत्पाद निरोध में मञ्जुश्री, चित्त और मनोविज्ञान आदि प्रवृत्त नहीं होते। जहाँ चित्त और मनोविज्ञान प्रवृत्त नहीं होते वहाँ कुछ भी विकल्पित नहीं होता इससे अयोनिशोमनसिकार की भी प्रवृत्ति नहीं होती। वह योनिशोमनसिकार द्वारा अविद्या का उत्थापन नहीं होता। जो अविद्या का समुत्थान है वह द्वादश भवाङ्गों को समुत्थान ही है। सजातीय ही हैं यह विस्तार है। जैसा कि कहा है - हे भगवन्! धर्मों का विनाश दुःख निरोध नहीं है। दुःख निरोध के नाम से हे भगवन्! अनादिकालिक अकृत, अजात, अनुत्पन्न, अक्षय, क्षयापगत, नित्य, ध्रुव, शिव, शाश्वत, प्रकृतिपरिशुद्ध, सर्वक्लेश कोश विनिर्मुक्त होने से गङ्गा के बालुका के समान अविभक्त अचिन्त्य बुद्ध धर्मों के द्वारा संयुक्त तथागत का धर्मकाय बताया गया है। यही तथागत का धर्मकाय है जो अविनिर्मुक्त, क्लेश कोशरहित तथागत गर्भ कहा गया है। इस सबका विस्तार उन-उन सूत्रों के माध्यम से दुःख-निरोध-सत्य व्यवस्था को समझना चाहिए।

अस्य खलु दुःखनिरोधसंज्ञितस्य तथागतधर्मकायस्य प्राप्तिहेतुरविकल्पज्ञानदर्शनभावनामार्गस्त्रिविधेन साधर्म्येण दिनकरसदृशः वेदितव्यः। मण्डल-विशुद्धिसाधर्म्येण सर्वोपक्लेशमलविगतत्वात्। रूपाभिव्यक्तिकरणसाधर्म्येण सर्वाकारज्ञेयावभासकत्वात्। तमःप्रतिपक्षसाधर्म्येण च सर्वाकारसत्यदर्शनविबन्धप्रतिपक्षभूतत्वात्।

निश्चय ही दुःखनिरोध नामक तथागत धर्मकाय के प्राप्ति का कारणभूत अविकल्पित - ज्ञान - दर्शनभावानारूप मार्ग तीन प्रकार के साधर्म्य से सूर्य

के तरह ही जानना चाहिए। मण्डल विशुद्धि - साधर्म्य से समग्र क्लेशों का विनाश होता है। काय के स्वरूप के अभिव्यक्ति के द्वारा सर्वाकार और ज्ञेयाकारता का बोध होता है। अन्धकार के विरोधी सूर्य के साधर्म्य से सर्वाकार सत्य दर्शनात्मक प्रतिपक्ष का क्षय सूचित किया गया है।

विबन्धः पुनरभूतवस्तुनिमित्तारम्बणमनसिकारपूर्विका रागद्वेषमोहोत्पत्तिरनुशयपर्युत्थानयोगात्। अनुशयतो हि बालानामभूतम-तत्स्वभावं वस्तु शुभाकारेण वा निमित्तं भवति रागोत्पत्तितः। प्रतिघाकारेण वा द्वेषोत्पत्तितः। अविद्याकारेण वा मोहोत्पत्तितः। तच्च रागद्वेषमोहनिमित्त-मयथाभूतमारम्बणं कुर्वतामयोनिशोमनसिकारश्चित्तं पर्याददाति। तेषामयोनिशोमनसिकारपर्यवस्थितचेतसां रागद्वेषमोहानामन्यतमक्ले-शसमुदाचारो भवति। ते ततोनिदानं कायेन वाचा मनसा रागजमपि कर्माभिसंस्कुर्वन्ति। द्वेषजमपि मोहजमपि कर्माभिसंस्कुर्वन्ति। कर्मतश्च पुनर्जन्मानुबन्ध एव भवति। एवमेषां बालानामनुशयवतां निमित्तग्रा-हिणामारम्बणचरितानामयोनिशोमनसिकारसमुदाचारात् क्लेशसमुदयः। क्लेशसमुदयात् कर्मसमुदयः। कर्मसमुदयागान्मसमुदयो भवति। स पुनरेष सर्वाकारक्लेशकर्मजन्मसंक्लेशो बालानामेकस्य धातोर्यथाभूतमज्ञाना-ददर्शनाच्च प्रवर्तते।

अभूत पदार्थ के निमित्त - आरम्भक मनसिकारपूर्वक राग-द्वेष-मोहोत्पत्ति के अनुशय पर्युत्थान के योग से विबन्ध का उल्लेख हुआ। अनुशय से ही बालकों का अभूत, अतत्स्वभाव का वस्तुरूप शुभ-आकार से रागोत्पत्ति द्वारा वह निमित्त होता है। प्रतिघ के कारण द्वेष की उत्पत्ति होती है। मोहोत्पत्ति से अविद्या प्रवर्तित होती है। वह तो राग-द्वेष-मोह निमित्तक अयथाभूत आरम्बण करने वाले अयोनिशमनसिकार रूप चित्त की उत्पत्ति होती है। उनकी अयोनिशमनसिकार पर्यवस्थित चित्रवालों का राग-द्वेष-मोहों का अन्यतम क्लेश समुदाचार होता है। वे, उसके बाद निदान को काय, वचन और मन से राग से समुत्पन्न कर्मों से अभिसंस्कृत होते हैं। द्वेष और मोह से समुत्पन्न कर्म भी करते हैं। कर्मों से पुनर्जन्म की स्थिति बनती है। इस प्रकार इन अनुशयों से युक्त बालों का जो निमित्तों का ग्रहण करते हैं, कर्मों का आरम्भ कर चुकने

वाले, अयोनिसमनसिकार के आचरण से क्लेशों की उत्पत्ति होती है। क्लेशों से कर्मों की उत्पत्ति होती है। कर्मों से जन्म। फिर यह, सर्वाकार क्लेश कर्म जन्म संक्लेश होता है, उसी से बालकों का एक धातु का यथाभूत अज्ञान और अदर्शन से प्रवृत्त होता है।

स च तथा द्रष्टव्यो यथा परिगवेषयन्न तस्य किंचिन्निमित्तमारम्बणं वा पश्यति। स यदा न निमित्तं नारम्बणं वा पश्यति तदा भूतं पश्यति। एवमेते धर्मास्तथागतेनाभिसंबुद्धाः समतया समा इति। य एवमसतश्च निमित्तारम्बणस्यादर्शनात् सतश्च यथाभूतस्य परमार्थसत्यस्य दर्शनात् तदुभयोरनुत्क्षेपाप्रक्षेपसमताज्ञानेन सर्वधर्मसमताभिसंबोधः सोऽस्य सर्वाकारस्य तत्त्वदर्शनविबन्धस्य प्रतिपक्षो वेदितव्यो यस्योदयादितर-स्यात्यन्तमसंगतिरसमवधानं प्रवर्तते। स खल्वेष धर्मकायप्राप्तिहेतुर-विकल्पज्ञानदर्शनभावनामार्गो विस्तरेण यथासूत्रं प्रज्ञापारमिता-नुसारेणानुगन्तव्यः।

उसे ऐसे देखना चाहिए की उसका गवेषण करते हुए भी उसका कुछ भी निमित्त और आरम्बण को न दिख सके। जब वह निमित्त और आरम्बण को नहीं देखता है तब भूत – यथार्थ को देख सकता है। इस प्रकार वे धर्म तथागतों के द्वारा अभिसम्बुद्ध हुए हैं समय के रूप में। इसी प्रकार असत् से भी निमित्तारम्बण का अदर्शन होने से सत् को अर्थात् यथाभूत का दर्शन होने से उन दोनों के अनुत्पेक्षण और अप्रक्षेप समता के ज्ञान से सर्वधर्मसमता का अभिसंबोधात्मक ज्ञान होता है। उससे सर्वाकाररूप तत्त्वदर्शन निबन्ध का प्रतिपक्ष के रूप में जानना चाहिए। जिसके उदय से अन्य अत्यन्त असंगति रूप असमवधान की प्रवृत्ति होती है। वह, यह धर्मकाय प्राप्ति का हेतु अविकल्पित ज्ञानदर्शन भावनामार्ग का विस्तारपूर्वक यथासूत्र प्रज्ञापारमितानुसार समझना चाहिए।

अतो महायानधर्मरत्नादवैवर्तिकबोधिसत्त्वगणरत्नप्रभावनेति तदनन्तरं तदधिकृत्य श्लोकः।

अतः महायान धर्म रत्नों से अवैवर्तिक बोधिसत्त्वगण रूप रत्नों की चमक होती है यही दिखाने के लिए निम्न श्लोक अवतरित हुआ है।

ये सम्यक् प्रतिविध्य सर्वजगतो नैरात्म्यकोटिं शिवां
तच्चित्तप्रकृतिप्रभास्वरतया क्लेशास्वभावेक्षणात्।
सर्वत्रानुगतामनावृतधियः पश्यन्ति संबुद्धतां
तेभ्यः सत्त्वविशुद्ध्यनन्तविषयज्ञानेक्षणेभ्यो नमः॥ १३ ॥

जिन्होंने समग्र प्राणियों के स्वभाव को जान लिया है और नैरात्म्यकोटिरूप शिवस्वरूप को जान लिया है। जिससे उनका चित्त प्रकृति से प्रभास्वर हो गया है तथा क्लेश के स्वभाव के लक्षण से जिनकी बुद्धि सर्वत्र व्यापक हो गयी है, उसी व्यापक बुद्धि से सर्वत्र सम्बुद्धत्व को ही देखते हैं, ऐसे सत्त्वों के विशुद्धि अनन्त विषय रूप ज्ञान-लक्षण युक्त भगवान् को नमस्कार है॥ १३ ॥

अनेन किं दर्शितम्।

इससे क्या दिखाया गया है?

यथावद्यावदध्यात्मज्ञानदर्शनशुद्धितः।
धीमतामविवर्त्यानामनुत्तरगुणैर्गणः॥ १४ ॥

अनेन समासतोऽवैवर्तिकबोधिसत्त्वगणरत्नस्य द्वाभ्यामाकाराभ्यां यथावद्भाविकतया यावद्भाविकतया च लोकोत्तरज्ञानदर्शनविशुद्धितोऽनुत्तरगुणान्वितत्वमुद्भावितम्।

यथावत् यावत् अध्यात्म ज्ञान दर्शन के विशुद्धि से अनुत्तर गुणों से अविवर्त्य, बुद्धिमापन्न बोधिसत्त्वों का परिदीपन किया गया है।

इससे संक्षेप में अविवर्त्य-बोधिसत्त्व रत्नगणों का दो आकारों से जितनी भविष्य में होने वाले लोकोत्तर ज्ञानदर्शन विशुद्धि से, अनुत्तरगुण समूहों से वे सम्पन्न होते हैं यही दिखाया गया है।

यथावत्तज्जगच्छान्तधर्मतावगमात् स च।
प्रकृतेः परिशुद्धत्वात् क्लेशस्यादिक्षयेक्षणात्॥ १५ ॥

तत्र यथावद्भाविकता कृत्स्नस्य पुद्गलधर्माख्यस्य जगतो यथावन्नैरात्म्यकोटेरवगमाद्वेदितव्या। स चायमवगमोऽत्यन्तादिशान्तस्वभावतया पुद्गलधर्माविनाशयोगेन समासतो द्वाभ्यां कारणाभ्यामुत्पद्यते। प्रकृतिप्रभास्वरतादर्शनाच्च चित्तस्यादिक्षयनिरोधदर्शनाच्च तदुपक्लेशस्य। तत्र या चित्तस्य प्रकृतिप्रभास्वरता यश्च तदुपक्लेश इत्येतद् द्वयमनास्रवे

धातौ कुशलाकुशलयोश्चित्तयोरेकचरत्वाद् द्वितीयचित्तानभिसंधानयोगेन परमदुष्प्रतिवेध्यम्। अत आह। क्षणिकं भगवन् कुशलं चित्तम्। न क्लेशैः संक्लिश्यते। क्षणिकमकुशलं चित्तम्। न संक्लिष्टमेव तच्चितं क्लेशैः। न भगवन् क्लेशास्तच्चित्तं स्पृशन्ति। कथमत्र भगवन्नस्पर्शनधर्मि चित्तं तमःक्लिष्टं भवति। अस्ति च भगवन्नुपक्लेशः। अस्त्युपक्लिष्टं चित्तम्। अथ च पुनर्भगवन् प्रकृतिपरिशुद्धस्य चित्तस्योपद्क्लेशार्थो दुष्प्रतिवेध्यः। इति विस्तरेण यथावद्भाविकतामारभ्य दुष्प्रतिवधार्थनिर्देशो यथासूत्रमनुगन्तव्यः।

यथावत् उस जगत् के शान्त धर्मता के अवगमन से वे बोधिसत्त्वगण प्रकृति से ही परिशुद्ध होने से समग्र क्लेशों का क्षय के कारणों के साक्षात्कार करते हैं।

यहाँ यथावद् भाविकता समग्र पुद्गल नामक धर्म का, जगत् का यथावत् नैरात्म्य कोटि के अवगमन से जानना चाहिए। वह, यह अवगमन अन्त्य और आदि शान्ति के कारण पुद्गलधर्म विनाश के योग से संक्षेप में दो कारणों से उत्पन्न होता है। प्रकृति प्रभास्वरता के दर्शन से चित्त की उत्पत्ति, विनाश और निरोध के दर्शन से वह उप-क्लेश बोधित होता है। उसमें जो चित्त की प्रभास्वरता है जो उसका उपक्लेश है वे दोनों ही अनास्रवधातु में कुशल और अकुशल चित्तों का द्वितीय चित्त के अनभिधान योग से परम दुष्प्रतिवेध्य हो जाता है। इसीलिए कहा है। कुशल चित्त क्षणिक होता है हे भगवन्। वह चित्त क्लेशों से प्रभावित नहीं होता। अकुशल चित्त भी क्षणिक ही है। क्लेशों से वह भी आप्लावित नहीं होता। क्लेश गण उस चित्त को पा नहीं सकते। अस्पर्श धर्म से युक्त वह चित्त कैसे तमः से स्पृष्ट होता है। हे भगवन् उपक्लेश हैं। चित्त भी उपक्लेश युक्त है। और भी हे भगवन् प्रकृति से परिशुद्ध चित्त के उपक्लेश का अर्थ दुष्प्रतिवेध्य होता है। यह विस्तारपूर्वक यथावत् भाविकता को लेकर दुष्प्रतिवधार्थ निर्देश को यथा सूत्र ही जानना चाहिए॥ १५ ॥

यावद्भाविकता ज्ञेयपर्यन्तगतया धिया।
सर्वसत्त्वेषु सर्वज्ञधर्मतास्तित्वदर्शनात्॥ १६ ॥

तत्र यावद्भाविकता सर्वज्ञेयवस्तुपर्यन्तगतया लोकोत्तरया प्रज्ञया सर्वसत्त्वेष्वन्तशस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि तथागतगर्भास्तित्वदर्शनाद्वेदितव्या। तच्च दर्शनं बोधिसत्त्वस्य प्रथमायामेव बोधिसत्त्वभूमावुत्पद्यते सर्वत्रगार्थेन धर्मधातुप्रतिवेधात्।

ज्ञेयपर्यन्तगत बुद्धि से सभी प्राणियों में सर्वज्ञ धर्म के अस्तित्व दर्शन से ही भाविकता की सिद्धि होती है॥ १६ ॥

इस भाविकता को सभी ज्ञेयपर्यन्तगत लोकोत्तर प्रज्ञा से सभी सत्त्वों में देवताओं से लेकर कीटपतङ्ग पर्यन्त तथागतगर्भ के अस्तित्त्व दर्शन से जानना चाहिए। वह दर्शन बोधिसत्त्व का प्रथम बोधिसत्त्व भूमि में उत्पन्न होना है सर्वत्र धर्मधातु के ज्ञान के कारण।

इत्येवं योऽवबोधस्तत्प्रत्यात्मज्ञानदर्शनम्।
तच्छुद्धिरमले धातावसङ्गाप्रतिघा ततः॥ १७ ॥

इस प्रकार जो यह बोध है वह उसके प्रत्यात्मज्ञान का दर्शन ही है। उस ज्ञान की शुद्धि अमल धातु में असङ्ग और प्रतिहत की स्थिति होती है॥ १७ ॥

इत्येवमनेन प्रकारेण यथावद्भाविकतया च यावद्भाविकतया च यो लोकोत्तरमार्गावबोधस्तदार्याणां प्रत्यात्ममनन्यसाधारणं लोकोत्तरज्ञानदर्शनमभिप्रेतम्। तच्च समासतो द्वाभ्यां कारणाभ्यामितर-प्रादेशिकज्ञानदर्शनमुपनिधाय सुविशुद्धिरित्युच्यते। कतमाभ्यां द्वाभ्याम्। असङ्गत्वादप्रतिहतत्वाच्च। तत्र यथावद्भाविकतया सत्त्वधातुप्रकृति-विशुद्धविषयत्वादसङ्गम्, यावद्भाविकतयानन्तज्ञेयवस्तुविषयत्वाद-प्रतिहतम्।

इस प्रकार यथावत् भाविकता से और यावद् भाविकता से भी जो लोकोत्तर मार्ग का अवबोध आर्यों के लिए होता है वह प्रत्येक साधारण सत्त्व के लिए नहीं होता, लोकोत्तर ज्ञान दर्शन से वह अभिप्रेत है। वह संक्षेप में दो कारणों से है। दूसरे स्थानगत ज्ञान दर्शन को लेकर सुविशुद्धि कहा गया है। वे दो कौन हैं? असङ्ग और अप्रतिहत ही हैं। वहाँ पर यावद् भाविकता से सत्त्व धातु प्रकृति विशुद्ध विषय होने से असङ्ग कहलाता है। यावद् भाविकता से

अनन्तज्ञेय वस्तु विषय होने से अप्रतिहत कहा गया है॥ १७ ॥

ज्ञानदर्शनसंशुद्ध्या बुद्धज्ञानादनुत्तरात्।
अवैवर्त्याद् भवन्त्यार्याः शरणं सर्वदेहिनाम्॥ १८ ॥

ज्ञान दर्शन के संशुद्धि से, अनुत्तर बुद्ध ज्ञान से, विपरीत न होने से, सभी देहधारियों के लिए वे आर्य शरणस्थल होते हैं।

इतीयं ज्ञानदर्शनशुद्धि-रविनिवर्तनीयभूमिसमारूढानां बोधि-सत्त्वानामनुत्तरायास्तथागतज्ञानदर्शनविशुद्धेरुपनिषद्गतत्वादनुत्तरा वेदितव्या तदन्येभ्यो वा दान- शीलादिभ्यो बोधिसत्त्वगुणेभ्यो यद्योगादविनिवर्तनीया बोधिसत्त्वाः शरणभूता भवन्ति सर्वसत्त्वानामिति।

यह ज्ञानदर्शन शुद्धि अविनिवर्तनीय भूमि में आरूढ बोधिसत्त्वों के लिए अनुत्तर तथागतदर्शनविशुद्धि के द्वारा समीपस्थ होने से अनुत्तर स्थिति जानना चाहिए। अथवा इसके अतिरिक्त दानशील आदि से बोधिसत्त्व गुणों के योग से अविनिवर्तनीय बोधिसत्त्व शरण होते हैं सभी प्राणियों के कल्याणार्थ।

श्रावकसंघरत्नाग्रहणं बोधिसत्त्वगणरत्नानन्तरं तत्पूजानर्हत्वात्। न हि जातु पण्डिता बोधिसत्त्वश्रावकगुणान्तरज्ञा महाबोधिविपुलपुण्यज्ञान-संभारापूर्यभाणज्ञानकरुणामण्डलमप्रमेयसत्त्वधातुगणसंतानाव-भासप्रत्युपस्थितमनुत्तरतथागत-पूर्णचन्द्रगमनानुकूलमार्गप्रतिपन्नं बोधिसत्त्वनवचन्द्रमुत्सृज्य प्रादेशिकज्ञाननिष्ठागतमपि तारारूपवत् स्वसंतानावभासप्रत्युपस्थितं श्रावकं नमस्यन्ति। परहितक्रियाशयविशुद्धेः संनिश्रयगुणेनैव हि प्रथमचित्तोत्पादिकोऽपि बोधिसत्त्वो निरनुक्रोश-मनन्यपोषि गण्यमनास्त्रवशीलसंवरविशुद्धिनिष्ठागतमार्यश्रा-कमभिभवति। प्रागेव तदन्यैर्दशवशितादिभिर्बोधिसत्त्वगूणैः। वक्ष्यति हि।

बोधिसत्त्वों के बाद श्रावकों का अग्रहण उनकी पूजा की अनर्हत्व दिखाने के लिए ही है। कभी भी वे पण्डित जन बोधिसत्त्व श्रावक गुणान्तरज्ञ नहीं होते तथा महाबोधि-विपुल-पुण्य ज्ञान संभार को पूरित करते हुए ज्ञान करुणा मण्डल रूप अप्रमेय सत्त्व-धातु गणों के अवभासित और समुपस्थित अनुत्तर तथागत रूप पूर्णचन्द्र के गमन द्वारा अनुकूल मार्ग में अवस्थित बोधिसत्त्वरूप नदी चन्द्र को छोड़कर स्थान विशेष के ज्ञान में परिनिष्ठित

तारागणों के रूप के तरह अपने गणों के अवभास की उपस्थिति में दृश्यमान श्रावकों को नमस्कार करते हैं। परहित के लिए क्रिया और आशय का विशुद्धि संनिश्रय गुणों से प्रथम चित्त का उत्पादक बोधिसत्त्व भी अनुक्रोश रहित अनन्य पोषक गण्यमान आस्रवशील संरक्षण के विशुद्धि निष्ठा से संयुक्त श्रावक को ढक देता है। पहले ही उसके अतिरिक्त दश प्रकार के वशिता आदि बोधिसत्त्व गुणों से पहले ही वह आप्लावित हुआ है। कहेंगे भी।

यः शीलमात्मार्थकरं विभर्ति दुःशीलसत्त्वेषु दयावियुक्तेः।
आत्मंभरिः शीलधनप्रशुद्धो विशुद्धशीलं न तमाहुरार्यम्॥
यः शीलमादाय परोपजीव्यं करोति तेजोऽनिलवारिभूवत्।
कारुण्यमुत्पाद्य परं परेषु स शीलवांस्तत्प्रतिरूपकोऽन्य इति॥

जो शील अपने अर्थ के लिए धारण किया जाता है तथा दुःशीलयुक्त प्राणियों के प्रति दयारहित होकर केवल अपने कल्याण के लिए स्वयं शील विशुद्ध होकर रहता है उसको आर्य नहीं माना जा सकता है। परन्तु, शील को लेकर दूसरों के उद्धार के लिए, कार्य करता है जैसे के तेज (सूर्य), वायु और जल के तरह। दूसरों के प्रति करुणा का भाव मन में रखकर, उसे ही शील सम्पन्न, करुणा सम्पन्न आर्य कहते हैं। ॥ १८ ॥

तत्र केनार्थेन किमधिकृत्य भगवता शरणत्रयं प्रज्ञप्तम्।

किस कारण से किस विषय को लेकर भगवान् ने तीन शरणों का उपदेश किया है?

शास्तृशासनशिष्यार्थैरधिकृत्य त्रियानिकान्।
कारत्रयाधिमुक्तांश्च प्रज्ञप्तं शरणत्रयम्॥ १९ ॥

शास्ता, शासन (उपदेश) और शिष्य (संघ) को ध्यान में रखकर तीन यानों वाला मार्ग जो तीन कार्यों से अधिकृत करके तीन शरणों का उपदेश किया है॥ १९ ॥

बुद्धः शरणमग्र्यत्वाद् द्विपदानामिति शास्तृगुणोद्भावनार्थेन बुद्धभावायोपगतान् बोधिसत्त्वान् पुद्गलान् बुद्धे च परमकार-क्रियाधिमुक्तानधिकृत्य देशितं प्रज्ञप्तम्।

बुद्ध शरण देने में अग्रगण्य होने से दो पैर वाले मनुष्यों के लिए शास्ता के गुणों का उद्भावनार्थ, बुद्ध के भाव में गए हुए बोधिसत्त्व और पुद्गलों को तथा बुद्ध में भी परमकार क्रियाधिमुक्तों को अधिकृत करके उपदेश को ज्ञापित किया गया है।

धर्मः शरणमग्र्यत्वाद्विरागाणामिति शास्तुः शासने गुणोदभावनार्थेन स्वयं प्रतीत्य गम्भीरधर्मानुबोधायोपगतान् प्रत्येकबुद्धयानिकान् पुद्गलान् धर्मे च परमकारक्रियाधिमुक्तानधिकृत्य देशितं प्रज्ञप्तम्।

धर्म शरणों में अग्र होने से विरागों को शास्ता के शासन के गुणों का उद्भावनार्थ स्वयं जानकर गंभीर धर्म के अनुबोध के लिए, प्रत्येक बुद्ध पथ के यात्रियों और पुद्गलों को धर्म में परम कारक क्रियाधिमुक्तिकों को लेकर उपदेश किया गया है।

संघः शरणमग्र्यत्वाद्गणानामिति शास्तुः शासने सुप्रतिपन्नशिष्यगुणोद्भावनार्थेन परतः श्रवघोषस्यानुगमायोपगतान् श्रावकयानिकान् पुद्गलान् संघे च परमकारक्रियाधिमुक्तानधिकृत्य देशितं प्रज्ञप्तम्। इत्यनेन समासतस्त्रिविधेनार्थेन षट् पुद्गलानधिकृत्य प्रभेदशो भगवता संवृतिपदस्थानेन सत्त्वानामनुपूर्वनयावतारार्थमिमानि त्रीणि शरणानि देशितानि प्रज्ञप्तानि।

संघ भी शरण लेने में अग्रगण्य होने से शास्ता के शासन में सुप्रतिपन्न शिष्य के गुणों को उद्भावित करने के लिए दूसरों से व्यक्त शब्दघोषों के द्वारा अनुगम के लिए श्रावक यान में अवस्थित पुद्गलों को संघ में भी परमकारुणिक क्रिया में अधिकृत के लिए ज्ञान बताया गया है। इस प्रकार संक्षेप में तीन प्रकार से अर्थों के लिए पुद्गलों को अधिकृत का भेदपूर्वक भगवान् ने संवृति सत्य में स्थित होकर प्राणियों के आनुपूर्विक अवतरणार्थ वे तीन शरण भगवान् ने उपदिष्ट किए हैं॥ १९ ॥

त्याज्यत्वान् मोषधर्मत्वादभावात् सभयत्वतः।
धर्मो द्विधार्यसंघश्च नात्यन्तं शरणं परम्॥ २० ॥

त्यागने योग्य होने से, व्यर्थ धर्म होने से, अभाव होने से, भयमुक्त होने से दो प्रकार का धर्म और आर्य संघ भी अत्यन्त शरण नहीं हो सकते॥ २० ॥

द्विविधो धर्मः। देशनाधर्मोऽधिगमधर्मश्च। तत्र देशनाधर्मः सूत्रादिदेशनाया नामपदव्यञ्जनकायसंगृहीतः। स च मार्गाभिसमय-पर्यवसानत्वात् कोलोपम इत्युक्तः। अधिगमधर्मो हेतुफलभेदेन द्विविधः। यदुत मार्गसत्यं निरोध-सत्यं च। येन यदधिगम्यत इति कृत्वा। तत्र मार्गः संस्कृतलक्षणपर्यापन्नः। यत् संस्कृतलक्षणपर्यापन्नं तन् मृषामोषधर्मि। यन् मृषामोषधर्मि तदसत्यम्। यदसत्यं तदनित्यम्। यदनित्यं तदशरणम्। यश्च तेन मार्गेण निरोधोऽधिगतः सोऽपि श्रावकनयेन प्रदीपोच्छेदवत् क्लेशदुःखाभावमात्रप्रभावितः। न चाभावः शरणमशरणं वा भवितुमर्हति।

धर्म दो प्रकार का है। देशना धर्म और अधिगम धर्म। देशना धर्म अर्थात् सूत्रादि देशना के लिए नाम, पद, व्यञ्जन और काय का संग्रह किया गया है। वह मार्ग और अभिसमय के पर्यवसित होने से कोलोपम नौका के तरह है ऐसा कहा गया है। अधिगम धर्म भी हेतु और फल के भेद से दो प्रकार का है। जैसा कि मार्ग सत्य और निरोध सत्य। जिससे जो जाना जाता है ऐसा विग्रह किया गया है। वहाँ पर मार्ग संस्कृत लक्षणयुक्त है। जो संस्कृत लक्षण धर्मों से संयुक्त हैं वे मृषाधर्मी हैं। जो मृषामोष धर्मी है वह असत्य है। जो असत्य है वह अनित्य है। जो अनित्य है वह अशरण है। जो उस मार्ग से निरोध को उपलब्ध होता है वह भी श्रावकमार्ग से दीप के निभने के तरह दुःख क्लेशों के अभाव मात्र से प्रभावित है। उसमें अभाव नहीं है। शरण और अशरण दोनों भी हो सकते हैं।

संघ इति त्रैयानिकस्य गणस्यैतदधिवचनम्। स च नित्यं सभयस्तथागत-शरणगतो निःसरणपर्येषी शैक्षः सकरणीयः प्रतिपन्नकश्चानुत्तरायां सम्यक्संबोधाविति। कथं सभयः। यस्मादर्हतामपि क्षीणपुनर्भवानामप्रहीणत्वाद्वासंनायाः सततसमितं सर्वसंस्कारेषु तीव्रा भयसंज्ञा प्रत्युपस्थिता भवति स्याद्यथापि नामोत्क्षिप्तासिके वधकपुरुषे तस्मात्तेऽपि नात्यन्तसुखनिःसरणमधिगताः। न हि शरणं शरणं पर्येषते। यथैवाशरणाः सत्त्वा येन तेन भयेन भीतास्ततस्ततो निःसरणं पर्येषन्ते तद्वदर्हतामप्यस्ति तद्भयं यतस्ते भयाद्भीतास्तथागतमेव शरणमुपगच्छन्ति। यश्चैवं सभयत्वाच्छरणमुपगच्छत्यवश्यं भयान्निःसरणं

स पर्येषते। निःसरणपर्येषित्वाच्च भयनिदानप्रहाणमधिकृत्य शैक्षो भवति सकरणीयः। शैक्षत्वात् प्रतिपन्नको भवत्यभयमार्षभस्थानमनुप्राप्तुं यदुतानुत्तरां सम्यक्संबोधिम्। तस्मात्सोऽपि तदङ्गशरणत्वान्नात्यन्तं शरणम्। एवमिमे द्वे शरणे पर्यन्तकाले शरणे इत्युच्येते।

संघ का अर्थ त्रियानिक गण है। वह भी नित्य, भययुक्त होकर तथागत में शरणागत होकर अन्य किसी के भी शरण में न जाकर, शिक्षार्थी शरण में जाकर सम्यक् संबोधि में जाता है। कैसे भययुक्त है? क्योंकि योग्य और पुनर्जन्म न होने वाले बोधिसत्त्वों को अप्रहीण होने से वासनाओं के साथ होते हुए भी सभी संस्कारों में तीव्र भय उत्पन्न होता है। यद्यपि उद्यत बधिक पुरुष में भी वह भय संचरित होता है अतएव वे अत्यन्त निःशरण में संप्राप्त हैं। अर्थात् उनके लिए कोई भी शरण नहीं है। कभी भी शरण शरण को नहीं खोजता है। जैसा कि अशरण प्राणिगण जिस किसी भय से भीत होते हैं उन-उन भयों से मुक्त होने के लिए शरण ढूँढते हैं। उसी प्रकार आर्यों के लिए भी वह भय है जिससे भय से भीत होकर तथागत के ही शरणागत होते हैं। जो भी इस प्रकार भय के कारण अवश्य शरणागत होते हैं और भय से मुक्ति का अन्वेषण करते हैं। निःसरण का अन्वेषण से भयनिदान प्रहाण को लेकर कृत्य से युक्त होकर शैक्ष हो जाता है। शैक्ष होने से शरणागत होकर उच्च बोधिसत्त्वस्थान प्राप्त करने के लिए जो स्थान अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि ही है। इसीलिए वह भी शरण का ही अङ्ग है और वे अत्यन्त शरण नहीं हो सकते। वे दो शरण अन्तिम तक रहते हैं॥ २० ॥

जगच्छरणमेकत्र बुद्धत्वं पारमार्थिकम्।
मुनेर्धर्मशरीरत्वात् तन्निष्ठत्वाद्गणस्य च॥ २१ ॥

पारमार्थिक बुद्धत्व ही संसार का शरण है। क्योंकि बुद्ध का शरीर = धर्म ही है और सारे अन्य गुण भी उसी धर्म शरीर के अधीन ही है॥ २१ ॥

अनेन तु पूर्वोक्तेन विधिनानुत्पादानिरोधप्रभावितस्य मुनेर्व्यवदानसत्यद्वय-विरागधर्मकायत्वाद् धर्मकायविशुद्धिनिष्ठाधिगम-पर्यवसानत्वाच्च त्रैयानिकस्य गणस्य पारमार्थिकमेवात्राणेऽशरणे लोकेऽ-परान्तकोटिसममक्षयशरणं नित्यशरणं ध्रुवशरणं यदुत तथागता अर्हन्तः

सम्यकसंबुद्धाः। एष च नित्यध्रुवशिवशाश्वतैकशरणनिर्देशो विस्तरेणार्य-श्रीमालासूत्रानुसारेणानुगन्तव्यः।

पूर्वोक्त इस विधि के अनुसार अनुत्पाद निरोध से युक्त मुनि दान-सत्य द्वय से संयुक्त धर्म काय के कारण धर्मकाय विशुद्धि निष्ठा के द्वारा अन्तिम ज्ञान प्राप्ति तक, तीन यान में होने वाले गण का पारमार्थिकता स्वीकारते हुए त्राण और शरण न होने से लोक में अपरान्त कोटि के समक्ष अक्षय रूप शरण ही नित्य शरण है वही ध्रुव शरण है, वे वस्तुतः अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ही हैं। यह भी नित्य, ध्रुव, शिव, शाश्वत, एकशरण के निर्देश से विस्तारपूर्वक आर्य श्रीमाला सूत्र के अनुसार ही जानना चाहिए॥ २१ ॥

रत्नानि दुर्लभोत्पादान् निर्मलत्वात् प्रभावतः।
लोकालंकारभूतत्वादग्रत्वान् निर्विकारतः॥ २२ ॥

वे तीन रत्न हैं। क्योंकि इनका उत्पादन होना ही दुर्लभ है। वे अत्यन्त निर्मल भी हैं। तेजस्वी हैं। संसार के आभूषण हैं। अग्रस्थानीय हैं और निर्विकार भी हैं॥ २२ ॥

समासतः षड्विधेन रत्नसाधर्म्येणैतानि बुद्धधर्मसंघाख्यानि त्रीणि रत्नान्युच्यन्ते। यदुत दुर्लभोत्पादभावसाधर्म्येण बहुभिरपि कल्पपरिवर्तैर-नवाप्तकुशलमूलानां तत्समवधानाप्रतिलम्भात्। वैमल्यसाधर्म्येण सर्वाचारमलविगतत्वात्। प्रभावसाधर्म्येण षडभिज्ञाद्यचिन्त्यप्रभाव-गुणयोगात्। लोकालंकारसाधर्म्येण सर्वजगदाशयशोभानिमित्तत्वात्। रत्नप्रतिवर्णिकाग्र्यसाधर्म्येण लोकोत्तरत्वात्। स्तुतिनिन्दाद्यविकार-साधर्म्येणासंस्कृतस्वभावत्वादिति।

संक्षेप में ६ प्रकार के रत्न के समानता के कारण बुद्ध, धर्म और संघ वे तीन रत्न कहे गए हैं। जैसा कि दुर्लभ उत्पाद के साधर्म्य से अनेक कल्पों में भी कुशल मूल जिन्होंने प्राप्त नहीं किया है उनके लिए वे अत्यन्त दुर्लभ कहे गए हैं। मलरहित होने के इनका साधर्म्य भी है, सभी आचार निर्मल हैं। प्रभाव के साधर्म्य से षड् अभिज्ञ आदि अचिन्त्य प्रभाव का अनुगुण भी है इनके साथ। आभूषणों के समान होने से समग्र जगत् का आशय शोभा के अनुकूल कहे गए हैं। रत्नों के तरह ही महंगे और दुष्प्राप्य होने से लोकोत्तर

कहे गए हैं। स्तुति-निन्दा आदि विकार से अप्रभावित होने से असंस्कृत स्वभावयुक्त भी वे हैं। अतएव रत्न कहे गए हैं॥ २२ ॥

रत्नत्रयनिर्देशानन्तरं यस्मिन् सत्येव लौकिकलोकोत्तरविशुद्धि-योनिरत्नत्रयमुत्पद्यते तदधिकृत्य श्लोकः।

तीन रत्नों के निर्देश के बाद जिसके न होने पर ही लौकिक-लोकोत्तर विशुद्धि स्वरूप रत्नत्रय का उत्पादन होता है इसी को बताने के लिए यह श्लोक है।

समला तथताथ निर्मला विमला बुद्धगुणा जिनक्रिया।
विषयः परमार्थदर्शिनां शुभरत्नत्रयसर्गको यतः॥ २३ ॥

वे समल तथा निर्मल भी हैं। क्योंकि बुद्ध के समग्र कृत्य विमल ही हैं। वे सब परमार्थ दर्शियों के विषय हैं। क्योंकि वे परमार्थ दर्शित व्यक्तियों के द्वारा (या उनमें ही) उत्पन्न होते हैं॥ २३ ॥

अनेन किं परिदीपितम्।

इससे क्या दर्शाया गया है?

गोत्रं रत्नत्रयस्यास्य विषयः सर्वदर्शिनाम्।
चतुर्विधः स चाचिन्त्यश्चतुर्भिः कारणैः क्रमात्॥ २४ ॥

सर्वदर्शियों का जो ज्ञातव्य विषय है वह तीन रत्नों का उत्पत्ति स्थान ही है। वह चार प्रकार का है और अचिन्त्य भी क्योंकि उसके क्रमशः चार कारण हैं॥ २४ ॥

तत्र समला तथता यो धातुरविनिर्मुक्तक्लेशकोशस्तथागतगर्भ इत्युच्यते। निर्मला तथता स एव बुद्धभूमावाश्रयपरिवृत्तिलक्षणो यस्तथागतधर्मकाय इत्युच्यते। विमलबुद्धगुणा ये तस्मिन्नेवाश्रयपरिवृत्तिलक्षणे तथागतधर्मकाये लोकोत्तरा दशबलादयो बुद्धधर्माः। जिनक्रिया तेषामेव दशबलादीनां बुद्धधर्माणां प्रतिस्वमनुत्तरं कर्म यदनिष्ठितम-विरतमप्रतिप्रश्रब्धं बोधिसत्त्वव्याकरणकथां नोपच्छिनत्ति। तानि पुनरिमानि चत्वारि स्थानानि यथासंख्यमेय चतुर्भिः कारणैरचिन्त्यत्वात् सर्वज्ञविषया इत्युच्यन्ते। कतमैश्चतुर्भिः।

समला तथता है, जो अविनिर्मुक्त-क्लेश-कोश तथागत गर्भ ही धातु कहा गया है। निर्मल तथता वह भी बुद्ध भूमि में आश्रय परिवृत्ति रूप ही तथागत का धर्मकाय कहा गया है। जो विमल बुद्ध के गुण हैं, वह आश्रय परिवृत्ति भी है, जिसे तथागत धर्मकाय कहा गया है, लोकोत्तर दशबल आदि ही बुद्ध धर्म कहे गए हैं। दशबल आदि बुद्ध धर्मों का अनुत्तर कार्य जिसे अधिष्ठान मानकर, अविपरीत, अप्रतिश्रब्ध, बोधि सत्त्व-व्याकरण-शब्द प्रयोग-उपदेश की कथा को कभी भी नष्ट नहीं होने देते। वे फिर चार स्थान क्रमशः चार कारणों से अचिन्त्य होने से सर्वज्ञ के विषय कहे गए हैं। वे चार कौन हैं? ॥२४॥

शुद्ध्युपक्लिष्टतायोगात् निःसंक्लेशविशुद्धितः।
अविनिर्भागधर्मत्वादनाभोगाविकल्पतः॥ २५ ॥

वे चार कारण हैं - शुद्धि के उपक्लिष्टता के योग से, निःक्लेश-विशुद्धि से, अविनिर्भाग धर्म होने से और अविकल्प के कारण ही वह चार प्रकार का विषय अचिन्त्य कहा गया है॥ २५ ॥

तत्र समला तथता युगपदेककालं विशुद्धा च संक्लिष्टा चेत्यचिन्त्यमेतत् स्थानं गम्भीरधर्मनयाधिमुक्तानामपि प्रत्येकबुद्धानामगोचरविषयत्वात्। यत आह। द्वाविमौ देवि धर्मौ दुष्प्रतिवेध्यौ। प्रकृतिपरिशुद्धिचित्तं दुष्प्रतिवेध्यम्। तस्यैव चित्तस्यो-पक्लिष्टता दुष्प्रतिवेध्या। अनयोर्देवि धर्मयोः श्रोता त्वं वा भवेरथवा महाधर्मसमन्वागता बोधिसत्त्वाः। शेषाणां देवि सर्वश्रावकप्रत्येक-बुद्धानां तथागतश्रद्धागमनीया वेवैतौ धर्माविति।

वहाँ पर तथता समला एवं विशुद्धा भी एक साथ हैं अतएव अचिन्त्य कहा गया है। और यह स्थान अत्यन्त गंभीर धर्मों में लगे हुए प्रत्येक बुद्धों के लिए अप्राप्य भी हैं। क्योंकि कहा भी है। वे दो धर्म दुष्प्रतिवेध्य हैं। दुष्प्रतिवेध का अर्थ प्रकृति परिशुद्ध चित्त ही है। उस चित्त की उपक्लिष्टता ही दुष्प्रतिवेध्य है। इस दैविक धर्म का श्रोता तुम हो जाओ अथवा महाधर्म से युक्त बोधि सत्त्व हों। अन्य धर्मों के श्रोता सभी श्रावक और प्रत्येक बुद्धों के लिए तथागत श्रद्धा से प्राप्तव्य हैं।

तत्र निर्मला तथता पूर्वमलासंक्लिष्टा पश्चाद्विशुद्धेत्यचिन्त्यमेतत् स्थानम्। यह आह। प्रकृतिप्रभास्वरं चित्तम्। तत्तथैव ज्ञानम्। तत उच्यते। एकक्षणलक्षण समायुक्तया प्रज्ञया सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धेति।

जो निर्मल तथता है वह भी पूर्व में मल से संक्लिष्ट ही होती है फिर बाद में विशुद्ध होती है इसीलिए यह अचिन्त्य है। इसीलिए कहा है। प्रकृति से ही प्रभास्वर है चित्त। उसका उसी प्रकार का ज्ञान है। अतः कहा है। एक क्षण लक्षण प्रज्ञा नामय सम्यक् संबोधि से अभिसम्बुद्ध होती है।

तत्र विमला बुद्धगुणाः पौर्वापर्येणैकान्तसंक्लिष्टायामपि पृथग्जनभूमावविनिर्भागधर्मतया निर्विषिष्टा विद्यन्त इत्यचिन्त्यमेतत् स्थानम्। यत आह।

बुद्ध के गुण विमल हैं क्योंकि पौर्वापर्य से पूर्ण रूप में संक्लिष्ट होने पर भी पृथग्जनों के भूमि में अविनिर्माण धर्म के रूप में निर्विशिष्ट हैं इसीलिए यह अचिन्त्य स्थान कहा गया है। इसी से कहा भी है।

न स कश्चित्सत्त्वः सत्त्वनिकाये संविद्यते यत्र तथागतज्ञानं न सकलमनुप्रविष्टम्। अपि तु संज्ञाग्राहतस्तथागतज्ञानं न प्रज्ञायते। संज्ञाग्राहविगमात् पुनः सर्वज्ञज्ञानं स्वयंभूज्ञानमसङ्गतः प्रभवति। तद्यथापि नाम भो जिनपुत्र त्रिसाहस्त्रमहासाहस्त्र लोकधातुप्रमाणं महापुस्तं भवेत्। तस्मिन् खलु पुनर्महापुस्ते त्रिसाहस्त्रमहासाहस्त्रलोकधातुः सकलसमाप्त आलिखितो भवेत्। महापृथिवीप्रमाणेन महापृथिवी। द्विसाहस्त्रलोक-धातुप्रमाणेन द्विसाहस्त्रलोकधातुः। साहस्त्रलोकधातुप्रमाणेन साहस्त्र-लोकधातुः। चातुर्द्वीपिकप्रमाणेन चातुर्द्वीपिकाः। महासमुद्रप्रमाणेन महासमुद्राः। जम्बूद्वीपप्रमाणेन जम्बूद्वीपाः। पूर्वविदेहद्वीपप्रमाणेन पूर्वविदेहद्वीपाः। गोदावरीद्वीपप्रमाणेन गोदावरीद्वीपाः। उत्तरकुरुद्वीप-प्रमाणेनोत्तरकुरुद्वीपाः। सुमेरुप्रमाणेन सुमेरवः। भूम्यवचरदेवविमान-प्रमाणेन भूम्यवचरदेवविमानानि। कामावचरदेवविमानप्रमाणेन कामावचरदेवविमानानि। रूपावचरदेवविमानप्रमाणेन रूपावचरदेव-विमानानि। तच्च महापुस्तं त्रिसाहस्त्रमहासाहस्त्रलोकधात्वायामविस्तरप्रमाणं भवेत्। तत्खलु पुनर्महापुस्तमेकस्मिन् परमाणुरजसि प्रक्षिप्तं भवेत्। यथा

चैकपरमाणुरजसि तन्महापुस्तं प्रक्षिप्तं भवेत् तथान्येषु सर्वपरमाणुरजःसु तत्प्रमाणान्येव महापुस्तान्यभ्यन्तरप्रविष्टानि भवेयुः। अथ कश्चिदेव पुरुष उत्पद्यते पण्डितो निपुणो व्यक्तो मेधावी तत्रोपगमिकया मीमांसया समन्वागतः। दिव्यं चास्य चक्षुः समन्तपरिशुद्धं प्रभास्वरं भवेत्। स दिव्येन चक्षुषा व्यवलोकयति। इदं महापुस्तमेवंभूतमिहैव परीत्ते परमाणुरजस्यनुतिष्ठते। न कस्यचिदपि सत्त्वस्योपकारिभूतं भवति। तस्यैवं स्यात्। यन्वहं महावीर्यबलस्थाम्ना एतत्परमाणुरजो भित्त्वा एतन्महापुस्तं सर्वजगदुपजीव्यं कुर्याम्। स महावीर्यबलस्थाम संजनयित्वा सूक्ष्मेण वज्रेण तत्परमाणुरजो भित्त्वा यथाभिप्रायं तन्महापुस्तं सर्वजगदुपजीव्यं कुर्यात्। यथा चैकस्मात् तथाशेषेभ्यः परमाणुभ्यस्तथैव कुर्यात्। एवमेव भो जिनपुत्र तथागतज्ञानमप्रमाणज्ञानं सर्वसत्त्वोपजीव्यज्ञानं सर्वसत्त्वचित्तसंतानेषु सकलमनुप्रविष्टम्। सर्वाणि च तानि सत्त्वचित्तसंतानान्यपि तथागतज्ञान-प्रमाणानि। अथ च पुनः संज्ञाग्राहविनिबद्धा बाला न जानन्ति न प्रजानन्ति नानुभवन्ति न साक्षात्कुर्वन्ति तथागतज्ञानम्। ततस्तथागतोऽसङ्गेन तथागतज्ञानेन सर्वधर्मधातुसत्त्वभवनानि व्यवलोक्याचार्यसंज्ञी भवति। अहो बत इमे सत्त्वा यथावत् तथागतज्ञानं न प्रजानन्ति। तथागतज्ञाना-नुप्रविष्टाश्च। यन्वहमेषां सत्त्वानामार्येण मार्गोपदेशेन सर्वसंज्ञाकृत-बन्धनापनयनं कुर्यां यथा स्वयमेवार्यमार्गबलाधानेन महतीं संज्ञाग्रन्थिं विनिवर्त्य तथागतज्ञानं प्रत्यभिजानीरन्। तथागतसमतां चानुप्राप्नुयुः। ते तथागतमार्गोपदेशेन सर्वसंज्ञाकृतबन्धनानि व्यपनयन्ति। अपनीतेषु च सर्वसंज्ञाकृतबन्धनेषु तत् तथागतज्ञानमप्रमाणं भवति सर्वजगदुपजीव्यमिति।

सत्त्व निकाय (संसार) में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जहाँ तथागत ज्ञान पूर्ण रूप से प्रविष्ट न हुआ हो। किन्तु संज्ञा से गृहीत होने वालों के लिए तथागत ज्ञान नहीं पहुँचता है। संज्ञा ग्रह के हटते ही फिर सर्वज्ञ ज्ञान स्वयं भूज्ञान संगराहित्य से उत्पन्न होता है। जैसा कि भगवान् ने कहा – हे जिन पुत्रों तीन हजार और अनन्त हजारों लोक धातु स्वयं ही प्रमाणभूत पुस्तक हैं। उसी बड़े पुस्तक में अनन्त लोकधातु समाप्त होते हैं अर्थात् लिखे जाने पर भी महा

पृथिवी प्रमाण से महा पृथिवी होती है। दो हजार लोक धातु के प्रमाण से दो हजार लोकधातु होते हैं। हजार लोकधातु के प्रमाण से हजार लोक धातु होते हैं। चार द्वीपों के प्रमाण से चार द्वीप होते हैं। महासमुद्र के प्रमाण से महासमुद्र। जम्बुद्वीप के प्रमाण से जम्बुद्वीप। पूर्व विदेह द्वीप के प्रमाण से वे द्वीप। गोदावरी द्वीप के प्रमाण से गोदावरी द्वीप। उत्तर कुरु द्वीप प्रमाण से उत्तर कुरु द्वीप। सुमेरु प्रमाण से सुमेरु होते हैं। भूमि में न रहने वाले देवों के विमानों के प्रमाण से भूमि अचर देव विमान का भवचर देव विमान प्रमाण से कामावचर देवविमान। रूपावचर देवविमान प्रमाण से रूपावचर देव विमान। ऐसा महान् पुस्तक त्रिसाहस्त्र, महासाहस्त्र लोकधातु के आयाम अनुरूप विस्तारित प्रमाण हो और भी वह बड़ा पुस्तक सभी परमाणुधूलि में रख दिया जाय। फिर एक परमाणु रज में वह बड़ा पुस्तक रखा जाय और अन्य सभी परमाणु रजों में उनके प्रमाणभूत वे बड़े पुस्तक उनके आभ्यन्तर में प्रविष्ट हों। अब कोई व्यक्ति पैदा होता है, वह पण्डित, निपुण हो और व्यक्त तथा मेधावी और विचार करने में समर्थ होता हो। उसका दिव्य चक्षु पूर्ण विशुद्ध हो और पूर्ण शुद्ध होकर तेजस्वी हो। ऐसा व्यक्ति दिव्य चक्षु से देखता है। यह महान् पुस्तक, इस प्रकार के परमाणु रजों से पूर्ण है। वह पुस्तक अथवा इसका देखना किसी भी प्राणी के उपकार के लिए नहीं होता। उसका ऐसा होता है। जैसा कि महावीर्य बल के द्वारा इस परमाणु रज को भेदन करके इस बड़े पुस्तक को सभी प्राणियों के लिए उपजीव्य बनाये। वह पराक्रमी व्यक्ति अपने विशिष्ट सूक्ष्म वज्र से उन परमाणु रजों का भेदन करके उसके अभिप्राय के अनुसार उस बड़े पुस्तक को समग्र जगत् के कल्याण के लिए खोले। फिर एक जगह से अशेष परमाणुओं से वैसा ही करें। इसी प्रकार, भो जिनपुत्र! तथागत का ज्ञान जो अप्रमाण है, सभी सत्त्वों के कल्याणार्थक ज्ञान है, वह भी सर्वसत्त्व चित्त संतानों में समग्र प्रविष्ट हो जाता है। वे सभी चित्त संतान भी तथागत ज्ञान प्रमाण हैं। और भी संज्ञा निमित्त में बँधे हुए बालक नहीं जानते, नहीं समझते, न अनुभव ही करते हैं और न ही साक्षात्कार करते हैं – तथागत ज्ञान को। फिर तथागत, राग रहितता से, तथागत ज्ञान से सर्वधर्म धातु सत्त्वों के भवनों को देखकर आचार्य के पद को प्राप्त करते हैं। बड़े दुःख

से यह कहना पढ़ता है कि प्राणिगण तथागत ज्ञान को नहीं जानते। और तथागत के ज्ञान प्रविष्ट भी नहीं होते। मैं क्यों, इन सत्त्वों के लिए आर्य ज्ञान से मार्ग का उपदेश करके सभी संज्ञा जन्य बन्धनों को तोड़ न डालूँ और वे सब आर्य मार्ग के बल के सहयोग से बड़ी संज्ञा ग्रन्थियों को हटाकर तथागत ज्ञान को जान सके। तथागत के समानता को भी पायें। वे तथागत के मार्गोपदेश के कारण सभी संज्ञा बन्धनों को तोड़ते भी हैं। सभी संज्ञाकृत बन्धनों को नष्ट होने पर तथागत ज्ञान अप्रमाण होता है जो सभी जगत् का उपजीव्य भी है।

तत्र जिनक्रिया युगपत्सर्वत्र सर्वकालमनाभोगेनाविकल्पतो यथाशयेषु यथावैनयिकेषु सत्त्वेष्वक्षूणमनुगुणं प्रवर्तत इत्यचिन्त्यमेतत् स्थानम्। यत आह। संक्षेपमात्रकेणावतारणार्थं सत्त्वानामप्रमाणमपि तथागतकर्मप्रमाणतो निर्दिष्टम्। अपि तु कुलपुत्र यत्तथागतस्य भूतं तथागतकर्म तदप्रमाणमचिन्त्यमविज्ञेयं सर्वलोकेन। अनुदाहरणमक्षरैः। दुःसंपादं परेभ्यः। अधिष्ठितं सर्वबुद्धक्षेत्रेषु। समतानुगतं सर्वबुद्धैः। समतिक्रान्तं सर्वाभोगक्रियाभ्यः। निर्विकल्पमाकाशसमतया। निर्नीताकारणं धर्मधातुक्रियया। इति विस्तरेण यावद्विशुद्धवैडूर्यमणिदृष्टान्तं कृत्वा निर्दिशति। तदनेन कुलपुत्र पर्यायेणैवं वेदितव्यमचिन्त्यं तथागतकर्म समतानुगतं च सर्वतोऽनवद्यं च त्रिरत्नवंशानुपच्छेत्तृ च। यत्राचिन्त्ये तथागतकर्मणि प्रतिष्ठितस्तथागत आकाशस्वभावतां च कायस्य न विजहाति सर्वबुद्धक्षेत्रेषु च दर्शनं ददाति। अनभिलाप्यधर्मतां च वाचो न विजहाति यथारुतविज्ञप्त्या च सत्त्वेभ्यो धर्मं देशयति। सर्वचित्तारम्बणविगतश्च सर्वसत्त्वचित्तचरिताशयांश्च प्रजानातीति। ॥ २५ ॥

यह स्थान अचिन्त्य है क्योंकि तथागत की क्रिया में युगपत् सर्वत्र सभीकालों में अनाभोग से अविकल्पित होने से आशयानुसार, विनेयों के लिए प्राणियों में पूर्ण रूप से गुणानुरूप है। कहा भी है। संक्षेप में बताने के लिए प्राणियों का अप्रामाण्य भी तथागत का कर्म है उसे ही प्रमाण के रूप में निर्देश किया है। अपितु हे कुलपुत्र! तथागत का जो भूतकालिक कर्म है वह अप्रमाण, अचिन्त्य, अविज्ञेय भी है लोक के लिए। अक्षरों से बताया भी नहीं

जा सकता। दूसरों से दुस्प्राप्य भी हैं। सभी बुद्ध क्षेत्रों में अधिष्ठित भी है। सभी बुद्धों ने जाना भी है। सभी भोगक्रियाओं से दूर भी है। आकाश के समता से निर्विकल्प भी है। सभी धातुक्रिया से दूर है। इस प्रकार विस्तारपूर्वक विशुद्ध वैडूर्य मणि को दृष्टान्त बनाकर निर्देश किया गया है। इसके द्वारा हे कुलपुत्र! पर्याय से अचिन्त्य, तथागत कर्म, समता के साथ अवस्थित, सर्वत्र जो अनवद्य भी है तथा त्रिरत्नों के वेशों का स्थापक एवं रक्षक भी है। जहाँ, अचिन्त्य, तथागत कर्म में प्रतिष्ठित होकर आकाश के तरह ही अपने काय का स्वभाव कभी नहीं छोड़ता और सभी बुद्ध क्षेत्रों में दर्शन देता है - दीखता भी है। वचन भी उनके अनभिलाप्य धर्म को कभी नहीं तोड़ते, जैसा बताया गया है प्राणियों को वही धर्म बताते भी हैं। सभी चित्तों के मलों को त्याग कर सभी सत्त्वों के चरित्र और आशय को जानते भी हैं॥ २५ ॥

बोध्यं बोधिस्तदङ्गानि बोधनेति यथाक्रमम्।
हेतुरेकं पदं त्रीणि प्रत्ययस्तद्विशुद्धये॥ २६ ॥

बोध्य, बोधि, उनके अङ्ग और बोधना इसी क्रम से एक पद हेतु (कारण) है और तीन प्रत्यय हैं उसी के शुद्धि के लिए॥ २६ ॥

एषां खल्वपि चतुर्णामर्थपदानां सर्वज्ञेयसंग्रहमुपादाय प्रथमं बोद्धव्यपदं द्रष्टव्यम्। तदनुबोधो बोधिरिति द्वितीयं बोधिपदम्। बोधेरङ्गभूता बुद्धगुणा इति तृतीयं बोध्यङ्गपदम्। बोध्यङ्गैरेव बोधनं परेषामिति चतुर्थं बोधनापदम्। इतीमानि चत्वारि पदान्यधिकृत्य हेतुप्रत्ययभावेन रत्नत्रयगोत्रव्यवस्थानं वेदितव्यम्।

इन चार अर्थपदों का सभी ज्ञेय संग्रह को लेकर पहले बोद्धव्य पद को देखना चाहिए। उसके बाद बोधि यह दूसरा पद है। बोधि के अङ्गभूत बुद्धगुण यह तृतीय पद है। बोधि के अङ्गों से ही दूसरों को ज्ञान कराया जा सकता है इसीलिए चौथा यह बोधना पद है। इन चार पदों को लेकर ही हेतु प्रत्ययभाव से रत्नत्रयगोत्र व्यवस्था जाननी चाहिए।

तत्रैषां चतुर्णां पदानां प्रथमं लोकोत्तरधर्मबीजत्वात् प्रत्यात्मयोनिशोमनसिकारसंनिश्रयेण तद्विशुद्धिमुपादाय त्रिरत्नोत्पत्तिहेतुरनुगन्तव्यः। इत्येवमेकं पदं हेतुः। कथं त्रीणि प्रत्ययः। तथागतोऽनुत्तरां

सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्य दशबलादिभिर्बुद्धधर्मैर्द्वात्रिंशदाकारं तथागतकर्म कुर्वन् परतो घोषसंनिश्रयेण तद्विशुद्धिमुपादाय त्रिरत्नोत्पत्तिप्रत्ययोऽनुगन्तव्यः। इत्येवं त्रीणि प्रत्ययः। अतः परमेषामेव चतुर्णां पदानामनुपूर्वमवशिष्टेन ग्रन्थेन विस्तरविभागनिर्देशो वेदितव्यः।

यहाँ इन चार पदों का पहला लोकोत्तर धर्म बीजों के होने से प्रत्यात्मयोनिशमनसिकार संश्रय से उसके विशुद्धि को लेकर त्रिरत्नों के उत्पत्ति के हेतु को जानना चाहिए। यह एक हेतु पद है। कैसे तीन प्रत्यय हैं। तथागत ने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि को जान कर दशबल आदि से बुद्ध धर्म में ३२ आकार के तथागत कर्म को करते हुए दूसरों से शब्द को सुनकर, उसके विशुद्धि लेकर त्रिरत्न के उत्पत्ति को जानना चाहिए। वे ही तीन प्रत्यय हैं। इसीलिए अन्य चार पदों को क्रमशः अवशिष्ट ग्रन्थ से विस्तार पूर्वक जानना चाहिए।

तत्र समलां तथतामधिकृत्य यदुक्तं सर्वसत्त्वास्तथागतगर्भा इति तत् केनार्थेन।

यहाँ समल तथता को लेकर जैसा कहा है सभी सत्त्व तथागत के गर्भ हैं यह क्यों कहा है।

बुद्धज्ञानान्तर्गमात् सत्त्वराशे-
स्तन्नैर्मल्यस्याद्वयत्वात् प्रकृत्या।
बौद्धे गोत्रे तत्फलस्योपचारा-
दुक्ताः सर्वे देहिनो बुद्धगर्भाः॥ २७ ॥

सभी प्राणी बुद्ध ज्ञान के अन्तर्गत ही हैं और वह बुद्ध ज्ञान निर्मल तथा प्रकृति से ही अद्वय है। इसीलिए बुद्ध गोत्र में उक्त अद्वय फल के उपचार से सभी सत्त्वगण बुद्ध गर्भ के अन्तर्गत ही हैं यह कहा गया है॥२७ ॥

संबुद्धकायस्फरणात् तथताव्यतिभेदतः।
गोत्रतश्च सदा सर्वे बुद्धगर्भाः शरीरिणः॥ २८ ॥

बुद्ध के ज्ञान के प्रकाश और तथता के अभेद तथा बुद्ध गोत्र होने से भी सभी शरीर धारी बुद्ध गर्भ के अन्तर्गत ही हैं॥ २८ ॥

समासतस्त्रिविधेनार्थेन सदा सर्वसत्त्वास्तथागतगर्भा इत्युक्तं भगवता। यदुत सर्वसत्त्वेषु तथागतधर्मकायपरिस्फरणार्थेन तथागततथ-ताव्यतिभेदार्थेन तथागतगोत्रसंभवार्थेन च। एषां पुनस्त्रयाणामर्थपदा-नामुत्तरत्र तथागतगर्भसूत्रानुसारेण निर्देशो भविष्यति। पूर्वतरं तु येनार्थेन सर्वत्राविशेषेण प्रवचने सर्वाकारं तदर्थसूचनं भवति तदप्यधिकृत्य निर्देक्ष्यामि। उद्दानम्।

संक्षेप में तीन प्रकार के अर्थों से सभी सत्त्व तथागत के ही गर्भ हैं यह भगवान् ने कहा है। क्योंकि सभी प्राणियों में तथागत धर्मकाय के प्रकाशन से, तथागत की तथता के प्रसार से, तथागत गोत्र की संभावना से ही वे प्राणी तथागत गर्भ सिद्ध होते हैं। इन तीन अर्थ पदों का (उत्तरत्र) बाद में तथागत गर्भ सूत्रानुसार ही निर्देश करेंगे। पिछला जो विषय है उसे जिस अर्थ से सभी जगह अविशेष प्रवचन में सर्वाकार की, उसी के लिए सूचना होगी वह भी बाद में ही बतायेंगे। यही उपदेश है।

स्वभावहेत्वोः फलकर्मयोग-
वृत्तिष्ववस्थास्वथ सर्वगत्वे।
सदाविकारित्वगुणेष्वभेदे
ज्ञेयोऽर्थसंधिः परमार्थधातोः॥ २९ ॥

स्वभावार्थ, हेत्वर्थ, फलार्थ, कर्मार्थ, योगार्थ, वृत्यर्थ, अवस्था प्रभेदार्थ, सर्वत्रगार्थ, अविकारार्थ के भेद से संक्षेप में दश प्रकार के अर्थों को मन में रखकर परम तत्त्व ज्ञान विषयक तथागत धातु का व्यवस्थान भगवान् ने निर्देश किया है उसे जानना चाहिए। यहाँ स्वभावार्थ तथा हेत्वर्थ को लेकर ही यह श्लोक बताया गया है॥ २९ ॥

समासतो दशविधमर्थमभिसंधाय परमतत्त्वज्ञानविषयस्य तथागतधातोर्व्यवस्थानमनुगन्तव्यम्। दशविधोऽर्थः कतमः। तद्यथा स्वभावार्थो हेत्वर्थः फलार्थः कर्मार्थो योगार्थो वृत्त्यर्थोऽवस्थाप्रभेदार्थः सर्वत्रगार्थोऽविकारार्थोऽभेदार्थश्च। तत्र स्वभावार्थं हेत्वर्थं चारभ्य श्लोकः।

सदा प्रकृत्यसंक्लिष्टः शुद्धरत्नाम्बराम्बुवत्।
धर्माधिमुक्त्यधिप्रज्ञासमाधिकरुणान्वयः॥ ३० ॥

सदैव प्रकृति से ही असंक्लिष्ट, शुद्ध रत्न और आकाश तथा जल के तरह धर्म के अधिमुक्ति तथा अधिप्रज्ञा, समाधि एवं करुणा से युक्त ही तथागत धातु या ज्ञान होता है।

तत्र पूर्वेण श्लोकार्धेन किं दर्शयति।

वहाँ पूर्व आधे श्लोक से किस अर्थ हो दिखाया गया है॥ ३० ॥

प्रभावानन्यथाभावस्निग्धभावस्वभावतः।
चिन्तामणिनभोवारिगुणसाधर्म्यमेषु हि॥ ३१ ॥

इन बुद्ध के पूर्वोक्त तीन गुण के तीन स्वभाव भी हैं। वे हैं प्रभाव, अनन्यथा भाव एवं स्निग्ध भाव। इन तीनों के स्वभाव भी क्रमशः चिन्तामणि (रत्न), आकाश तथा (स्वच्छ) जल के तरह ही है।

य एते त्रयोऽत्र पूर्वमुद्दिष्टा एषु त्रिषु यथासंख्यमेव स्वलक्षणं सामान्यलक्षणं चारभ्य तथागतधातोश्चिन्तामणिनभोवारिविशुद्धि-गुणसाधर्म्यं वेदितव्यम्। तत्र तथागतधर्मकाये तावच्चिन्तितार्थसमृद्ध्यादि प्रभावस्वभावतां स्वलक्षणमारभ्य चिन्तामणिरत्नसाधर्म्यं वेदितव्यम्। तथतायामनन्यथाभावस्वभावतां स्वलक्षणमारभ्याकाशसाधर्म्यं वेदितव्यम्। तथागतगोत्रे सत्त्वकरुणास्निग्धस्वभावतां स्वलक्षणमारभ्य वारिसाधर्म्यं वेदितव्यम्। सर्वेषां चात्र सदात्यन्तप्रकृत्यनुपक्लिष्टतां प्रकृतिपरिशुद्धिं सामान्यलक्षणमारभ्य तदैव चिन्तामणिनभोवारि-विशुद्धिगुणसाधर्म्यं वेदितव्यम्।

वे तीन पहले बताए गए गुण-धर्म क्रमशः स्वलक्षण एवं सामान्य लक्षण को लेकर तथागत धातु चिन्तामणि, आकाश और जल के तरह ही साधर्म्य जानना चाहिए। तथागत धर्मकाय में चिन्तित अर्थ की प्राप्ति, तथा प्रभाव स्वभाव के लक्षण को लेकर चिन्तामणि के साधर्म्य को जानना चाहिए। तथता में अनन्यथा भाव के स्वभाव के स्वलक्ष को लेकर आकाश के समान साधर्म्य को जानना चाहिए। तथागत गोत्र में सत्त्व-करुणा स्निग्ध स्वभाव के स्वलक्षण को लेकर जल के साथ साम्य दिखाया गया है। सभी गुणों का सदा अत्यन्त प्रकृति से ही अनुपक्लिष्ट प्रकृति परिशुद्धि के सामान्य लक्षण को लेकर वही चिन्तामणि नभ जल के विशुद्धि गुण साधर्म्य को जानना चाहिए।

तत्र परेण श्लोकार्धेन किं दर्शितम्।

इस दूसरे श्लोक के आधे भाग से क्या दिखाया गया है।

चतुर्धावरणं धर्मप्रतिघोऽप्यात्मदर्शनम्।
संसारदुःखभीरुत्वं सत्त्वार्थं निरपेक्षता॥ ३२ ॥

चार प्रकार के आवरण, धर्मप्रतिघा, आत्मदर्शन, संसार दुःख की भीरुता, निरपेक्षता – प्राणियों के लिए॥ ३२ ॥

इच्छन्तिकानां तीर्थ्यानां श्रावकाणां स्वयंभुवाम्।
अधिमुक्त्यादयो धर्माश्चत्वारः शुद्धिहेतवः॥ ३३ ॥

इच्छाओं से भरे हुए तीर्थिकों के लिए तथा स्वयंभू श्रावकों के लिए अधिमुक्ति आदि चार धर्म शुद्धि के लिए बताए गए हैं।

समासत इमे त्रिविधाः सत्वाः सत्त्वराशौ संविद्यन्ते। भवाभिलाषिणो विभवाभिलाषिणस्तदुभयानभिलाषिणश्च। तत्र भवाभिलाषिणो द्विविधा वेदितव्याः। मोक्षमार्गप्रतिहताशा अपरिनिर्वाणगोत्रकाः सत्त्वा ये संसारमेवेच्छन्ति न निर्वाणं तन्नियतिपतिताश्चेह धार्मिका एव। तदेकत्या महायानधर्मविद्विषो यानधिकृत्यैतदुक्तं भगवता। नाहं तेषां शास्ता न ते मम श्रावकाः। तानहं शारिपुत्र तमसस्तमोऽन्तरमन्धकारान् महान्धकारगामिनस्तमोभूयिष्ठा इति वदामि।

संक्षेप में वे तीन प्रकार के सत्त्व सत्त्व राशि में होते हैं। संसार के भव और वैभव को चाहने वाले वे होते हैं। भवाभिलाषी दो प्रकार के होते हैं। मोक्ष के प्रति जिनकी आशा समाप्त हुई है ऐसे, अपरि निर्वाण गोत्र वाले प्राणी जो संसार को ही चाहते हैं निर्वाण को नहीं, वे अपने भाग्य के ही भरोसा में रहने वाले धार्मिक ही हैं। एक तरफ महायानधर्म में विद्वेष करने वाले, जिन्हें लेकर भगवान् ने यह कहा है – मैं उनका शास्ता भी नहीं हूँ, वे मेरे श्रावक भी नहीं हैं। उन लोगों में अन्धकार के भी अन्धकार में विनिविष्ट प्राणी कहता हूँ।

तत्र विभवाभिलाषिणो द्विविधाः। अनुपायपतिता उपायपतिताश्च। तत्रानुपायपतिता अपि त्रिविधाः। इतो बाह्या बहुनानाप्रकाराश्चरकपरिव्रजकनिर्गन्थिपुत्रप्रभृतयोऽन्यतीर्थ्याः। इह धार्मिकाश्च

तत्सभागचरिता एव श्राद्धा अपि दुर्गृहीतग्राहिणः। ते च पुनः कतमे। यदुत पुद्गलदृष्टयश्च परमार्थानधिमुक्ता यान्प्रति भगवता शून्यतान-धिमुक्तो निर्विशिष्टो भवति तीर्थिकैरित्युक्तम्। शून्यतादृष्टयश्चाभिमानिका येषामिह तद्विमोक्षमुखेऽपि शून्यतायां माद्यमानानां शून्यतैव दृष्टिर्भवति यानधिकृत्याह। वरं खलु काश्यप सुमेरुमात्रा पुद्गलदृष्टिर्न वेवाभिमा-निकस्य शून्यतादृष्टिरिति। तत्रोपायपतिता अपि द्विविधाः। श्रावकयानी-याश्च सम्यक्त्वनियामभवक्रान्ताः प्रत्येकबुद्धयानीयाश्च।

विभव को चाहने वाले भी दो प्रकार के हैं। अनुपाय में स्थित और उपाय में स्थित। अनुपाय में स्थित तीन प्रकार के हैं। इनसे अन्य भी हैं जो अनेक-नाना-प्रकार के यात्री, परिव्राजक, निर्ग्रन्थि, और उनके पुत्र आदि अन्य तीर्थिक। यहाँ धार्मिक भी उनके ही समता वाले जो श्रद्धा सम्पन्न होते हुए दुश्चरित सिद्धान्त के ग्राहक ही हैं। वे और कौन हैं। जैसा कि पुद्गलदृष्टियुक्त, परमार्थ में लगे हुए लोगों के प्रति भगवान् ने कहा है शून्यता में न लगने से निर्विशिष्ट तीर्थिक होते हैं। शून्यता दृष्टि वाले भी अभिमान सम्पन्न, जिनका मोक्ष के मुख में भी शून्यता के प्रति उन्मत्तता के कारण शून्यता को दृष्टि बनाने वालोंके प्रति भगवान् ने कहा है। हे काश्यप! शून्यता दृष्टि में अधिष्ठित होने वालों से तो सुमेरु पर्वत ही श्रेष्ठ है किन्तु यह शून्यता अभिमान उचित नहीं है। उपाय में फँसे हुए भी दो प्रकार के हैं। श्रावकयानीय और सम्यक् नियम वाले प्रत्येक बुद्धयानीय।

तदुभयानभिलाषिणः पुनर्महायानसंप्रस्थिताः परमतीक्ष्णेन्द्रियाः सत्त्वा ये नापि संसारमिच्छन्ति यथेच्छन्तिका नानुपायपतितास्तीर्थि-कादिवन् नाप्युपायपतिताः श्रावकप्रत्येकबुद्धवत्। अपि तु संसार-निर्वाणसमतापत्तिमार्गप्रतिपन्नास्ते भवन्त्यप्रतिष्ठितनिर्वाणाशया निरुपक्लिष्टसंसारगतप्रयोगा दृढकरुणाध्याशय-प्रतिष्ठितमूलपरिशुद्धा इति।

इन दोनों को न चाहने वाले महायान में अवस्थित (संप्रस्थित) परम तीक्ष्ण इन्द्रियों से सम्पन्न प्राणी जो न संसार को ही चाहते हैं, इच्छाओं से रहित होने से अनुपाय में भी नहीं है जैसे तीर्थिक और न हि उपाय में पतित है जैसे श्रावक-प्रत्येक बुद्ध आदि। किन्तु संसार और निर्वाण में समान रूप से

दोनों मार्गों में लगे हुए अप्रतिष्ठित निर्वाण में अवस्थित, निरूप क्लिष्ट संसार में प्रविष्ट और वे दृढ-करुणा-अध्याशय प्रतिष्ठित मूल परिशुद्ध हैं।

तत्र ये सत्त्वा भवाभिलाषिण इच्छन्तिकास्तन्नियतिपतिता इह धार्मिका एवोच्यन्ते मिथ्यात्वनियतः सत्त्वराशिरिति। ये विभवाभिलाषिणोऽप्यनुपायपतिता उच्यन्तेऽनियतः सत्त्वराशिरिति। ये विभवाभिलाषिण उपायपतितास्तदुभयानभिलाषिणश्च समताप्तिमार्ग-प्रतिपन्नास्त उच्यन्ते सम्यक्त्वनियतः सत्त्वराशिरिति। तत्र महायानसंप्रस्थितान् सत्त्वाननावरणगामिनः स्थापयित्वा य इतोऽन्ये सत्त्वास्तद्यथा। इच्छन्तिकास्तीर्थ्याः श्रावकाः प्रत्येक-बुद्धाश्च। तेषामिमानि चत्वार्यावरणानि तथागतधातोरनधिगमायासाक्षात्क्रियायै संवर्तन्ते। कतमानि च चत्वारि। तद्यथा महायानधर्मप्रतिघ इच्छन्तिकानामावरणं यस्य प्रतिपक्षो महायानधर्माधिमुक्तिभावना बोधिसत्त्वानाम्। धर्मेष्वात्मदर्शनमन्यतीर्थानामावरणं यस्य प्रतिपक्षः प्रज्ञापारमिताभावना बोधिसत्त्वानाम्। संसारे दुःखसंज्ञा दुःखभीरुत्वं श्रावकयानिकानामावरणं यस्य प्रतिपक्षो गगनगञ्जादिसमाधिभावना बोधिसत्त्वानाम्। सत्त्वार्थविमुखता सत्त्वार्थनिरपेक्षता प्रत्येकबुद्धयानिकानामावरणं यस्य प्रतिपक्षो महाकरुणाभावना बोधिसत्त्वानामिति।

जो सत्त्व संसार को चाहने वाले हैं वे इ%छन्तिक हैं और उनके अपने नियत में ही पतित हैं, वे धार्मिक कहलाते हैं जो मिथ्यात्व नियत वाले सत्त्व राशि हैं। जो विभव अभिलाशी हैं वे अनुपाय में पतित हैं, वे अनियत सत्त्व राशि कहलाते हैं। जो विभव के अभिलाषी हैं वे उपाय पतित हैं तथा दोनों को न चाहने वाले हैं तथा समताप्ति मार्ग में स्थित सम्यक्त्व नियत सत्त्वराशि ही है। उसमें महायान सम्प्रदाय में स्थित सत्त्व जो अनावरणगामी हैं, उन्हें स्थापित करते है। इनसे अन्य सत्त्व निम्नरूप के हैं। इच्छन्तिक तीर्थ्य, श्रावक और प्रत्येक बुद्ध। उनके ये चार आवरण हैं। वे तथागत धातु - अनधिगत (अप्राप्त) माया साक्षात् क्रिया के लिए लगे रहते हैं। वे चार कौन हैं? महायानधर्म के प्रति अरुचिवाले, इच्छन्तिकों का आवरण जिनके प्रतिपक्ष हैं, जो बोधिसत्त्वों की प्रज्ञापारमिता भावना। धर्मों में आत्म-दर्शन ही अन्य

तीर्थिकों का आवरण है जिसका प्रतिपक्ष प्रज्ञापारमिता भावना है - बोधिसत्त्वों का। संसार में दुःख संज्ञा, दुःख भी सत्त्व ही श्रावक यात्रियों का आवरण है जिसका प्रतिपक्ष बोधिसत्त्वों का गगनगञ्जादि समाधि भावना है। सत्त्वार्थ विमुखता, सत्त्वार्थ-निरपेक्षता प्रत्येक बुद्धयानिकों का आवरण है जिसका प्रतिपक्ष बोधिसत्त्वों की महाकरुणा ही है।

एतच्चतुर्विधमावरणमेषां चतुर्विधानां सत्त्वानां यस्य प्रतिपक्षानिमांश्चतुरोऽधिमुक्त्यादीन् भावयित्वा बोधिसत्त्वा निरुत्तरार्थधर्मकायविशुद्धिपरमतामधिगच्छन्त्येभिश्च विशुद्धिसमुदागमकारणैश्चतुर्भिरनुगता धर्मराजपुत्रा भवन्ति तथागतकुले। कथमिति।

यह चार प्रकार का आवरण जिन चार सत्त्वों का है और इनके प्रतिपक्ष तथा चार निमित्त तथा चार अधिमुक्तियों की भावना कर बोधिसत्त्वगण निरुत्तरार्थ धर्मकाय विशुद्धि के परंपार में प्राप्त होते हैं और चार प्रकार के विशुद्धि प्राप्ति के कारणों के साथ होते हैं, वे ही धर्मराज पुत्र कहलाते हैं तथागत कुल में। कैसे?

बीजं येषामग्रयानाधिमुक्ति-
र्माता प्रज्ञा बुद्धधर्मप्रसूत्यै।
गर्भस्थानं ध्यानसौख्यं कृपोक्ता
धात्री पुत्रास्तेऽनुजाता मुनीनाम्॥३४॥

जिनका बीज ही अग्रयान के प्राप्ति का साधन है। जिनकी माता बुद्ध धर्म को पैदा करने वाली प्रज्ञा है। ध्यान का सुख ही गर्भ स्थानीय स्थिति हैं, और वह कृपा ही है जो धात्री स्थानीय है जिसके पुत्र उनके धर्म ज्ञान तथा संघ ही हैं - उन मुनि के॥ ३४ ॥

तत्र फलार्थं कर्मार्थं चारभ्य श्लोकः।

फलार्थ और कर्मार्थ के लिए यह श्लोक है।

शुभात्मसुखनित्यत्वगुणपारमिता फलम्।
दुःखनिर्विच्छमप्राप्तिच्छन्दप्रणिधिकर्मकः॥ ३५ ॥

शुभात्मा, नित्यसुख, पारमिता ही इनके फल हैं। जो दुःख का नाशक छन्द के अप्राप्ति लक्षणात्मक धर्म ही है॥ ३५ ॥

तत्र पूर्वेण श्लोकार्धेन किं दर्शितम्।
फलमेषां समासेन धर्मकाये विपर्ययात्।
चतुर्विधविपर्यासप्रतिपक्षप्रभावितम्॥ ३६ ॥

पूर्व श्लोक के आधे भाग से क्या बताया गया है। इनका फल, संक्षेप में धर्मकाय में विपर्यय से तथा चार प्रकार के विर्ययों के प्रतिपक्ष से प्रभावित है॥ ३६ ॥

य एतेऽधिमुक्त्यादयश्चत्वारो धर्मास्तथागतधातोर्विशुद्धिहेतव एषां यथासंख्यमेव समासतश्चतुर्विधविपर्यासविपर्ययप्रतिपक्षेण चतुराकारा तथागतधर्मकायगुणपारमिता फलं द्रष्टव्यम्। तत्र या रूपादिके वस्तुन्यनित्ये नित्यमिति संज्ञा। दुःखे सुखमिति। अनात्मन्यात्मेति। अशुभे शुभमिति संज्ञा। अयमुच्यते चतुर्विधो विपर्यासः। एतद्विपर्ययेण चतुर्विध एवाविपर्यासो वेदितव्यः। कतमश्चतुर्विधः। या तस्मिन्नेव रूपादिके वस्तुन्यनित्यसंज्ञा। दुःखसंज्ञा। अनात्मसंज्ञा। अशुभसंज्ञा। अयमुच्यते चतुर्विधविपर्यासविपर्ययः। स खल्वेष नित्यादिलक्षणं तथागतधर्मकायमधिकृत्येह विपर्यासोऽभिप्रेतो यस्य प्रतिपक्षेण चतुराकारा तथागतधर्मकायगुणपारमिता व्यवस्थापिता। तद्यथा नित्यपारमिता सुखपारमितात्मपारमिता शुभपारमितेति। एष च ग्रन्थो विस्तरेण यथासूत्रमनुगन्तव्यः। विपर्यस्ता भगवन् सत्त्वा उपात्तेषु पञ्चसूपादानस्कन्धेषु। ते भवन्त्यनित्ये नित्यसंज्ञिनः। दुःखे सुखसंज्ञिनः। अनात्मन्यात्मसंज्ञिनः। अशुभे शुभसंज्ञिनः। सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धा अपि भगवन् शून्यताज्ञानेनादृष्टपूर्वे सर्वज्ञज्ञानविषये तथागतधर्मकाये विपर्यस्तताः। ये भगवन् सत्त्वाः स्युर्भगवतः पुत्रा औरसा नित्यसंज्ञिन आत्मसंज्ञिनः सुखसंज्ञिनः शुभसंज्ञिनस्ते भगवन् सत्त्वाः स्युरविपर्यस्ताः। स्युस्ते भगवन् सम्यग्दर्शिनः। तत् कस्माद्धेतोः। तथागतधर्मकाय एव भगवन् नित्यपारमिता सुखपारमिता आत्मपारमिता शुभपारमिता। ये भगवन् सत्त्वास्तथागतधर्मकायमेवं पश्यन्ति ते सम्यक् पश्यन्ति। ये सम्यक् पश्यन्ति ते भगवतः पुत्रा औरसा इति विस्तरः।

जो वे अधिमुक्ति आदि चार प्रकार के धर्म हैं जो तथागत धातु के

विशुद्धि के कारण हैं, इनका क्रमशः, संक्षेप में चतुर्विध विपर्यास विपर्यय आदि के विपक्ष में चार प्रकार के तथागत धर्मकाय के गुणों के पारमिता रूप फल को देखना चाहिए। वहाँ पर रूप आदि वस्तु में, जो अनित्य है उसमें नित्य संज्ञा होना ही है। दुःख में सुख। अनात्मा में आत्मा। अशुभ में शुभ संज्ञा। यही चार प्रकार का विपर्यास है। इससे उल्टा चार प्रकार का अविपर्यास होता है। वे चार कौन से हैं। जो उसी रूप आदि वस्तु में अनित्य संज्ञा। दुःख संज्ञा। अनात्म संज्ञा। अशुभ संज्ञा। यही चार प्रकार का विपर्यास विपर्यय है। यह नित्यादि लक्षण तथागत धर्मकाय को लेकर यह कहा है विपर्यास अभिप्रेत है जिसका प्रतिपक्ष चार आकार वाली तथागत धर्मकाय गुण पारमिता व्यवस्थित है। जैसा कि नित्य पारमिता, सुख पारमिता, आत्म पारमिता और शुभ पारमिता। इसे यहाँ विस्तार के भय से नहीं बताया गया है यथा सूत्र से ही जानना चाहिए। हे भगवन् वे सत्त्व डरे हुए हैं, उल्टा समझते हैं क्योंकि पञ्च स्कन्धों को ठीक से नहीं समझते। वे अनित्य में नित्य जानते हैं। दुःख में सुख। अनात्मा में आत्मसंज्ञा। अशुभ में शुभ संज्ञा। हे भगवन् सर्वश्रावक, और प्रत्येक बुद्ध भी शून्यता ज्ञान द्वारा अदृष्ट पूर्व में सर्वज्ञ के ज्ञान के विषय में एवं तथागत धर्मकाय में भी विपर्यस्त हैं। हे भगवन्! जो प्राणी भगवान् के पुत्र हैं जो नित्य संज्ञा वाले, आत्मसंज्ञी, सुखसंज्ञी और शुभसंज्ञी वे अविपर्यस्त कहलाते हैं। वे सम्यक् दर्शी हों। वह क्यों? तथागत धर्मकाय ही नित्यपारमिता, सुखपारमिता, आत्मपारमिता, और शुभपारमिता है। जो सत्त्व इस प्रकार तथागत के धर्मकाय को देखते हैं वे सम्यक् देखते हैं। जो सम्यक्दर्शी हैं वे ही भगवान् के औरस पुत्र हैं यह जानना चाहिए।

आसां पुनश्चतसृणां तथागतधर्मकायगुणपारमितानां हेत्वानुपूर्व्या प्रतिलोमक्रमो वेदितव्यः। तत्र महायानधर्मप्रतिहतानामिच्छन्तिकाना-मशुचिसंसाराभिरतिविपर्ययेण बोधिसत्त्वानां महायानधर्माधिमुक्ति-भावनायाः शुभपारमिताधिगमः फलं द्रष्टव्यम्। पञ्चसूपादानस्कन्धेष्वा-त्मदर्शिनामन्यतीर्थ्यानामसदात्मग्रहाभिरतिविपर्ययेण प्रज्ञापारमिता-भावनायाः परमात्मपारमिताधिगमः फलं द्रष्टव्यम्। सर्वे ह्यन्यतीर्थ्या रूपादिकमतत्स्वभावं वस्त्वात्मेत्युपगताः। तगौषां वस्तु यथाग्रह-

मात्मलक्षणेन विसंवादित्वात् सर्वकालमनात्मा। तथागतः पुनर्यथाभूतज्ञानेन सर्वधर्मनैरात्म्यपरपारमभिप्राप्तः। तच्चास्य नैरात्म्यमनात्मलक्षणेन यथादर्शनमविसंवादित्वात् सर्वकालमात्माभिप्रेतो नैरात्म्यमेवात्मनि कृत्वा। यथोक्तं स्थितोऽस्थानयोगेनेति। संसारदुःखभीरूणां श्रावक-यानिकानां संसारदुःखोपशममात्राभिरतिविपर्ययेण गगनगञ्जादिसमाधिभावनायाः सर्वलौकिकलोकोत्तरसुखपारमिताधिगमः फलं द्रष्टव्यम्। सत्त्वार्थनिरपेक्षाणां प्रत्येकबुद्धयानीयानामसंसर्गविहाराभिरतिविपर्ययेण महाकरुणाभावनायाः सततसमितमा संसारात् सत्त्वार्थफललिगोध-परिशुद्धत्वान् नित्यपारमिताधिगमः फलं द्रष्टव्यम्। इत्येतासां चतसृणामधिमुक्तिप्रज्ञासमाधिकरुणाभावनानां यथासंख्यमेव चतुराकारं तथागतधर्मकाये शुभात्मसुखनित्यत्वगुणपारमिताख्यं फलं निर्वर्त्यते बोधिसत्त्वानाम्। आभिश्च तथागतो धर्मधातुपरम आकाशधातु-पर्यवसानोऽपरान्तकोटिनिष्ठ इत्युच्यते। महायानपरमधर्माधिमुक्तिभावनया हि तथागतोऽत्यन्तशुभधर्मधातुपरमताधिगमाद्धर्मधातुपरमः संवृत्तः। प्रज्ञापारमिताभावनयाकाशोपमसत्त्वभाजनलोकनैरात्म्यनिष्ठागमनाद् गगनगञ्जादिसमाधिभावनया च सर्वत्र परमधर्मैश्चर्यविभुत्वसंदर्शना-दाकाशधातुपर्यवसानः। महाकरुणाभावनया सर्वसत्त्वेष्वपर्यन्तकाल-कारुणिकतामुपादायापरान्तकोटिनिष्ठ इति।

वे चार तथागतधर्मकाय गुण पारमिताओं का हेतु अनुपूर्वी से प्रतिलोम क्रम से है। महायान धर्म के विमुख इच्छन्तिक अशुचि और संसार के प्रति रति से वियुक्त बोधिसत्त्वों का महायान धर्माधिमुक्ति भावना से शुभ पारमिता की प्राप्ति रूप फल जानना चाहिए। पाँच उपादान स्कन्धों में आत्मदर्शी अन्य तीर्थिकों में असत् आत्म ग्राही के रति से विपर्यय से प्रज्ञापारमिता भावना द्वारा परमात्म पारमिता की प्राप्ति होती है। सभी अन्य तीर्थिक रूप आदि को अन्य स्वभावयुक्त वस्तु को आत्मा ऐसा मानते हैं। उनका यह आत्मा वस्तु यथाग्रह आत्मलक्षण से विंसवादी होने से सभी काल में अनात्मा ही है। तथागत यथार्थ ज्ञान से सर्वधर्म नैरात्म्य परं पारमिता को प्राप्त हैं। वह नैरात्म्य अनात्म लक्षण से यथार्थ दर्शन है अविसंवादी होने से। सर्वकाल में आत्मा अभिप्रेत है

नैरात्म्य को अपने में समाहित करने से। अस्थान योग द्वारा इसी को कहा गया है। संसार के दुःख के भीरुता के कारण श्रावकयान के पथिकों का संसार दुःख उपशम के लिए होने वाले इच्छा के विपर्यय (उल्टा) से गगन गञ्जादि समाधि भावना का सभी लौकिक, लोकोत्तर सुख पारमिताधिगम रूप फल जानना चाहिए। सत्त्वों के कल्याण के निरपेक्ष प्रत्येक बुद्धयानियों का असंसर्ग विहार के रति के विपरीत महाकरुणा भावना के निरन्तर संगम होने से संसार से सत्त्वों के लिए हित चिन्तन द्वारा शुद्ध होने से नित्य पारमिता रूप फल जानना चाहिए। इन चार अधिमुक्ति प्रज्ञा समाधि-करुणा भावों का क्रमशः चार प्रकार के तथागत धर्मकाय में शुमात्म सुख नित्यत्व गुण पारमिता नामक फल उपलब्ध होता है बोधिसत्त्वों के लिए। इनके द्वारा तथागत धर्मधातु परम आकाश-धातु पर्यवसान अपरान्त कोटिनिष्ठ ऐसा कहा गया है। महायान परम धर्माधि मुक्ति भावना के द्वारा तथागत अत्यन्त शुभ धर्म धातु परम पारमिता के उपलब्धि से परम पारमिता उपलब्धि होती है। प्रज्ञा पारमिता भावना से आकाश के तरह सत्त्व भाजनों के अवलोकन से आत्मनिष्ठा के उपलब्धि पूर्वक गगन गञ्जादि समाधि भावना भी परम धर्म ऐश्वर्य विभुत्व के दर्शन से आकाश धातु का पर्यसान होता है। महकरुणा भावना से सभी सत्त्वों में अन्तिम काल तक कारुणिकता को प्राप्त कर अपरान्त कोटिनिष्ठ कहा जाता है।

आसां पुनश्चतसृणां तथागतधर्मकायगुणपारमितानामधिगमायानास्त्रवधातुस्थितानामप्यर्हतां प्रत्येकबुद्धानां वशिताप्राप्तानां च बोधिसत्त्वानामिमे चत्वारः परिपन्था भवन्ति। तद्यथा प्रत्ययलक्षणं हेतुलक्षणं संभवलक्षणं विभवलक्षणमिति। तत्र प्रत्ययलक्षणमविद्यावासभूमिरविद्येव संस्काराणाम्। हेतुलक्षणमविद्यावासभूमिप्रत्ययमेव संस्कारवदनास्त्रवं कर्म। संभवलक्षणमविद्यावासभूमिप्रत्ययानास्त्रवकर्महेतुकी च त्रिविधा मनोमयात्मभावनिर्वृत्तिश्चतुरुपादानप्रत्यया सास्त्रवकर्महेतुकीव त्रिभवाभिनिर्वृत्तिः। विभवलक्षणं त्रिविधमनोमयात्मभावनिर्वृत्तिप्रत्यया जातिप्रत्ययमिव जरामरणमचिन्त्या पारिणामिकी च्युतिरिति।

इन चार तथागत धर्मकायगुण पारमिता के अधिगम करने वाले आश्रव धातु स्थित अर्हतों का तथा प्रत्येक बुद्ध जो वशिता प्राप्त करने वाले बोधिसत्त्वों के लिए वे चार विघ्न होते हैं। जैसा कि प्रत्यय लक्षण, हेतु लक्षण, संभव-लक्षण और विभव लक्षण ही है। यहाँ प्रत्यय लक्षण अविद्या के वासना के कारण उद्युक्त होता है। हेतु लक्षण अविद्या के कारण से संस्कार के तरह अनास्रव कर्म ही है। संभव लक्षण अविद्या जन्य आस्रव कर्म जन्य ही है जो तीन प्रकार का है - मनोमय आत्मभाव निवृत्ति, चार उपादन कारणों से सास्रव कर्मों का हेतुरूप त्रिभव से उत्पन्न होते हैं। विभव लक्षण - तीन प्रकार का मनोमय आत्मभाव निवृत्ति रूप जाति प्रत्यय के तरह जरामरण जन्य परिणामात्मक च्युति ही है।

तत्र सर्वोपक्लेशसंनिश्रयभूताया अविद्यावासभूमेरप्रहीणत्वादर्हन्तः प्रत्येक-बुद्धा वशिताप्राप्ताश्च बोधिसत्त्वाः सर्वक्लेशमलदौर्गन्ध्य-वासनापकर्षपर्यन्तशुभपारमितां नाधिगच्छन्ति। तामेव चाविद्यावासभूमिं प्रतीत्य सूक्ष्मनिमित्तप्रपञ्चसमुदाचारयोगादत्यन्तमनभिसंस्कारमात्मपारमितां नाधिगच्छन्ति। तां चाविद्यावासभूमिमविद्यावासभूमिप्रत्ययं च सूक्ष्म-निमित्तप्रपञ्चसमुदाचारसमुत्थापितमनास्रवं कर्म प्रतीत्य मनोम-यस्कन्धसमुदयात् तन्निरोधमत्यन्तसुखपारमितां नाधिगच्छन्ति। यावच्च निरयशेषक्लेशकर्मजन्मसंक्लेशनिरोधसमुद्भूतं तथागतधातुं न साक्षात्कुर्वन्ति तावदचिन्त्यपारिणामिक्याश्च्युतेरविगमादत्यन्तानन्यथाभावां नित्यपारमितां नाधिगच्छन्ति। तत्र क्लेशसंक्लेशवदविद्यावासभूमिः। कर्मसंक्लेशवदनास्रवकर्माभिसंस्कारः। जन्मसंक्लेशवत् त्रिविधा मनोमयात्मभावनिर्वृत्तिरचिन्त्यपारिणामिकी च च्युतिरिति।

यहाँ सभी उपक्लेश संनिश्रयभूत अविद्यावासनाभूमि के प्रहाण द्वारा अर्हत् प्रत्येक बुद्ध, वशिताप्राप्त बोधिसत्त्व भी सर्वक्लेश मल दुर्गन्ध-वासना रहित शुभ-पारमिता को प्राप्त नहीं होते। उसी अविद्या वासना भूमि को जानकर (प्राप्त कर) सूक्ष्म निमित्त भूत-प्रपञ्च कारणभूत योग से अत्यन्त निःसंस्कार आत्मपारमिता को प्राप्त नहीं होते। उस अविद्या वासभूमि और प्रत्यय को सूक्ष्म निमित्त प्रपञ्च समुदाचार समुत्थापित अनास्रव कर्म को प्राप्त

होकर मनोमयस्कन्ध धातु समुदय से तन्निरोध अत्यन्त सुख पारमिता को प्राप्त नहीं होते। जब तक अशेष-क्लेश-कर्म-जन्म क्लेश-निरोध-समुद्भूत तथागत धातु का साक्षात्कार नहीं करते तब तक अचिन्त्य परिणाम युक्त च्युति के प्राप्ति से नित्य पारमिता को प्राप्त नहीं होते। और वहाँ क्लेश और संक्लेश के तरह ही अविद्या का वासभूमि ही है। कर्मक्लेश के तरह अनास्रव कर्माभिसंस्कार भी है। जन्म संक्लेश के तरह त्रिविध मनोमय आत्मभाव प्राप्ति रूप अचिन्त्य परिणामयुक्त च्युति ही है।

एष च ग्रन्थो विस्तरेण यथासूत्रमनुगन्तव्यः। स्याद्यथापि नाम भगवन्नुपादानप्रत्ययाः सास्रवकर्महेतुकास्त्रयो भवाः संभवन्ति। एवमेव भगवन्नविद्या-वासभूमिप्रत्यया अनास्रवकर्महेतुका अर्हतां प्रत्येकबुद्धानां वशिताप्राप्तानां च बोधिसत्त्वानां मनोमयास्त्रयः कायाः संभवन्ति। आसु भगवन् तिसृषु भूमिष्वेषां त्रयाणां मनोमयानां कायानां संभवायानास्रवस्य च कर्मणोऽभिनिर्वृत्तये प्रत्ययो भवत्यविद्यावासभूमिरिति विस्तरः। यत एतेषु त्रिषु मनोमयेष्वर्हत्प्रयेक-बुद्धबोधिसत्त्वकायेषु शुभात्मसुखनित्यगुणपारमिता न संविद्यन्ते तस्मात् तथागतधर्मकाय एव नित्यपारमिता सुखपारमितात्मपारमिता शुभपारमितेत्युक्तम्।

इस प्रसङ्ग को यथासूत्र ही जानना चाहिए। हे भगवन्! उपादान प्रत्यय रूप सास्रव कर्मों के हेतुभूत तीन भव होंगे ही। इसी प्रकार हे भगवन्! अविद्या के वासस्थान भूमि प्रत्यय अनास्रवकर्म हेतुक अर्हत्, प्रत्येक बुद्ध, जो वशिता प्राप्त हैं ऐसे बोधिसत्त्वों का मनोमय तीन काय होते हैं। इन तीन भूमियों में इन तीन मनोमय कायों का संभूत-अनास्रव कर्म के लिए प्रत्यय होता है - अविद्या वासना भूमि यही विस्तारपूर्वक कहा गया है। क्योंकि इन तीन मनोमय अर्हत्, प्रत्येक बुद्ध, बोधिसत्त्व कायों में शुभ, आत्मसुख, नित्य गुण पारमिता हैं इसीलिए तथागत धर्म काय में ही नित्य पारमिता, सुखपारमिता, आत्मपारमिता और शुभपारमितायें होती हैं॥ ३६ ॥

स हि प्रकृतिशुद्धत्वाद्वासनापगमाच्छुचिः।
परमात्मात्मनैरात्म्यप्रपञ्चक्षयशान्तितः॥ ३७ ॥

वह धर्मकाय प्रकृति शुद्ध होने से, वासना रहित होने से भी पवित्र है।

परमात्मा, आत्मा, नैरात्म्य के प्रपञ्च से दूर होने से और शान्ति के कारण भी शुद्ध है॥ ३७ ॥

सुखो मनोमयस्कन्धतद्धेतुविनिवृत्तितः।
नित्यः संसारनिर्वाणसमताप्रतिवेधतः॥ ३८ ॥

वह सुख स्वरूप है क्योंकि मनोमय, स्कन्ध धातु आदि के निवृत्ति से तथा नित्य भी है क्योंकि संसार और निर्वाण में समत्व बुद्धि होने से भी॥ ३८ ॥

समासतो द्वाभ्यां कारणाभ्यां तथागतधर्मकाये शुभपारमिता वेदितव्या। प्रकृतिपरिशुद्ध्या सामान्यलक्षणेन। वैमल्यपरिशुद्ध्या विशेषलक्षणेन। द्वाभ्यां कारणाभ्यामात्मपारमिता वेदितव्या। तीर्थिकान्त-विवर्जनतया चात्मप्रपञ्चविगमाच्छ्रावकान्तविवर्जनतया च नैरात्म्यप्र-पञ्चविगमात्। द्वाभ्यां कारणाभ्यां सुखपारमिता वेदितव्या। सर्वाकारदुःखसमुदयप्रहाणतश्च वासनानुसंधिसमुद्घातात् सर्वाकार-दुःखनिरोधसाक्षात्करणतश्च मनोमयस्कन्ध-निरोधसाक्षात्करणात्। द्वाभ्यां कारणाभ्यां नित्यपारमिता वेदितव्या। अनित्यसंसारानपकर्षणत-श्चोच्छेदान्ता पतनान् नित्यनिर्वाणसमारोपणतश्च शाश्वतान्तापतनात्। यथोक्तम्। अनित्याः संस्कारा इति चेद् भगवन् पश्येत सास्य स्यादुच्छेददृष्टिः। सास्य स्यान्न सम्यग्दृष्टिः। नित्यं निर्वाणमिति चेद् भगवन् पश्येत सास्य स्याच्छाश्वतदृष्टिः। सास्य स्यान्न सम्यग्दृष्टिरिति।

संक्षेप में दो कारणों से तथागत के धर्मकाय में शुभ-पारमिता को जानना चाहिए। सामान्यतः प्रकृति के शुद्धि से। विशेषतः वैमत्य के शुद्धि से। दोनों कारणों से आत्मा पारमिता को जाने। तीर्थिकों के अन्तों को निराकरण से, आत्म प्रपञ्च के निरसन से, श्रावकान्त विवर्जन से तथा नैरात्म्य प्रपञ्च न होने से। दोनों कारणों से सुख पारमिता को जानना चाहिए। सर्वाकार दुःखसमुदय प्रहाण से भी वासना के कारणों के नाशक भी, सर्वाकार दुःख निरोध के साक्षात्कार से, मनोमय स्कन्ध निरोध साक्षात्कार से भी दोनों कारणों से नित्य पारमिता को जानना चाहिए। अनित्य संसार के प्रति आकर्षण न होने से, उच्छेद के अन्दर न होने से, नित्य निर्वाण में स्थित होने से तथा शाश्वत के

अन्दर न रहने से। जैसा कहा भी है यदि संस्कार अनित्य है ऐसा कहें तो यह उसकी उच्छेद दृष्टि होगी। उसकी यह सम्यक दृष्टि न होगी। नित्य निर्वाण है यदि ऐसा कहा जाय तो यह शाश्वत दृष्टि होगी। यह भी सम्यक् दृष्टि नहीं होगी।

तदनेन धर्मधातुनयमुखेन परमार्थतः संसार एव निर्वाणमित्युक्तम्। उभयथाविकल्पनाप्रतिष्ठितनिर्वाणसाक्षात्करणतः। अपि खलु द्वाभ्यां कारणाभ्यामविशेषेण सर्वसत्त्वानामासन्नदूरीभावविगमादप्रतिष्ठित-पदप्राप्तिमात्रपरिदीपना भवति। कतमाभ्यां द्वाभ्याम्। इह बोधिसत्त्वोऽविशेषेण सर्वसत्त्वानां नासन्नीभवति प्रज्ञयाशेषतृष्णानुशय-प्रहाणात्। न दूरीभवति महाकरुणया तदपरित्यागादिति। अयमुपा-योऽप्रतिष्ठितस्वभावायाः सम्यक्संबोधेरनुप्राप्तये। प्रज्ञया हि बोधिसत्त्वो-ऽशेषतृष्णानुशयप्रहाणादात्महिताय निर्वाणगताध्याशयः संसारे न प्रतिष्ठतेऽपरिनिर्वाणगोत्रवत्। महाकरुणया दुःखितसत्त्वा परित्यागात् परहिताय संसारगतप्रयोगो निर्वाणे न प्रतिष्ठते शमैकयानगोत्रवत्। एवमिदं धर्मद्वयमनुत्तराया बोधेर्मूलं प्रतिष्ठानमिति।

अन्ततः इस धर्मधातुनय के कारण पारमार्थिक रूप में संसार ही निर्वाण है यही बोध होता है। दोनों से ही अविकल्प अप्रतिष्ठित निर्वाण का ही साक्षात्कार होता है। और भी दो कारणों से अविशेष रूप से सभी सत्त्वों को आसन्न दूरी भाव के हटने से अप्रतिष्ठित निर्वाण प्राप्ति मात्र का बोध होता है। किन दोनों से? यहाँ बोधिसत्त्व अविशेषतः सभी सत्त्वों के लिए उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि प्रज्ञा के द्वारा अशेष तृष्णा के क्षय होने से। दूर भी नहीं होता क्योंकि महाकरुणा से उसका त्याग नहीं करता। यह अप्रतिष्ठित स्वभाव का ही यह उपाय है, सम्यक् संबोधि के लिए ही है। प्रज्ञा के द्वारा बोधिसत्त्व अशेष तृष्णा अनुशय प्रहाण से आत्महित के लिए निर्वाण प्राप्ति के आशय से संसार में प्रतिष्ठित नहीं होता जैसा कि निर्वाण गोत्र का होता है। महाकरुणा से दुःखी सत्त्वों का अपरित्याग करता है और परहित के लिए संसार में ही रहता है, निर्वाण में नहीं जाता जैसा कि शान्ति में प्रतिष्ठित ऋषि। इस प्रकार यह धर्मद्वय अनुत्तर बोधि का मूल है यही वास्तविकता है॥ ३८ ॥

छित्त्वा स्नेहं प्रज्ञयात्मन्यशेषं सत्त्वस्नेहान् नैति शान्तिं कृपावान्।
निःश्रित्यैवं धीकृपे बोध्युपायौ नोपैत्यार्यः संवृतिं निर्वृतिं वा॥३९॥

अपनी प्रज्ञा द्वारा स्नेहपाश को काटकर अपने में ही समस्त सत्त्वों के स्नेह को समझकर महाकृपा से वह निर्वाण में नहीं जाता है। ऐसा जानकर प्रज्ञा और करुणा से बोधि के प्राप्ति से भी संसार और निर्वाण दोनों में आर्य नहीं जाता है॥ ३९ ॥

तत्र पूर्वाधिकृतं कर्मार्थमारभ्य परेण श्लोकार्धेन किं दर्शितम्।

वहाँ पर पूर्वार्ध के द्वारा व्यक्त कर्मार्थ के लिए श्लोक से क्या बताया गया?

बुद्धधातुः सचेन्न स्यान्निर्विद्दुःखेऽपि नो भवेत्।
नेच्छा न प्रार्थना नापि प्रणिधिर्निर्वृतौ भवेत्॥ ४० ॥

यदि वह बुद्ध धातु न होता तो दुःख का निवारण भी नहीं होता। दुःख के नाश की इच्छा और उसके लिए प्रार्थना भी नहीं होती और निर्वाण की कामना (प्रार्थना-संकल्प) भी नहीं होती॥ ४० ॥

तथा चोक्तम्। तथागतगर्भश्चेद् भगवन्न स्यान्न स्याद्दुःखेऽपि निर्विन्ननिर्वाणेच्छा या प्रार्थना वा प्रणिधिर्वेति। तत्र समासतो बुद्धधातुविशुद्धिगोत्रं मिथ्यात्वनियतानामपि सत्त्वानां द्विविध कार्यप्रत्युपस्थापनं भवति। संसारे च दुःखदोषदर्शननिःश्रयेण निर्विदमुत्पादयति। निर्वाणे सुखानुशंसदर्शननिःश्रयेण च्छन्दं जनयति। इच्छां प्रार्थनां प्रणिधिमिति। इच्छाभिलषितार्थप्राप्तावसंकोचः। प्रार्थनाभिलषितार्थप्राप्त्युपायपरिमार्गणा। प्रणिधिर्याभिलषितार्थे चेतना चित्ताभिसंस्कारः।

कहा भी है। यदि वह तथागत गर्भ नहीं है तो हे भगवन्! दुःख में भी निर्वाण की इच्छा, प्रार्थना और संकल्प भी नहीं होंगे। यहाँ संक्षेप में बुद्ध धातु विशुद्धि गोत्र में स्थित होने पर मिथ्यात्व नियत सत्त्वों का दो प्रकार के कार्य होंगे। संसार में दुःख दर्शन के कारण निर्वेद-वैराग्य का उत्पादन होगा। निर्वाण में सुख के दर्शन से पराक्रम का उद्भव होगा। इच्छा, प्रार्थना और प्रणिधि होंगे निर्वाण के प्रति। इच्छा का अर्थ है अभिलक्षित वस्तु के प्राप्ति के

प्रति उन्मुख होना। और उस वस्तु के प्राप्ति के मार्ग का अन्वेषण। प्रणिधि का अर्थ है प्राप्तव्य पदार्थ के प्रति चेतना-चित्त का उसके प्रति व्यापार-चिन्तन ही है॥ ४१ ॥

भवनिर्वाणतद्दुःखसुखदोषगुणेक्षणम्।
गोत्रे सति भवत्येतदगोत्राणां न विद्यते॥ ४१ ॥

संसार से मुक्त होने की कामना का बीज संसार के दुःखों का अनुभव और दुःखमयता का बोध। यह तभी होगा जब महायान गोत्र में साधक स्थिर है किन्तु अगोत्रों के लिए यह संभव नहीं है।

यदपि तत् संसारे च दुःखदोषदर्शनं भवति निर्वाणे च सुखानुशंसदर्शनमेतदपि शुक्लांशस्य पुद्गलस्य गोत्रे सति भवति नाहेतुकं नाप्रत्ययमिति। यदि हि तद्गोत्रमन्तरेण स्यादहेतुकमप्रत्ययं पापसमुच्छेदयोगेन तदिच्छान्तिकानामप्यपरिनिर्वाणगोत्राणां स्यात्। न च भवति तावद्यावदागन्तुकमलविशुद्धिगोत्रं त्रयाणामन्यतमधर्माधिमुक्तिं न समुदानयति सत्पुरुषसंसर्गादिचतुःशुक्लसमवधानयोगेन।

जो कुछ इस संसार में दुःख दोष दर्शन होते हैं और निर्वाण में सुख की अभिलाषा होती यह सब निष्पाप पुद्गलों के लिए है जो उस गोत्र में अवस्थित है विना पारमिताओं के साधना से यह संभव नहीं है। यदि विना पुण्यों के, पारमिताओं के भी यह होता तो महायाग गोत्र में स्थित होने की आवश्यकता ही नहीं होती सभी के लिए यह हो जाता किन्तु ऐसा नहीं है। आगन्तुक मलों से आप्लावित सत्त्वों के लिए जो परिशुद्ध नहीं है उनके लिए सत्पुरुषों के संसर्ग जन्य चार प्रकार के विशुद्धि के बाद ही यह स्थिति संभव है।

यत्र ह्याह। तत्र पश्चादन्तशो मिथ्यात्वनियतसंतानानामपि सत्त्वानां कायेषु तथागतसूर्यमण्डलरश्मयो निपतन्ति अनागतहेतुसंजननतया संवर्धयन्ति च कुशलैर्धर्मैरिति। यत्पुनरिदमुक्तमिच्छन्तिकोऽत्यन्त-मपरिनिर्वाणधर्मेति तन् महायानधर्मप्रतिघ इच्छन्तिकत्वे हेतुरिति महायानधर्मप्रतिघनिवर्तनार्थमुक्तं कालान्तराभिप्रायेण। न खलु कश्चित्प्रकृतिविशुद्धगोत्रसंभवादयन्ताविशुद्धिधर्मा भवितुमर्हति।

यस्मादविशेषेण पुनर्भगवता सर्वसत्त्वेषु विशुद्धिभव्यतां संधायोक्तम्।

जहाँ यह कहा है। बाद में, अग्रिम में भी मिथ्यात्वनियत संतानों के लिए भी तथागत-सूर्य के किरण उपलब्ध होते हैं - महापुरुष संसर्ग जन्य परिशुद्धि प्राप्ति के बाद और भविष्य में होने वाले कुशलकर्मों के परिणाम का कुशल कर्मों के फल से। और जो यह कहा है इच्छन्तिक के लिए अत्यन्त अपरिनिर्वाण धर्मी होता है यह सब महायान धर्म के विरोधी होने पर भी महायान धर्म के विरोध के निवर्तन (निषेध = उससे दूर होने) के अभिप्राय से कालान्तर के लिए ही कहा है। कोई भी व्यक्ति प्रकृति विशुद्ध गोत्र में हो और अविशुद्ध धर्म में रहे यह कभी भी नहीं हो सकता। इसीलिए सामान्यरूप से सभी प्राणियों में विशुद्धि की भावी कामना मन में रखकर ही भगवान् ने यह कहा है।

अनादिभूतोऽपि हि चावसानिकः स्वभावशुद्धो ध्रुवधर्मसंहितः।
अनादिकोशैर्बहिर्वृतो न दृश्यते सुवर्णबिम्बं परिच्छादितं यथा॥

अनादि काल से भले ही मलों से आवृत क्यों न हो स्वभाव-प्रकृति से ही निश्चत रूप से धर्म को जान लेता है। जैसा कि अनादिकाल से अनेक मलों से ढके हुए और न दिखने पर भी कालान्तर में शुद्ध होकर बाहर दिखता ही है जैसा कि सुवर्ण।

तत्र योगार्थमारभ्य श्लोकः।

योगार्थ के आरम्भ के लिए यह श्लोक है।

महोदधिरिवामेयगुणरत्नाक्षयाकरः।
प्रदीपवदनिर्भागगुणयुक्तस्वभावतः॥ ४२ ॥

महोदधि (समुद्र) के तरह ही अनन्त गुण रत्नों का अक्षय खानि है तथा दीप के तरह ही अन्धकार रहित गुणों के स्वभाव से सम्पन्न भी है यह योग॥ ४२ ॥

तत्र पूर्वेण श्लोकार्धेन किं दर्शितम्।

इस श्लोकार्ध से क्या कहा गया है।

धर्मकायजिनज्ञानकरुणाधातुसंग्रहात्।
पात्ररत्नाम्बुभिः साम्यमुदधेरस्य दर्शितम्॥ ४३ ॥

धर्मकाय और जिनकायों में करुणा धातु के संग्रह होने से पात्र, रत्न और जलों के कारण समुद्र के साथ समानता यहाँ दिखाया गया है॥ ४३ ॥

त्रयाणां स्थानानां यथासंख्यमेव त्रिविधेन महासमुद्रसाधर्म्येण तथागतधातोर्हेतुसमन्वागममधिकृत्य योगार्थो वेदितव्यः। कतमानि त्रीणि स्थानानि। तद्यथा धर्मकायविशुद्धिहेतुः। बुद्धज्ञानसमुदागमहेतुः। तथागतमहाकरुणावृत्तिहेतुरिति। तत्र धर्मकायविशुद्धिहेतुर्महायानाधिमुक्तिभावना द्रष्टव्या। बुद्धज्ञानसमुदागमहेतुः प्रज्ञासमाधिमुखभावना। तथागतमहाकरुणाप्रवृत्तिहेतुर्बोधिसत्त्वकरुणाभावनेति। तत्र महायानाधिमुक्तिभावनाया भाजनसाधर्म्यं तस्यामपरिमेयाक्षयप्रज्ञासमाधिरत्नकरुणावारिसमवसरणात्। प्रज्ञासमाधिमुखभावनाया रत्नसाधर्म्यं तस्या निर्विकल्पत्वादचिन्त्यप्रभावगुणयोगाच्च। बोधिसत्त्वकरुणाभावनाया वारिसाधर्म्यं तस्याः सर्वजगति परमस्निग्धभावैकरसलक्षणप्रयोगादिति। एषां त्रयाणां धर्माणामनेन त्रिविधेन हेतुना तत्संबद्धः समन्वागमो योग इत्युच्यते।

तीन स्थानों का क्रमशः ही तीन प्रकार के महासमुद्र - साधर्म्य से तथागत धातु का हेतु समन्वय को लेकर योगार्थ जानना चाहिए। वे तीन स्थान कौन हैं? जैसा कि धर्मकाय विशुद्धि हेतु। बुद्ध ज्ञान समुदागम हेतु। तथागत महाकरुणावृत्ति हेतु। धर्मकाय विशुद्धि हेतु भूत महायानाधिमुक्ति भावना को जानना चाहिए। बुद्ध ज्ञान समुदागम हेतु समाधि सुख भावना है। तथागत महाकरुणा प्रवृत्ति हेतु बोधिसत्त्व करुणा भावना ही है। महायानाधिमुक्ति भावना के भाजन (पात्र) के साथ समानता का कारण है उसमें अपरिमेय, अक्षय प्रज्ञा समाधि रत्न करुणा जल के रस से भिगा हुआ होना। प्रज्ञा समाधि की भावना की समानता के लिए निर्विकल्प, अचिन्त्य प्रभाव गुणों के योग होना है। बोधिसत्त्व करुणा भाव की जल से साम्य होने का तात्पर्य है - उसका समग्र जगत् में परमस्निग्ध भाव रूप एकरस लक्षण प्रयोग के कारण ही है। इन तीन धर्मों का इन तीन हेतु के साथ समानता ही यह योग है।

तत्रापरेण श्लोकार्धेन किं दर्शयति।

यहाँ दूसरे श्लोक के आधे भाग से क्या दिखाया गया है।

अभिज्ञाज्ञानवैमल्यतथताव्यतिरेकतः।
दीपालोकोष्णवर्णस्य साधर्म्यं विमलाश्रये॥ ४४ ॥

अभिज्ञा, ज्ञान की विमलता और तथता के व्यतिरेक से दीप का आलोक उसकी उष्णता, तेजस्वी वर्ण का साधर्म्य उस परिशुद्धता के साथ है॥ ४४ ॥

त्रयाणां स्थानानां यथासंख्यमेव त्रिविधेन दीपसाधर्म्येण तथागतधातोः फलसमन्वागममधिकृत्य योगार्थो वेदितव्यः। कतमानि त्रीणि स्थानानि। तद्यथा। अभिज्ञा आस्त्रवक्षयज्ञानमास्त्रवक्षयश्चेति। तत्र पञ्चानामभिज्ञानां ज्वालासाधर्म्यं तासामर्थानुभवज्ञानविपक्षान्धकारविधमनप्रत्युपस्थानलक्षणत्वात्। आस्त्रवक्षयज्ञानस्योष्णसाधर्म्यं तस्य निरवशेषकर्मक्लेशेन्धनदहनप्रत्युपस्थान-लक्षणत्वात्। आश्रयपरिवृत्तेरास्त्रवक्षयस्य वर्णसाधर्म्यं तस्यात्यन्तविमलविशुद्ध-प्रभास्वरलक्षणत्वात्। तत्र विमलः क्लेशावरणप्रहाणात्। विशुद्धो ज्ञेयावरण-प्रहाणात्। प्रभास्वरस्तदुभयागन्तुकताप्रकृतितः। इत्येषां समासतः सप्तानामभिज्ञाज्ञान-प्रहाणसंगृहीतानामशैक्षसान्तानिकानां धर्माणामनास्त्रवधातावन्योन्यमविनिर्भागत्वमपृथग्भावो धर्मधातुसमन्वागमो योग इत्युच्यते। एष च योगार्थमारभ्य प्रदीप दृष्टान्तो विस्तरेण यथासूत्रमनुगन्तव्यः। तद्यथा शारिपुत्र प्रदीपः। अविनिर्भागधर्मा। अविनिर्मुक्तगुणः। यदुत आलोकोष्ण-वर्णताभिः। मणिर्वालोकवर्णसंस्थानैः। एवमेव शारिपुत्र तथागतनिर्दिष्टो धर्मकायोऽविनिर्भाग-धर्माविनिर्मुक्तज्ञानगुणो यदुत गङ्गानदीबालुकाव्यतिवृत्तैस्तथागतधर्मैरिति।

तीन स्थानों का क्रमशः तीन प्रकार के दीप साधर्म्य से तथागत-धातु का फल समन्वागत को लेकर योगार्थ है। ये तीन स्थान कौन हैं। जैसा कि अभिज्ञा, आस्त्रवक्षय ज्ञान तथा आस्त्रवक्षय पाँच अभिज्ञाओं का ज्वाला के साथ साधर्म्य, क्योंकि उनका अर्थानुभव ज्ञान के विपक्षभूत अन्धकार को नाश करने के कारण प्रभास्वरता का योग है। आस्त्रव क्षय ज्ञान का उष्णता के साथ साधर्म्य है क्योंकि उसका समग्र क्लेशों का इन्धन के सहयोग से अग्नि जलने से इन्धन आदि पदार्थ भस्म होते हैं यही साधर्म्य योग है। आस्त्रव क्षय के लिए

वर्ण (दीप का) का साम्य दिखाया गया है क्योंकि वह अत्यन्त विमल-विशुद्ध-प्रभास्वर वर्ण वाला होता है। विलमल है क्लेशवरणों के प्रहाण से। विशुद्ध है ज्ञेयावरणों के प्रहाण से। प्रभास्वर है दो आगन्तुक प्रकृति से ही। यह इनका संक्षेप में अभिज्ञा ज्ञान प्रहाण के लिए संगृहीत अशैक्ष सन्तानों के धर्मों का अनास्त्रवधातु में अन्योन्य अविनिर्भागत्व का पृथक् भाव रूप धर्म धातु समन्वागम योग कहा गया है। इस योगार्थ को लेकर प्रदीप का दृष्टान्त विस्तार पूर्वक यथासूत्र ही जानना चाहिए। जैसा कि हे शारिपुत्र! प्रदीप अनिर्भाग धर्म वाला होता है। अविनिर्मुक्त गुण सम्पन्न भी। जैसा कि आलोक जो उष्णता के साथ रहता है। अथवा मणि ही है आलोक वर्ण संस्थानीय होता है। इसी प्रकार हे शारिपुत्र तथागत द्वारा निर्दिष्ट धर्मकाय अविनिर्भाग धर्मयुक्त, अविनिर्मुक्त ज्ञान गुण सम्पन्न, जैसा कि गङ्गा नदी के बालु का स्थानीय अनन्त तथागत धर्मों से भरा हुआ।

तत्र वृत्त्यर्थमारभ्य श्लोकः।

यहाँ वृत्त्यर्थ को लेकर श्लोक है।

पृथग्जनार्यसंबुद्धतथताव्यतिरेकतः।
सत्त्वेषु जिनगर्भोऽयं देशितस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४५ ॥

पृथग्जन, आर्यजन, संबुद्ध-बोधिसत्त्व और बुद्ध के तथता को लेकर ही प्राणियों में इस बुद्ध गर्भ का तत्त्वदर्शियों ने उपदेश किया है॥ ४५ ॥

अनेन किं दर्शितम्।

इससे क्या दिखाया गया है।

पृथग्जना विपर्यस्ता दृष्टसत्या विपर्ययात्।
यथावदविपर्यस्ता निष्प्रपञ्चास्तथागताः॥ ४६ ॥

सामान्य जन उल्टा देखते है संवृति सत्य में स्थित होकर अनेक विपर्यय लक्षणात्मक विषयों के कारण तथा तथागत-गण यथार्थ को देखते हैं प्रपञ्च या संवृति सत्य के न होने से॥ ४६ ॥

यदिदं तथागतधातोः सर्वधर्मतथताविशुद्धिसामान्यलक्षणमुपदिष्टं प्रज्ञापारमितादिषु निर्विकल्पज्ञानमुखाववादमारभ्य बोधिसत्त्वानामस्मिन् समासतस्त्रयाणां पुद्गलानां पृथग्जनस्यातत्त्वदर्शिन आर्यस्य तत्त्वदर्शिनो

विशुद्धिनिष्ठागतस्य तथागतस्य त्रिधा भिन्ना प्रवृत्तिर्वेदितव्या। यदुत विपर्यस्ता-विपर्यस्ता सम्यगविपर्यस्ता निष्प्रपञ्चा च यथाक्रमम्। तत्र विपर्यस्ता संज्ञाचित्तदृष्टिविपर्यासाद् बालानाम्। अविपर्यस्ता विपर्ययेण तत्प्रहाणादार्याणाम्। सम्यगविपर्यस्ता निष्प्रपञ्चा च सवासनक्लेशज्ञेयावरणसमुद्घातात् सम्यक्-संबुद्धानाम्।

यह जो तथागत धातु का सर्वधर्मतथता विशुद्धि सामान्य-लक्षण का उपदेश किया गया है - प्रज्ञापारमिता आदि में वह निर्विकल्प ज्ञान से लेकर बोधिसत्त्वों का संक्षेप में तीन पुद्‌गलों का पृथग्जन जो अतत्वदर्शी आर्य हैं - तत्त्व दर्शी, विशुद्ध, निष्ठासम्पन्न तथागत के तीन भिन्न प्रवृत्ति को दिखाने के लिए ही है। जैसा कि विपर्यस्त, अविपर्यस्त, सम्यक् अविपर्यस्त तथा निष्प्रपञ्च यही क्रम है। विपर्यस्त संज्ञा चित्तवृत्ति के विपर्यास होने वालों के लिए है। अविपर्यस्त विपर्यय के नाश से आर्यों के लिए है। सम्यक् अविपर्यस्त और निष्प्रपञ्च वासना-क्लेश-ज्ञेयावरणों के नाश से सम्यक् सम्बुद्धों के लिए है।

अतः परमेतमेव वृत्त्यर्थमारभ्य तदन्ये चत्वारोऽर्थाः प्रभेदनिर्देशादेव वेदितव्याः तत्रैषां त्रयाणां पुद्‌गलानामवस्थाप्रभेदार्थमारभ्य श्लोकः।

इसके बाद इसी अर्थ को लेकर अन्य चार विषय भी प्रभेद के निर्देश से जानना चाहिए। इन तीन पुद्‌गलों के अवस्था भेद को लेकर यह निम्न श्लोक है।

अशुद्धोऽशुद्धशुद्धोऽथ सुविशुद्धो यथाक्रमम्।
सत्त्वधातुरिति प्रोक्तो बोधिसत्त्वस्तथागतः॥ ४७ ॥

अशुद्ध, अशुद्धशुद्ध तथा सुविशुद्ध क्रमशः सत्त्व धातु को जाना चाहिए जो बोधिसत्त्व तथागत रूप में हैं॥ ४७ ॥

अनेन किं दर्शितम्।

इससे क्या दिखाया गया है।

स्वभावादिभिरित्येभिः षड्भिरर्थैः समासतः।
धातुस्तिसृष्ववस्थासु विदितो नामभिस्त्रिभिः॥ ४८ ॥

स्वभाव आदि ६ अर्थों के द्वारा संक्षेप में तीन धातुओं की अवस्था में तीन नामों से जाना गया है॥ ४८ ॥

इति ये केचिदनास्त्रवधातुनिर्देशा नानाधर्मपर्यायमुखेषु भगवता विस्तरेण निर्दिष्टाः सर्वे एभिरेव समासतः षड्भिः स्वभावहेतुफलकर्मयोगवृत्त्यर्थैः संगृहीतास्तिसृष्ववस्थासु यथाक्रमं त्रिनामनिर्देशतो निर्दिष्टा वेदितव्याः। यदुताशुद्धावस्थायां सत्त्वधातुरिति। अशुद्धशुद्धावस्थायां बोधिसत्त्व इति। सुविशुद्धावस्थायां तथागत इति। यथोक्तं भगवता। अयमेव शारिपुत्र धर्मकायोऽपर्यन्तक्लेशकोशकोटिगूढः। संसारस्त्रोतसा उह्यमानोऽनवराग्रसंसारगतिच्युत्युपपत्तिषु संचरन् सत्त्वधात्तुरित्युच्यते। स एव शारिपुत्र धर्मकायः संसारस्त्रोतोदुःखनिर्विण्णो विरक्तः सर्वकामविषयेभ्यो दशपारमितान्तर्गतैश्चतुरशीत्या धर्मस्कन्धसहस्त्रैर्बोधाय चर्या चरन् बोधिसत्त्व इत्युच्यते। स एव पुनः शारिपुत्र धर्मकायः सर्वक्लेशकोशपरिमुक्तः सर्वदुःखातिक्रान्तः सर्वोपक्लेशमलापगतः शुद्धो विशुद्धः परमपरिशुद्धधर्मतायां स्थितः सर्वसत्त्वालोकनीयां भूमिमारूढः सर्वस्यां ज्ञेयभूमावद्वितीयं पौरुषं स्थाम प्राप्तोऽनावरणधर्माप्रतिहतसर्वधर्मैश्वर्यबलतामधिगतस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इत्युच्यते।

जो कुछ अनास्त्रव धातु के निर्देश से नाना धर्म पर्यायों में भगवान् ने विस्तारपूर्वक निर्देश किए हुए सभी सत्त्व संक्षेप में ६ स्वभाव, हेतु, फल, कर्म, योगों एवं वृत्तियों से संगृहीत हुए हैं तीन अवस्थाओं में तीन नामों के निर्देश पूर्वक यही जानना चाहिए। अशुद्ध अवस्था में सत्त्वधातु है। अशुद्ध शुद्ध अवस्था में बोधिसत्त्व। सुविशुद्ध अवस्था में बोधिसत्त्व। जैसा कि भगवान् ने कहा है। हे शारिपुत्र! यही धर्मकाय है जो अपर्यन्त क्लेश कोशों से भरा हुआ है। संसार के स्त्रोत से ढोया हुआ लम्बे समय तक संसार के गति, च्युति उपपत्तियों में घुमता हुआ सत्त्व धातु कहलाता है। यही धर्मकाय है जो संसार के दुःखों से विरक्त होकर सभी कामात्मक विषयों से दूर होकर दशपारमितान्तर्गत ८४ धर्मस्कन्ध सहस्त्रों से ज्ञान के लिए चर्या करते हुए बोधिसत्त्व कहलाता है। यही फिर, धर्मकाय क्लेश कोशों से मुक्त होकर, सर्वदुःखों को दूर कर, सभी क्लेश जन्म मलों को हटाकर, शुद्ध, विशुद्ध, परमपरिशुद्ध धर्मता में स्थित होकर, सभी के द्वारा दिखने वाले भूमि में

अवस्थित होकर, अद्वितीय पौरुष प्राप्तकर अनावरण धर्म के अप्रतिह सर्वधर्म, ऐश्वर्य, बल को प्राप्त कर तथागत, अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध कहलाता है।

तास्वेव तिसृष्ववस्थासु तथागतधातोः सर्वत्रगार्थमारभ्य श्लोकः।

उन्हीं तीन अवस्थाओं में तथागत धातु के व्यापकता को लेकर ही यह श्लोक है।

सर्वत्रानुगतं यद्वन्निर्विकल्पात्मकं नभः।
चित्तप्रकृतिवैमल्यधातुः सर्वत्रगस्तथा॥ ४९ ॥

सर्वव्यापक, निर्विकल्परूप है जैसा की आकाश। चित्त प्रकृति से ही निर्मल है इसी से वह धातु है और व्यापक भी है॥ ४९ ॥

अनेन किं दर्शितम्।

इससे क्या दिखाया गया है।

तद्दोषगुणनिष्ठासु व्यापि सामान्यलक्षणम्।
हीनमध्यविशिष्टेषु व्योम रूपगतेष्विव॥ ५० ॥

उनके दोष और गुणों के प्रति निष्ठा जो सर्वत्र सामान्य रूप से उपलब्ध है। हीन, मध्य और विशिष्ट सत्त्वों या गुणों में जैसा कि आकाश होता है। बड़े स्थान में बड़ा, छोटे में छोटा मध्यम में मध्य है उसी प्रकार समझना चाहिए॥ ५० ॥

यासौ पृथग्जनार्यसंबुद्धानामविकल्पचित्तप्रकृतिः सा तिसृष्ववस्थासु यथाक्रमं दोषेष्वपि गुणेष्वपि गुणविशुद्धिनिष्ठायामपि सामान्यलक्षणत्वादाकाशमिव मृद्रजतसुवर्णभाजनेष्वनुगतानुप्रविष्टा समा निर्विशिष्टा प्राप्ता सर्वकालम्। अत एवावस्थानिर्देशानन्तरमाह। तस्माच्छारिपुत्र नान्यः सत्त्वधातुर्नान्यो धर्मकायः। सत्त्वधातुरेव धर्मकायः। धर्मकाय एव सत्त्वधातुः। अद्वयमेतदर्थेन। व्यञ्जनमात्रभेद इति।

यह जो पृथग्जनों के लिए संबुद्धों का अविकल्प चित्त वृत्ति है तीन अवस्थाओं में दोष और गुणों में गुण विशुद्ध निष्ठा में भी, सामान्य लक्षण होने से आकाश के तरह मिट्टी, चाँदी और सुवर्ण के पात्रों में प्रविष्ट हुए पदार्थों के तरह सभी काल में निर्विशिष्ट होते हैं। अतएव अवस्था भेद को बताया गया है। इसीलिए हे शारिपुत्र! और अन्य सत्त्वधातु नहीं है, न ही अन्य धर्मकाय

ही है। सत्त्व धातु ही धर्मकाय है। धर्मकाय ही सत्त्वधातु है। अर्थ से वे दोनों अद्वय हैं। व्यञ्जना मात्र से भेद है।

एतास्वेव तिसृष्ववस्थासु तथागतधातोः सर्वत्रगस्यापि तत्संक्लेशव्यवदानाभ्यामविकारार्थमारभ्य चतुर्दश श्लोकाः। अयं च तेषां पिण्डार्थो वेदितव्यः।

इन्हीं तीन अवस्थाओं में तथागत धातु के जो व्यापक है उसका संक्लेश और व्यवदान से अविकार के लिए ही वे १४ श्लोक हैं। यह उनका पिण्डार्थ जानना चाहिए।

दोषागन्तुकतायोगाद् गुणप्रकृतियोगतः।
यथा पूर्वं तथा पश्चादविकारित्वधर्मता॥ ५१ ॥

आगन्तुक मलों से ही दोष होते हैं जो गुण प्रकृति के योग से ही होते हैं। जैसा पहले था वैसा ही बाद में भी होगा – वह अविकारित्व धर्म ही है॥ ५१ ॥

द्वादशभिरेकेन च श्लोकेन यथाक्रममशुद्धावस्थायामशुद्धशुद्धावस्थायां च क्लेशोपक्लेश-दोषयोरागन्तुकयोगांगातुर्दशमेन श्लोकेन सुविशुद्धावस्थायां गङ्गानदीवालुकाव्यतिवृत्तैरविनिर्भागैरमुक्तज्ञैरचिन्त्यैर्बुद्धगुणैः प्रकृति-योगादाकाशधातोरिव पौर्वापर्येण तथागतधातोरत्यन्ताविकारधर्मता परिदीपिता। तत्राशुद्धावस्थायामविकारार्थ मारभ्य कतमे द्वादश श्लोकाः।

१२ और एक श्लोकों से क्रमशः अशुद्ध अवस्था में, अशुद्ध-शुद्ध अवस्था में भी क्लेश और उपक्लेशों के दोषों से, तथा आगन्तुक दोषों से भी, १४वें श्लोक से सुविशुद्ध अवस्था में गङ्गानदी के बालुका के समान अविनिर्माण मुक्ति के अज्ञाताओं के द्वारा अज्ञात अचिन्त्य बुद्ध गुणों के प्रकृति योग से आकाश धातु के समान पौवोपर्य से तथागत धातु का आत्यन्तिक अविकारित धर्मता को बताया गया है। अशुद्ध अवस्था में अविकार के लिए निम्न १२ श्लोक लिखे गए हैं –

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितः सत्त्वे तथायं नोपलिप्यते॥ ५२ ॥

सूक्ष्म एवं व्यापक होते हुए भी आकाश कहीं भी लिप्त नहीं होता उसकी प्रकार यह बुद्ध गुण (धातु) भी कहीं भी लिप्त नहीं होता॥ ५२ ॥

यथा सर्वत्र लोकानामाकाश उदयव्ययः।
तथैवासंस्कृते धाताविन्द्रियाणां व्ययोदयः॥ ५३ ॥

जैसा कि सभी संसार के लिए आकाश का उदय और व्यय होता है उसी प्रकार असंस्कृत धातु में इन्द्रियों का व्यय और उदय देखा गया है॥५३॥

यथा नाग्निभिराकाशं दग्धपूर्वं कदाचन।
तथा न प्रदहत्येनं मृत्युव्याधिजराग्नयः॥ ५४ ॥

जैसा कि अग्नि से कभी भी आकाश जलता नहीं हैं उसी प्रकार इस बोधि का जन्म, जरा और मृत्यु नहीं होते॥ ५४ ॥

पृथव्यम्बौ जलं वायौ वायुर्व्योम्नि प्रतिष्ठितः।
अप्रतिष्ठितमाकाशं वाय्वम्बुक्षितिधातुषु॥ ५५ ॥

पृथिवी जल में, जल वायु में, वायु आकाश में प्रतिष्ठित होते हैं किन्तु आकाश वायु, जल और पृथिवी में प्रतिष्ठित नहीं है॥ ५५ ॥

स्कन्धधात्विन्द्रियं तद्वत्कर्मक्लेशप्रतिष्ठितम्।
कर्मक्लेशाः सदायोनिमनस्कारप्रतिष्ठिताः॥ ५६ ॥

स्कन्ध, धातु और इन्द्रियाँ कर्मक्लेश में प्रतिष्ठित हैं और कर्मक्लेश हमेशा योनिसमनस्कार में प्रतिष्ठित है॥ ५६ ॥

अयोनिशोमनस्कारश्चित्तशुद्धिप्रतिष्ठितः।
सर्वधर्मेषु चित्तस्य प्रकृतिस्त्वप्रतिष्ठिता॥ ५७ ॥

अयोनिशमनस्कार चित्तशुद्धि में प्रतिष्ठित है। सभी धर्मों में चित्त की निर्मलता प्रतिष्ठित है॥ ५७ ॥

पृथिवीधातुवज्ज्ञेयाः स्कन्धायतनधातवः।
अब्धातुसदृशा ज्ञेयाः कर्मक्लेशाः शरीरिणाम्॥ ५८ ॥

स्कन्ध, धातु और आयतनों को पृथिवी धातु के समान जानना चाहिए। शरीर धारियों के कर्मक्लेश जल के समान होते हैं॥ ५८ ॥

अयोनिशोमनस्कारो विज्ञेयो वायुधातुवत्।
तदमूलाप्रतिष्ठाना प्रकृतिर्व्योमधातुवत्॥ ५९ ॥

अयोनिशमनस्कार को वायु धातु के तरह ही जानना चाहिए। अन्य प्रतिष्ठान उससे अप्रतिष्ठित होते हैं जैसे प्रकृति रूप से ही व्योम धातु के तरह॥ ५९ ॥

चित्तप्रकृतिमालीनायोनिशो मनसः कृतिः।
अयोनिशोमनस्कारप्रभवे क्लेशकर्मणी॥ ६० ॥

प्रकृति में विलीन चित्त का अयोनिश मनस्कार मन की ही कृति है। क्लेश और कर्म अयोनिश मनस्कार से होते हैं॥ ६० ॥

कर्मक्लेशाम्बुसंभूताः स्कन्धायतनधातवः।
उत्पद्यन्ते निरुध्यन्ते तत्संवर्तविवर्तवत्॥ ६१ ॥

कर्म क्लेश रूपी जल से उद्‌भूत स्कन्ध, धातु और अयतन हैं। जो उत्पन्न होते हैं, निरुद्ध होते हैं जैसे की संवर्त और विवर्त के (सुवर्ण) तरह॥ ६१ ॥

न हेतुः प्रत्ययो नापि न सामग्री न चोदयः।
न व्ययो न स्थितिश्चित्तप्रकृतेर्व्योमधातुवत्॥ ६२ ॥

न हेतु है, न सामग्री, न उत्पत्ति और न व्यय ही है – चित्त की, वह तो प्रकृति से ही सदा एक रस आकाश धातु के तरह ही है॥ ६२ ॥

चित्तस्य यासौ प्रकृतिः प्रभास्वरा–
न जातु सा द्यौरिव याति विक्रियाम्।
आगन्तुकै रागमलादिभिस्त्वसा–
वुपैति संक्लेशमभूतकल्पजैः॥६३॥

चित्त की जो प्रकृति प्रभास्वर स्थिति है वह कभी भी विकृत नहीं होती और आकाश के तरह ही रहती है। आगन्तुक राग-मल आदि से कभी भी व्यापृत न होने से संक्लेश अभूत कलपात्मक तत्त्वों से सदा दूर रहता है॥ ६३ ॥

कथमनेनाकाशदृष्टान्तेन तथागतधातोरशुद्धा–
वस्थायामविकारधर्मता परिदीपिता। तदुच्यते।

कैसे इस आकाश के दृष्टान्त से तथागत धातु का अशुद्ध अवस्था में भी अविकार धर्मत्व का परिदीपन किया गया है। यह ऐसे है।

नाभिनिर्वर्तयत्येनं कर्मक्लेशाम्बुसंचयः।
न निर्दहत्युदीर्णोऽपि मृत्युव्याधिजरानलः॥ ६४ ॥

इसे कर्मक्लेशों का संचय कभी भी छू तक नहीं सकता और मृत्यु, व्याधि, जरा रूप अनल (अग्नि) इसे कभी जला नहीं सकता॥ ६४ ॥

यद्वदयोनिशो मनस्कारवातमण्डलसंभूतं कर्मक्लेशोदकराशिं प्रतीत्य स्कन्धधात्वायतनलोकनिर्वृत्त्या चित्तप्रकृतिव्योमधातोर्विवर्तो न भवति। तद्वदयोनिशोमनस्कारकर्मक्लेशवाय्वप्स्कन्धप्रतिष्ठितस्य स्कन्धधात्वायतनलोकस्यास्तंगमाय मृत्युव्याधिजराग्निस्कन्धसमुदयादपि तदसंवर्तो वेदितव्यः। इत्येवमशुद्धावस्थायां भाजनलोकवदशेषक्लेश-कर्मजन्मसंक्लेशसमुदयास्तंगमेऽप्याकाशवदसंस्कृतस्य तथागतधा-तोरनुत्पादानिरोधादत्यन्तमविकारधर्मता परिदीपिता। एष च प्रकृतिविशुद्धिमुखं धर्मालोकमुखमारभ्याकाशदृष्टान्तो विस्तरेण यथासूत्र-मनगन्तव्यः। कविर्मार्षा क्लेशाः। आलोको विशुद्धिः। दुर्बलाः क्लेशाः। बलवती विपश्यना। आगन्तुकाः क्लेशाः। मूलविशुद्धा प्रकृतिः। परिकल्पाः क्लेशा। अपरिकल्पा प्रकृतिः। तद्यथा मार्षा इयं महापृथिव्यप्सु प्रतिष्ठिता। आपो वायौ प्रतिष्ठिताः। वायुराकाशे प्रतिष्ठितः। अप्रतिष्ठितं चाकाशम्। एवमेषां चतुर्णां धातूनां पृथिवीधातोरब्धातोर्वायुधातो-राकाशधातुरेव बली यो दृढोऽचलोऽनुपचयो ऽनपचयोऽनुत्पन्नोऽनिरुद्धः स्थितः स्वरसयोगेन। तत्र य एते त्रयो धातवस्त उत्पादभङ्गयुक्ता अनवस्थिता अचिरस्थायिनः। दृश्यत एषां विकारो न पुनराकाशधातोः कश्चिद्विकारः। एवमेव स्कन्धधात्वायतनानि कर्मक्लेशप्रतिष्ठितानि। कर्मक्लेशा अयोनिशोमनस्कारप्रतिष्ठिताः। अयोनिशोमनस्कारः प्रकृतिपरिशुद्धि-प्रतिष्ठितः। तत उच्यते प्रकृतिप्रभास्वरं चित्तमागन्तुकैरुपक्लेशैरुपक्लिश्यत इति। तत्र पश्चाद्योऽयोनिशोमनस्कारो ये च कर्मक्लेशा यानि च स्कन्धधात्वायतनानि सर्व एते धर्मा हेतुप्रत्ययसंगृहीता उत्पद्यन्ते हेतुप्रत्ययविसामग्र्या निरुध्यन्ते। या पुनः सा प्रकृतिस्तस्या न हेतुर्न प्रत्ययो

न सामग्री नोत्पादो न निरोधः। तत्र यथाकाशधातुस्तथा प्रकृतिः। यथा वायुधातुस्तथायोनिशोमनसिकारः। यथाब्धातुस्तथा कर्मक्लेशाः। यथा पृथवीधातुस्तथा स्कन्धधात्वायतनानि। तत उच्यन्ते सर्वधर्मा असारमूला अप्रतिष्ठानमूलाः शुद्धमूला अमूलमूला इति।

जैसा कि अयोनिशमनस्कार वातमण्डल से समुद्भुत कर्मक्लेशरूप उदक (जल) राशि को आधार (कारण) बनाकर स्कन्ध-धातु-आयतन लोकनिवृत्ति से चित्त प्रकृति व्योम धातु का विवर्त (सृष्टि) नहीं होता। उसी प्रकार स्कन्ध-धातु-आयतन समूह के निरोध के लिए मृत्यु-व्याधि-जरा रूपी अग्नि स्कन्ध के द्वारा भी उसका असंवर्त नहीं होता। इस प्रकार अशुद्ध अवस्था में भाजन लोक के तरह अशेष क्लेश-कर्म जन्य संक्लेश-समुदय जो अस्तंगति में है, उसका भी आकाश के तरह असंस्कृत तथागत धातु का अनुत्पाद और अनिरोध के कारण अत्यन्त अविकार धर्मत्व परिदीपित किया गया है। यह प्रकृति विशुद्धि और धर्मालोक से लेकर आकाश पर्यन्त के दृष्टान्त का विस्तारपूर्वक यथासूत्र ही समझना चाहिए। क्लेश अत्यन्त पुराने और आर्ष हैं। आलोक विशुद्धि है। क्लेश दुर्बल हैं। विपश्यना बलवती है। क्लेश आगन्तुक हैं। मलों से शुद्ध प्रकृति है। क्लेश परिकल्पित हैं। प्रकृति अपरिकल्पित है। मार्षा महा-पृथिवी और जल में प्रतिष्ठित हैं। जल वायु में, वायु आकाश में प्रतिष्ठित हैं तथा आकाश अप्रतिष्ठित ही है। इस प्रकार इन चार धातुओं के मध्य में आकाश धातु ही बलवान् है। और यह दृढ है, अचल है, अनपचय, अनुत्पन्न तथा स्वर याग से अनिरुद्ध स्थित है। यहाँ जो ये तीन धातु हैं उत्पाद भङ्ग युक्त हैं, अनवस्थित और क्षणिक हैं। इन तीनों के विकार दिखते हैं किन्तु आकाश धातु का कोई भी विकार नहीं दिखता। इसी प्रकार स्कन्ध, धातु आयतन भी कर्म-क्लेश में प्रतिष्ठित हैं। कर्म-क्लेश अयोनिशमनस्कार में प्रतिष्ठित हैं। अयोनिशमनस्कार प्रकृति परिशुद्धि में प्रतिष्ठित है। उसके बाद प्रकृति प्रभास्वर चित्त आगन्तुक उपक्लेशों से उपक्लिष्ट होता है। इसके बाद योनिशमनस्कार, कर्म क्लेश, स्कन्धधातु आयतन आदि सभी धर्म हेतु प्रत्यय में संगृहीत होकर उत्पन्न तथा निरुद्ध होते हैं। उसकी जो प्रकृति है उसका न हेतु प्रत्यय है न सामगी, न उत्पाद तथा न निरोध ही है।

जैसा आकाश धातु है वैसी ही प्रकृति भी है। जैसा वायु धातु है वैसा ही अयोनिशमनस्कार है। जैसा जल धातु है वैसा ही कर्मक्लेश है। जैसा पृथिवी धातु है वैसे ही स्कन्ध-धातु तथा आयतन हैं। इसी से कहते हैं सभी धर्म सारहीन एवं प्रतिष्ठा विहीन, शुद्ध मूल एवं अमूलमूल भी हैं।

उक्तमशुद्धावस्थायामविकारलक्षणमारभ्य प्रकृतेराकाशधातुसाधर्म्यं तदाश्रितस्यायोनिशोमनसिकारस्य कर्मक्लेशानां च हेतुलक्षणमारभ्य वायुधातुसाधर्म्यमब्धातुसाधर्म्यं च तत्प्रभवस्य स्कन्धधात्वायतनस्य विपाकलक्षणमारभ्य पृथिवीधातुसाधर्म्यम्। तद्विभवकारणस्य तु मृत्युव्याधिजराग्नेरुपसर्गललक्षणमारभ्य तेजोधातुसाधर्म्यं नोक्तमिति तदुच्यते।

उत्तम शुद्ध अवस्था में अविकार लक्षण से लेकर प्रकृति के आकाश धातु का साधर्म्य और उसमें आश्रित अयोनिश मनस्कार तथा कर्मक्लेशों का हेतुलक्षण को लेकर वायुधातु साधर्म्य अपधातु (जल) साधर्म्य और उससे आरब्ध स्कन्ध-धातु-आयतन के विपाक लक्षण को लेकर पृथिवी धातु से साधर्म्य कहा गया है। उसके वैभव के कारण जो मृत्यु, व्याधि, जरा रूप अग्नि के संसर्ग से लेकर तेजो धातु पर्यन्त नहीं कहा है इसीलिए यह कह रहे हैं।

त्रयोऽग्नयो युगान्तेऽग्निर्नारकः प्राकृतः क्रमात्।
त्रयस्त उपमा तेया मृत्युव्धाधिजराग्नयः॥ ६५ ॥

युग के अन्तिम में तीन अग्नि हैं। वे है - अग्नि, नारक (अग्नि) और प्राकृत (अग्नि) हैं। इन तीनों के तीन उपमायें हैं - मृत्यु, व्याधि और जरा ॥ ६५ ॥

त्रिभिः कारणैर्यथाक्रमं मृत्युव्याधिजराणामग्निसाधर्म्यं वेदितव्यम्। षडायतननिर्ममीकरणतो विचित्रकारणानुभवनतः संस्कारपरिपाकोपनयनतः। एभिरपि मृत्युव्याधिजराग्निभिरविकारत्वमारभ्य तथागतधातोरशुद्धावस्थायामिदमुक्तम्। लोकव्यवहार एष भगवन् मृत इति वा जात इति वा। मृत इति भगवन्निन्द्रियोपरोध एषः। जात इति भगवन् नवानामिन्द्रियाणां प्रादुर्भाव एष। न पुनर्भगवंस्तथागतगर्भो जायते वा

जीर्यति वा म्रियते वा %यवते वोत्पद्यते वा। तत्कस्माद्धेतोः। संस्कृतलक्षणविषयव्यतिवृत्तो भगवंस्तथागतगर्भो नित्यो ध्रुवः शिवः शाश्वत इति।

तीन कारणों से क्रमशः मृत्यु, व्याधि और जराओं का अग्नि साधर्म्य जानना चाहिए। षडायतनों का त्याग करने से विचित्र कारणों के अनुभव से संस्कार का परिपाक समझना चाहिए। इनसे भी मृत्यु व्याधि जरा अग्नियों से अविकारता को लेकर तथागत धातु का अशुद्धि में यह कहा गया है। लोक व्यवहार में ही यह मृत है यह पैदा हुआ है यह व्यवहार होता है। मरने का अर्थ है इन्द्रियों की शान्ति। जन्म का अर्थ नए इन्द्रियों का प्रादुर्भाव होना है। परन्तु तथागत गर्भ न पैदा होता है, न वृद्ध होता है न मरता है, न क्षय होता है या न उत्पन्न ही होता है। क्यों यह कहा है? संस्कृत लक्षण युक्त तथागत गर्भ नित्य, ध्रुव, शिव और शाश्वत ही है।

तत्राशुद्धशुद्धावस्थायामविकारार्थमारभ्य श्लोकः।

शुद्ध और अशुद्ध व्यवस्था में अविकारार्थ बताने के लिए यह श्लोक है।

निर्वृत्तिव्युपरमरुग्जराविमुक्ता
अस्यैव प्रकृतिमनन्यथावगम्य।
जन्मादिव्यसनमृतेऽपि तन्निदानं
धीमन्तो जगति कृपोदयाद् भजन्ते॥ ६६ ॥

मुक्त होने के कारण रोग व्याधि जरा आदि से विमुक्त हैं। इस प्रकृति को यथार्थ रूप में जानने के कारण जन्म आदि व्यसन और मृत्यु होने पर भी उसके मूल कारण को जानने वाले बुद्धिमान् लोग जगत में कृपा के कारण संसार पर कल्याण की वर्षा करते हैं॥ ६६ ॥

अनेन किं दर्शयति।

इसके क्या दिखाना चाहते हैं।

मृत्युव्याधिजरादुःखमूलमार्यैरपोद्धृतम्।
कर्मक्लेशवशागातिस्तदभावान्न तेषु तत्॥ ६७ ॥

मृत्यु, व्याधि, जरा और दुःखों के मूलों को उखाड़ दिया है आर्यों ने,

अत: कर्म, क्लेश के कारण जन्म ही नहीं होगा तब उसके अभाव से उनमें अन्य मृत्यु आदि भी नहीं होगे॥ ६७ ॥

अस्य खलु मृत्युव्याधिजरादु:खवह्नेरशुद्धावस्थायामयोनिशोमनसिकारकर्मक्लेशपूर्विका जातिरिन्धनमिवोपादानं भवति। यस्य मनोमयात्मभावप्रतिलब्धेषु बोधिसत्त्वेषु शुद्धाशुद्धावस्थायामत्यन्तमनाभासगमनादितरस्यात्यन्तमनुगवलनं प्रज्ञायते।

मृत्यु, व्याधि और जरा रूप वह्नि के अशुद्ध अववस्था जन्य अयोनिशमनस्कार कर्मक्लेशपूर्वक जाति बन्धन के तरह ही उत्पन्न होती है। जिसके मनोमय आत्मभाव प्रतिलब्ध बोधिसत्त्वों में शुद्धाशुद्धावस्था में अत्यन्त अनाभास अनादि और अत्यन्त अनुज्वल होना निश्चित है।

जन्ममृत्युजराव्याधीन् दर्शयन्ति कृपात्मका:।
जात्यादिविनिवृत्ताश्च यथाभूतस्य दर्शनात्॥ ६८ ॥

कारुणिक महात्मा तथागत जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि को दिखाते हैं क्योंकि वे यथार्थ तत्त्व को जानने के कारण जन्म मृत्यु आदि से सर्वदा के लिए मुक्त हैं॥ ६८ ॥

कुशलमूलसंयोजनाद्धि बोधिसत्त्वा: संचिन्त्योपपत्तिवशितासंनि:श्रयेण करुणया त्रैधातुके संश्लिष्यन्ते। जातिमप्युपदर्शयन्ति जरामपि व्याधिमपि मरणमप्युदर्शयन्ति। न च तेषामिमे जात्यादयो धर्मा: संविद्यन्ते। यथापि तदस्यैव धातोर्यथाभूतमजात्यनुत्पत्तिदर्शनात्। सा पुनरियं बोधिसत्त्वावस्था विस्तरेण यथासूत्रमनुगन्तव्या। यदाह। कतमे च ते संसारप्रवर्तका: कुशलमूलसंप्रयुक्ता: क्लेशा:। यदुत पुण्यसंभारपर्येष्ट्यतृप्तता। संचिन्त्यभवोपपत्तिपरिग्रह:। बुद्धसमवधानप्रार्थना। सत्त्वपरिपाकापरिखेद:। सद्धर्मपरिग्रहोद्योग:। सत्त्वकिंकरणीयोत्सुकता। धर्मरागानुशयानुत्सर्ग:। पारमितासंयोजनानामपरित्याग:। इत्येते सागरमते कुशलमूलसंप्रयुक्ता: क्लेशा यैर्बोधिसत्त्वा: संश्लिष्यन्ते। न खलु क्लेशदोषैर्लिप्यन्ते। आह पुन:। यदा भगवन् कुशलमूलानि तत्केन कारणेन क्लेशा इत्युच्यन्ते। आह। तथा हि सागरमते एभिरेवंरूपै: क्लेशैबोधिसत्त्वास्त्रैधातुके शिलष्यन्ते। क्लेशंभूतं च त्रैधातुकम्। तत्र

बोधिसत्त्वा उपायकौशलेन च कुशलमूलबलान्वाधानेन च संचिन्त्य त्रैधातुके श्लिष्यन्ते। तेनोच्यन्ते कुशलमूलसंप्रयुक्ताः क्लेशा इति। यावदेव त्रैधातुके श्लेषतया न पुनश्चित्तोपक्लेशतया।

कुशलमूल संयोजन के द्वारा बोधिसत्त्वगण उपपत्ति वशिता का चिन्तन करके संनिःश्रय पूर्वक करुणा से त्रैधातुक में संश्लिष्ट होते हैं। जाति, जरा, व्याधि और मरण को भी दिखाते हैं। उनमें वे जाति आदि धर्म नहीं होते। इस धातु का भी यथाभूत अजाति और अनुत्पत्ति दर्शन से। यह बोधिसत्त्वावस्था विस्तारपूर्वक सूत्रों से जानना चाहिए। जैसा कहा है। संसार में प्रवृत्त कराने वाले कुशलमूल धर्म कितने और कौन हैं? जैसा कि पुण्य सम्भार के पर्येष्टि से अनुप्तता। भवोत्पत्ति का परिग्रह। प्राणि के लिए किए जाने वाले कर्म के प्रति उत्सुकता। धर्मरागानुशया-अनुत्सर्ग। पारमिता का अपरित्याग। वे कुशलमूल संप्रयुक्त क्लेश हैं जिनसे बोधिसत्त्व संश्लिष्ट होते हैं। किन्तु क्लेशों से लिप्त नहीं होते। फिर कहते हैं। जब वे कुशलमूल हैं फिर क्यों क्लेश हैं। इनके इन्हीं स्वरूपों के साथ बोधिसत्त्व त्रैधातुक में श्लिष्ट होते हैं। त्रैधातुक क्लेश से समुत्पन्न है। वहाँ बोधिसत्त्व उपाय कौशल्य से तथा कुशलमूल-बल के आधान से चिन्तन पूर्वक त्रैधातुक में श्लिष्ट होते हैं। इसी से कहते हैं कुशलमूल संप्रयुक्त क्लेश वे त्रैधातुक में श्लेष के रूप में हैं किन्तु चित्त के क्लेश के रूप में नहीं रहते हैं।

स्याद्यथापि नाम सागरमते श्रेष्ठिनो गृहपतेरेकपुत्रक इष्टः कान्तः प्रियो मनापो ऽप्रतिकूलो दर्शनेन स च दारको बालभावेन नृत्यन्नेव मीढकूपे प्रपतेत। अथ ते तस्य दारकस्य मातृज्ञातयः पश्येयुस्तं दारकं मीढकूपे प्रपतितम्। दृष्ट्वा च गम्भीरं निश्वसेयुः शोचेयुः परिदेवेरन्। न पुनस्तं मीढकूपमवरुह्य तं दारकमध्यालम्बेरन्। अथ तस्य दारकस्य पिता तं प्रदेशमागच्छेत्। स पश्येतैकपुत्रकं मीढकूपे प्रपतितं दृष्ट्वा च शीघ्रशीघ्रं त्वरमाणरूप एकपुत्रकाध्याशयप्रेमानुनीतोऽजुगुप्समानस्तं मीढकूपम-वरुह्यैकपुत्रकमभ्युत्क्षिपेत्। इति हि सागरमते उपमैषा कृता यावदेवार्थस्य विज्ञप्तये। कः प्रबन्धो द्रष्टव्यः। मीढकूप इति सागरमते त्रैधातुकस्यैत-दधिवचनम्। एकपुत्रक इति सत्त्वानामेतदधिवचनम्। सर्वसत्त्वेषु हि

बोधिसत्त्वस्यैकपुत्रसंज्ञा प्रत्युपस्थिता भवति। मातृज्ञातय इति श्रावकप्रत्येकबुद्धयानीयानां पुदगलानामेतदधिवचनं ये संसारप्रपतितान् सत्त्वान् दृष्ट्वा शोचन्ति परिदेवन्ते न पुनः समर्था भवन्त्यभ्युत्क्षेसुम्। श्रेष्ठो गृहपतिरिति बोधिसत्त्वस्यैतदधिवचनं यः शुचिर्विमलो निर्मलचित्तोऽ-संस्कृतधर्मप्रत्यक्षगतः संचिन्त्य त्रैधातुके प्रतिसंदधाति सत्त्वपरिपाकार्थम्। सेयं सागरमते बोधिसत्त्वस्य महाकरुणा यदत्यन्तपरिमुक्तः सर्वबन्धनेभ्यः पुनरेव भवोपपत्तिमुपाददाति। उपायकौशल्यप्रज्ञापरिगृहीतश्च संक्लेशैर्न लिप्यते। सर्वक्लेशबन्धनप्रहाणाय च सत्त्वेभ्यो धर्मं देशयतीति। तदनेन सूत्रपदनिर्देशेन परहितक्रियार्थ वशिनो बोधिसत्त्वस्य संचिन्त्यभवोपपत्तौ कुशलमूलकरुणाबलाभ्यामुपश्लेषादुपायप्रज्ञाबलाभ्यां च तदसंक्लेशाद-शुद्धशुद्धावस्था परिदीपिता।

हे सागरमति! तुम यह समझो, देखो कोई गृहस्थ है, सेठ है, एक पुत्र है उसका, अतिशय प्रिय है, सुन्दर है, अप्रतिकूल है, देखने से ही अत्यन्त मनोरम बालक है। बालभाव से नाचते हुए अचानक एक गहरे कूप में गिर जाता है। उस बच्चे को देखकर ही माँ चिल्लाती है उसके बन्धु स्त्रियाँ आती हैं, वे सब उसे देखती हैं, निःश्वास लेते हैं, शोक करते हैं, चिन्तित होते हैं, रोते हैं किन्तु उस गहरे कूप में कोई भी स्त्री नहीं जाती उस बच्चे को निकालने के लिए।

अब उस बच्चा का पिता वहाँ आ जाता है। अपने बच्चे को गहरे कूप में गिरा हुआ देखकर अत्यन्त उद्विग्न होकर अत्यन्त तीव्रता से उसे कूप से बाहर निकालने के लिए अनेक विध सहयोगी सामग्री के साथ उस गहरे कूप में उतरता है और उस बच्चे को कूप से बाहर निकालता है। यह उपमा है बोधिसत्त्वों के कृत्य के लिए। यहाँ क्या जानना चाहिए। यह गहरा कूप त्रैधातुक का उदाहरण है। एक पुत्र यह प्राणियों के लिए है। सभी प्राणी को बोधिसत्त्व एक पुत्र मानते हैं। माता के बन्धु इससे श्रावक, प्रत्येक बुद्ध और पुद्गलों का यह अधिवचन है। जो संसार में गिरे हुए सत्त्वों को देखकर शोचते हैं, चिन्तित होते है किन्तु उनके उद्धार में समर्थ नहीं होते। श्रेष्ठी गृहपति बोधिसत्त्व के लिए प्रयुक्त है। जो पवित्र, मलरहित, निर्मल-चित्त,

असंस्कृत धर्म प्रत्यक्ष से चिन्तन सहित त्रैधातुक (जगत्) में सत्त्वों के कल्याणार्थ उपस्थित होते हैं। यही, हे सागरमति! बोधिसत्त्व की महाकरुणा जो मुक्त है – सभी बन्धनों से फिर भव में आ जाते हैं। उपाय कौशल्य प्रज्ञा पारमिता के कारण क्लेशों से प्रतिबन्धित नहीं होते। सभी प्राणी के क्लेशों को नष्ट करने के लिए धर्म की देश्ना करते हैं। वह इस सूत्रपद के निर्देशन से परहित क्रिया के लिए बशी बोधिसत्त्व का इस भव के उत्पत्ति में मूल करुणा और बल से उपक्लेश तथा उपाय प्रज्ञाबलों से उसके असंक्लेश द्वारा अशुद्ध शुद्धावस्था परिदीपित हुई है।

तत्र यदा बोधिसत्त्वो यथाभूताजात्यनुत्पत्तिदर्शनमागम्य तथागतधातोरिमां बोधिसत्त्वधर्मतामनुप्राप्नोति तथा विस्तरेण यथासूत्रमनुगन्तव्यम्। यदाह। पश्य सागरमते धर्माणामसारतां कारकतां निरात्मतां निःसत्त्वतां निर्जीवतां निःपुद्गलतामस्वाभिकताम्। यत्र हि नाम यथेष्यन्ते तथा विठप्यन्ते विठपिताश्च समाना न चेतयन्ति न प्रकल्पयन्ति। इमां सागरमते धर्मविठपनामधिमुच्य बोधिसत्त्वो न कस्मिंश्चिद्धर्मे परिखेदमुत्पादयति। तस्यैव ज्ञानदर्शनं शुचि शुद्धं भवति। नात्र कश्चिदुपकारो वापकारो वा क्रियत इति। एवं च धर्माणां धर्मतां यथाभूतं प्रजानाति। एवं च महाकरुणासंनाहं न त्यजति। स्याद्यथापि नाम सागरमतेऽनर्घं वैडूर्यमणिरत्नं स्ववदापितं सुपरिशुद्धं सुविमलं कर्दमपरिक्षिप्तं वर्षसहस्रमवतिष्ठेत। तद्वर्षसहस्रात्ययेन ततः कर्दमादभ्युत्क्षिप्य लोड्येत पयवदाप्येत। तत्सुधौतं परिशोधितं पर्यवदापितं समानं तमेव शुद्धविमलमणिरत्नस्वभावं न जह्यात्। एवमेव सागरमते बोधिसत्त्वः सत्त्वानां प्रकृतिप्रभास्वरतां चित्तस्य प्रजानाति। तां पुनरागन्तुकोपक्लेशोपक्लिष्टां पश्यति। तत्र बोधिसत्त्वस्यैवं भवति। नैते क्लेशाः सत्त्वानां चित्तप्रकृतिप्रभास्वरतायां प्रविष्टाः। आगन्तुका एते क्लेशा अभूतपरिकल्पसमुत्थिताः। शक्नुयामहं पुनरेषां सत्त्वानामागन्तुक्लेशा-पनयनाय धर्मं देशयितुमिति। एवमस्य नावलीयनाचित्तमुत्पद्यते। तस्य भूयस्या मात्रया सर्वसत्त्वानामन्तिके प्रमोक्षचित्तोत्पाद उत्पद्यते। एवं चास्य भवति। नैतेषां क्लेशानां किंचिद्बलं स्थानं वा। अबला दुर्बला एते क्लेशाः।

नैतेषां किंचिद्भूतप्रतिष्ठानम्। अभूतपरिकल्पिता एते क्लेशाः। ते यथाभूतयोनिशोमनसिकारनिरीक्षिता न कुप्यन्ति। तेऽस्माभिस्तथा प्रत्यवेक्षितव्या यथा न भूयः श्लिष्येयुः। अश्लेषो हि क्लेशानां साधुर्न पुनः श्लेषः। यद्यहं क्लेशानां श्लिष्येय तत्कथं क्लेशबन्धन-बद्धानां सत्त्वानां क्लेशबन्धनप्रहाणाय धर्मं देशयेयम्। हन्त वयं क्लेशानां च न श्लिष्यामहे क्लेशबन्धनप्रहाणाय च सत्त्वेभ्यो धर्मं देशयिष्यामः। ये पुनस्ते संसारप्रबन्धकाः कुशलमलसंप्रयुक्ताः क्लेशास्तेष्वस्माभिः सत्त्वपरिपाकाय श्लेष्टव्यमिति।

जब बोधिसत्त्व यथाभूत जाति अनुत्पत्ति को जानकर तथागत धातु की इस बोधिसत्त्व धर्मता में प्रविष्ट होता है उसे विस्तारपूर्वक यथासूत्र ही जानना चाहिए। जैसा कहा है - देखो हे सागरमति! धर्मों की असारता, सरकता, निरात्मता, निःसत्त्वता, निर्जीवता, निष्पुद्गलता और अस्वाभाविकता। जहाँ जैसा चाहते हैं वैसा ही करते हैं। जब करते हैं तब वे न चिन्तन करते हैं और न कल्पना ही करते हैं। हे सागरमति! इस धर्म विपठन को बोधिसत्त्व किसी धर्म के प्रति चिन्तित नहीं होता। उसका वही दर्शन ही उसे शुद्ध करता है। यहाँ कोई उपकार या अपकार कुछ भी नहीं होता। इस प्रकार धर्मों की धर्मता को यथार्थतः जानता है। और महाकरुणा को छोड़ते भी नहीं। हो सकता है हे सागरमति! वैडुर्यमणि बहुत वर्षों तक कीचड़ में पड़ा हो फिर हजार वर्षों के बाद बाहर निकाल कर उसे अ%छी तरह से धोकर, पोंछ कर रखने से वही पहले वाली निर्मलता, शुद्धता और विमलता फिर से प्रकट होती है। इसी प्रकार बोधिसत्त्व प्राणियों के चित्तों के वास्तविकता को जानते हैं। क्लेशों को आगन्तुक ही समझते हैं। बोधिसत्त्व यह सोचते हैं, वे मल चित्त के स्वरूप में प्रविष्ट नहीं है। अभूतपरिकल्प से समुत्थित आगन्तुक वे क्लेश हैं। इन सत्त्वों के क्लेशों को नाश कर सकता हूँ अतएव धर्म की देशना करता हूँ यही सोचते हैं। यह चित्त में है ही नहीं। बहुत मात्रा में सभी सत्त्वों को चित्त में अवस्थित मल को नष्ट कर मुक्ति परक चित्त का उत्पाद करते हैं। यह भी इनका होता है, इन क्लेशों का कोई बल या स्थान नहीं है। वे क्लेश अबल और दुर्बल हैं। इनका कोई प्रतिष्ठान नहीं है। वे क्लेश अभूत परिकल्पित हैं।

वे यथार्थतः योनिशोमनसिकार में निरीक्षित होने पर भी कुपित नहीं होते। इनको हमें ऐसे देखना है कि फिर वे न हों। अश्लेष ही क्लेशों का नाश है श्लेष नहीं। यदि मैं ही क्लेशों में बँधा रहुँगा तो कैसे क्लेशमुक्ति के लिए धर्म की देशना करुँगा। दु:ख की बात है कि हम क्लेशों को नष्ट नहीं कर रहे हैं और क्लेश नाश के लिए प्राणियों को धर्म की देशना कर रहे हैं। जो संसार के कारक कुशल मन से संप्रयुक्त क्लेश हैं उनमें हम लोगों को सत्त्व परिपाक के लिए देखना चाहिए और उन्हें (क्लेशों को) नष्ट करना चाहिए।

संसारः पुनरिह त्रैधातुकप्रतिबिम्बकमनास्त्रवधातौ मनोमयं कायत्रयमभिप्रेतम्। तद्ध्यनास्त्रवकुशलमूलाभिसंस्कृतत्वात् संसारः। सास्त्रवकर्मक्लेशानभिसंस्कृत्वान्निर्वाणमपि तत्। यदधिकृत्याह। तस्माद्भगवन्नस्ति संस्कृतोऽप्यसंस्कृतोऽपि संसारः। अस्ति संस्कृतमप्य-संस्कृतमपि निर्वाणमिति। तत्र संस्कृतासंस्कृतसंस्कृतसंसृष्टचित्तचैतसिक-समुदाचारयोगादियमशुद्धशुद्धावस्थेत्युच्यते। सा पुनरास्त्रवक्षयाभिज्ञा-भिमुख्य-सङ्गप्रज्ञापारमितभावनया महाकरुणाभावनया च सर्वज्ञत्वधातु-परित्राणाय तदसाक्षात्करणादाभिमुख्यां बोधिसत्त्वभूमौ प्राधान्येन व्यवस्थाप्यते।

संसार का अर्थ है: त्रैधातुक प्रतिबिम्बात्मक अनास्त्रव धातु में मनोमन काय त्रय को ही संसार कहते हैं। वह भी अनास्त्रव कुशल-मूल अभिसंस्कृत के कारण संसार है। सास्त्रव कर्मक्लेशों को अभिसंस्कार करना ही निर्वाण कहलाता है। इसी के लिए कहा है। इसी से, हे भगवन्! संस्कृत और असंस्कृत दोनों ही संसार हैं। संस्कृत और असंस्कृत दोनों ही निर्वाण हैं। संस्कृत, असंस्कृत संसृष्ट चित्त और चैतसिक योग से यह अशुद्ध और शुद्धावस्था कहा गया है। वह फिर सास्त्रव क्षय के अभिमुखता पूर्वक असङ्ग प्रज्ञापारमिता भावना से, महाकरुणा की भावना से भी सभी सत्त्वों के रक्षार्थ उसके असाक्षात्कृत बोधिसत्त्व भूमि में प्रधानता से व्यवस्थित किया जाता है।

यथोक्तमास्त्रवक्षयज्ञानमारभ्य नगरोदाहरणम्। एवंमेव कुलपुत्र बोधिसत्त्वो महता यत्नेन महता वीर्येण दृढयाध्याशयप्रतिपत्त्या पञ्चाभिज्ञा उत्पादयति। तस्य ध्यानाभिज्ञापरिकर्मकृतचित्तस्यास्त्रवक्षयोऽभि-

मुखीभवति। स महाकरुणाचित्तोत्पादेन सर्वसत्त्वपरित्राणायास्त्रवक्षयज्ञाने परिजयं कृत्वा पुनरपि सुपरिकर्मकृतचेताः षष्ठ्यामसङ्गप्रज्ञोत्पादादास्त्रवक्षयेऽभिमुखीभवति। एवमस्यामाभिमुख्यां बोधिसत्त्वभूमावास्त्रवक्षयसाक्षात्कारणवशित्वलाभिनो बोधिसत्त्वस्य विशुद्धावस्था परिदीपिता। तस्यैवमात्मना सम्यक्प्रतिपन्नस्य परानपि चास्यामेव सम्यक्प्रतिपत्तौ स्थापयिप्यामीति महाकरुणया विप्रतिपन्नसत्त्वपरित्राणाभिप्रायस्य शमसुखानास्वादनतया तदुपायकृतपरिजयस्य संसाराभिमुखसत्त्वापेक्षया निर्वाणविमुखस्य बोध्यङ्गपरिपूरणाय ध्यानैर्विहृत्य पुनः कामधातौ संचिन्त्योपपत्तिपरिग्रहणतो यावदाशु सत्त्वानामर्थं कर्तुकामस्य विचित्रतिर्यग्योनिगतजातकप्रभेदेन पृथग्जनात्मभावसंदर्शनविभुत्वलाभिनोऽविशुद्धावस्था परिदीपिता।

ऊपर कहे हुए आस्त्रव क्षय ज्ञान को लेकर नगर का उदाहरण देते हैं। हे कुल-पुत्र! इसी प्रकार बोधिसत्त्व बड़े यत्न से, बड़े वीर्य से, दृढ अध्याशय द्वारा पञ्च अभिज्ञाओं का उत्पादन करता है। उसके बाद ध्यानाभिज्ञापरिकर्मकृत चित्त का आस्त्रवक्षय का ज्ञान होता है। उस महाकरुणा चित्त के उत्पादन से सर्वसत्त्वों के परित्राण के लिए चित्तोत्पाद करके फिर अपने चित्त को और सुदृढ करता है। इस प्रकार षष्ठी भूमि में असङ्ग प्रज्ञा के उत्पादन से आस्त्रवक्षय में अभिमुखीकरण होता है। इस प्रकार इस अभिमुखी भूत बोधिसत्त्व भूमि में आस्त्रवक्षय से कारण वशिता उपलब्ध होती है। अतः बोधिसत्त्व की विशुद्धावस्था परिदीपित होती है। इस प्रकार सम्यक् ज्ञान प्राप्त किए हुए बोधिसत्त्व के मन में दूसरों को भी इसी भूमि में, सम्यक् प्रतिपत्ति में स्थापित करुँगा ऐसी महाकरुणायुक्त बोधिसत्त्व जो ज्ञान से प्राणियों के उत्तारण के लिए निर्वाणसुख को त्यागने वाले बोधि के अङ्गों की परिपूर्णता के लिए ध्यान से बाहर आकर फिर कामधातु में उपपत्ति के ग्रहणपूर्वक जब तक प्राणियों के कार्यों को करने की इच्छा रखने वाले विचित्र तिर्यक् योनि में गए हुए प्राणि के भेद से सामान्य जनों के आत्मभाव संदर्शन विभुत्व के लाभी बोधिसत्त्वों की विशुद्धावस्था परिदीपित हुई है।

अपरः श्लोकार्थः

दूसरे श्लोक का अर्थ।

धर्मतां प्रतिविच्येमामविकारां जिनात्मजः।
दृश्यते यदविद्यान्धैर्जात्यादिषु तदद्भुतम्॥ ६९ ॥

जिनात्मज बोधिसत्त्व अविकार धर्मता का विवेचन करके, अविद्या-अन्धों के द्वारा जाति-जन्म आदि का साक्षात्कार किया जाता है वह बोधिसत्त्वों के लिए अत्यन्त आश्चर्यकारक है॥ ६९ ॥

अत एव जगद्बन्धोरुपायकरुणे परे।
यदार्यगोचरप्राप्तो दृश्यते बालगोचरे॥ ७० ॥

अत एव जगत् के बन्धुभूत बोधिसत्त्व के दो तत्त्व हैं, उपाय और करुणा जो आर्यों के द्वारा साक्षात्कार किया जाता है, जिसे बच्चों के साक्षात्कार में आर्य देखते हैं॥ ७० ॥

सर्वलोकव्यतीतोऽसौ न च लोकाद्विनिःसृतः।
लोके चरति लोकार्थमलिप्तो लौकिकैर्मलैः॥ ७१ ॥

यह सभी लोकों से दूर है किन्तु लोक से निकला हुआ भी नहीं है। लोक के लिए लोक में ही विचरण करते हैं किन्तु लौकिकमल से लिप्त भी नहीं होते॥ ७१ ॥

यथैव नाम्भसा पद्मं लिप्यते जातमम्भसि।
तथा लोकेऽपि जातोऽसौ लोकधर्मैर्न लिप्यते॥ ७२ ॥

जैसे जल में ही पैदा होकर जल में ही रहने वाले कपलपत्र जल में लिप्त नहीं होते उसी प्रकार लोक में पैदा होकर लोक में रहते हुए भी वे उसमें लिप्त नहीं होते॥ ७२ ॥

नित्योज्ज्वलितबुद्धिश्च कृत्यसंपादनेऽग्निवत्।
शान्तध्यानसमापत्तिप्रतिपन्नश्च सर्वदा॥ ७३ ॥

वे बोधिसत्त्व नित्य उज्जवल बुद्धि सम्पन्न होते हैं तथा अग्नि के तरह ही काम भी करते हैं। शान्त ध्यान समापत्ति में हमेशा लगे रहते हैं॥७३॥

पूर्वाविधवशात् सर्वविकल्पापगमाच्च सः।
न पुनः कुरुते यत्नं परिपाकाय देहिनाम्॥ ७४ ॥

पूर्वकृत पुण्य कर्मों के कारण सभी विकल्प इनके तिरोहित हो जाते हैं अत: फिर शरीर के परिपाक के लिए कोई शुभ या अशुभ कर्म नहीं करते॥ ७४ ॥

यो यथा येन वैनेयो मन्यतेऽसौ तथैव तत्।
देशन्या रूपकायाभ्यां चर्ययेर्यापथेन वा॥ ७५ ॥

जो सत्त्व जिस उपाय से अनुशासित होता है उसी उपाय से उसे मुक्ति के मार्ग में ले जाते हैं और अपने रूप और शरीर से उसके लिए उपदेश, चर्या या ईर्यापथ के द्वारा अपना काम करते हैं॥ ७५ ॥

अनाभोगेन तस्यैवमव्याहतधियः सदा।
जगत्याकाशपर्यन्ते सत्त्वार्थः संप्रवर्तते॥ ७६ ॥

हमेशा अनाभोग के द्वारा सर्वदा अपने तीव्र बुद्धि युक्त वे संसार में आकाश पर्यन्त प्राणियों के कल्याणार्थ लगे ही रहते हैं॥ ७६ ॥

एतां गतिमनुप्राप्तो बोधिसत्त्वस्तथागतैः।
समतामेति लोकेषु सत्त्वसंतारणं प्रति॥ ७७ ॥

इस प्रकार के गति से सम्पन्न बोधिसत्त्व तथागत के समान ही हो जाते हैं क्योंकि प्राणियों के कल्याण के लिए ही यह सब हुआ करता है।।७७॥

अथ चाणोः पृथिव्याश्च गोस्पदस्योदधेश्च यत्।
अन्तरं बोधिसत्त्वानां बुद्धस्य च तदन्तरम्॥ ७८ ॥

इनमें, बोधिसत्त्व और तथागतों में इतना ही भेद है – तथागत पृथिवी हैं तो बोधिसत्त्व उसका परमाणु और तथागत समुद्र स्थानीय हैं तो बोधिसत्त्व गाय के खुर के जल के समान॥ ७८ ॥

एषां दशानां श्लोकानां यथाक्रमं नवभिः श्लोकैः प्रमुदिताया बोधिसत्त्वभूमेरधश्च संक्लेशपरमतां दशमेन श्लोकेन धर्ममेघाया बोधिसत्त्वभूमेरूर्ध्वं विशुद्धिपरमतामुपनिधाय समासतश्चतुर्णां बोधिसत्त्वानां दशसु बोधिसत्त्वभूमिषु विशुद्धिरविशुद्धिश्च परिदीपिता। चत्वारो बोधिसत्त्वाः प्रथमचित्तोत्पादिकः। चर्याप्रतिपन्नः। अवैवर्तिकः। एकजातिप्रतिबद्ध इति। तत्र प्रथम-द्वितीयाभ्यां श्लोकाभ्यामनादि-कालिकमदृष्टपूर्वप्रथमलोकोत्तरधर्मताप्रतिवेधात् प्रमुदितायां भूमौ

प्रथमचित्तोत्पादिकबोधिसत्त्वगणविशुद्धिलक्षणं परिदीपितम्। त्रितीयचतुर्थाभ्यां श्लोकाभ्यामनुपलिप्तचर्याचरणाद्विमलां भूमिमुपादाय यावद्दूरंगमायां भूमौ चर्याप्रतिपन्नबोधिसत्त्वगुणविशुद्धिलक्षणं परिदीपितम्। पञ्चमेन श्लोकेन निरन्तरमहाबोधिसमुदागमप्रयोगसमाधिषु व्यवस्थिततत्वादचलायां भूमाववैवर्तिकबोधिसत्त्वगुणविशुद्धिलक्षणं परिदीपितम्। षष्ठेन सप्तमेनाष्टमेन च श्लोकेन सकलस्वपरार्थसंपादनोपायनिष्ठागतस्य बुद्धभूम्येकचरमजन्मप्रतिबद्धत्वादनुत्तरपरमाभिसंबोधिप्राप्ते धर्ममेघायां बोधिसत्त्वभूमावेकजातिप्रतिबद्धबोधिसत्त्वगुणविशुद्धिलक्षणं परिदीपितम्। नवमेन दशमेन च श्लोकेन परार्थमात्मार्थं चारभ्य निष्ठागतबोधिसत्त्वतथागतयोर्गुणविशुद्धेरविशेषो विशेषश्च परिदीपित:।

इन दश श्लोकों में से ९ श्लोकों के द्वारा प्रमुदिता नामक बोधिभूमि का और उसके नीचे संक्लेश पारमिता को दशवें श्लोक से धर्ममेघा बोधिसत्त्व भूमि के उपर विशुद्धि कृत्य को लेकर संक्षेप में चार बोधिसत्त्वों का दश बोधिसत्त्व भूमियों में अविशुद्धि का परिदीपिन हुआ है। चार बोधिसत्त्व प्रथमचित्त के उत्पादक हैं। चर्या किए हुए। न लौटने वाले एक ही जाति में प्रतिबद्ध। प्रथम और द्वितीय श्लोकों से अनादिकालिक, अदृष्टपूर्व, धर्मता के प्रतिवेधन से प्रमुदिता भूमि में प्रथम चित्तोत्पादक बोधिसत्त्व गण विशुद्धि लक्षण को परिदीपन किया गया है। तीसरे और चौथे श्लोक से अनुपलिप्त चर्या के कारण विमल भूमि को प्राप्त कर जब तक दूरङ्गमा भूमि में चर्याप्रतिपन्न बोधिसत्त्व के गुणों के विशुद्धि लक्षण का परिदीपन हुआ है। पाँचवें श्लोक से निरन्तर महाबोधि समुदागम प्रयोग समाधियों में व्यवस्थित होने से अचलाभूमि में अवैवर्तिक बोधिसत्त्वगुण विशुद्धि लक्षण का परिदीपिन हुआ है। ६, ७ और ८वें श्लोक के द्वारा समस्त स्व-परार्थ-संपादन-उपायनिष्ठा में स्थित बुद्धभूमि के एक अन्तिम जन्म के लिए प्रतिबद्ध होने से अनुत्तर परमाभिसंबोधि प्राप्ति से धर्ममेघा-भूमि में एक जन्म के प्रतिबद्धता के बोधिसत्त्व विशुद्धि लक्षण का परिदीपन हुआ है। नवम और दशवें श्लोकों से परार्थ और आत्मार्थ के लिए आरम्भ करके निष्ठागत बोधिसत्त्व तथागत के गुण विशुद्धि

से अविशिष्ट और विशिष्ट गुणों का दीपन किया गया है।

तत्र सुविशुद्धावस्थायामविकारार्थमारभ्य श्लोकः।

अविशुद्ध अवस्था में अविकार के लिए यह श्लोक है।

अनन्यथात्माक्षयधर्मयोगतो
जगच्छरण्योऽनपरान्तकोटितः।
सदाद्वयोऽसाववविकल्पकत्वतो
ऽविनाशधर्माप्यकृतस्वभावतः॥ ७९ ॥

आत्मक्षय के योग से यथार्थ तत्त्व को समझने वाले तथा जगत् के ही शरण्य हैं क्योंकि आदि और अन्त न होने से, विकल्पविहीन होने से सर्वदा अद्वयरूप हैं, अविनाशी होने पर भी निर्मित स्वभाव वाले नहीं है॥ ७९ ॥

अनेन किं दर्शयति।

इससे क्या दिखाना चाहते हैं।

न जायते न म्रियते बाध्यते नो न जीर्यते।
स नित्यत्वाद्ध्रुवत्वाच्च शिवत्वाच्छाश्वतत्वतः॥ ८० ॥

वे पैदा नहीं होते, न ही मरते, न बाधित होते और न वृद्ध होते हैं। नित्य और ध्रुव होने से तथा शिव और शाश्वत होने से भी॥ ८० ॥

न जायते स नित्यत्वा दात्मभावैर्मनोमयैः।
अचिन्त्यपरिणामेन ध्रुवत्वान् म्रियते न सः॥ ८१ ॥

नित्य होने से पैदा नहीं होते, मनोमय आत्म भाव के कारण अचिन्त्य परिणाम युक्त भी हैं और ध्रुव होने से मरते भी नहीं हैं॥ ८१ ॥

वासनाव्याधिभिः सूक्ष्मैर्बाध्यते न शिवत्वतः।
अनास्त्रवाभिसंस्कारैः शाश्वतत्वान्न जीर्यते॥ ८२ ॥

शिवत्व होने से सूक्ष्म वासना रूप व्याधियों से बाधित नहीं होते। शाश्वत होने से अनास्त्रव अभिसंस्कारों से भी बुद्धत्व को प्राप्त नहीं होते॥८२॥

सखल्वेष तथागतधातुर्बुद्धभूमावत्यन्तविमलविशुद्धप्रभास्वरतायां स्वप्रकृतौ स्थितः पूर्वान्तमुपादाय नित्यत्वान्न पुनर्जायते मनोमयैरात्मभावैः। अपरान्तमुपादाय ध्रुवत्वान्न पुनर्म्रियतेऽचिन्त्यपारिणामिक्या च्युत्या। पूर्वापरान्तमुपादाय शिवत्वान्न पुनर्बाध्यतेऽविद्यावासभूमिपरिग्रहेण।

यश्चैवमनर्थापतितः स शाश्वतत्वान्न पुनर्जीर्यत्य नास्त्रवकर्म-फलपरिणामेन।

इस तथागत धातु-बुद्धभूमि में अत्यन्त विमल विशुद्ध प्रभास्वर-भूमि में अपने प्रकृति में स्थित होने के कारण पूर्वान्त को लेकर नित्य होने से मनोमय आत्मभावों से फिर उत्पन्न नहीं होता। अपरान्त को लेकर ध्रुव होने से अचिन्त्यपरिणामयुक्त च्युति से मृत्यु को भी प्राप्त नहीं होता। पूर्व और परान्त को लेकर भी शिवत्व होने से अविद्या वास भूमि परिग्रहण से भी बन्धन में नहीं होते। इस प्रकार अनर्थ में पतित होने से भी शाश्वत होने के कारण फिर कभी भी जीर्ण नहीं होते अनास्त्रव कर्म फलों के परिणाम से।

तत्र द्वाभ्यामथ द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां यथाक्रमम्।
पदाभ्यां नित्यताद्यर्थो विज्ञेयोऽसंस्कृते पदे॥ ८३ ॥

यहाँ पर दो से, फिर दो से, क्रमशः दो और दो पदों से भी नित्यता आदि अर्थ असंस्कृत पद में जानना चाहिए॥ ८३ ॥

तदेषामसंस्कृतधातौ चतुर्णां नित्यध्रुवशिवशाश्वतपदानां यथाक्रममेकैकस्य पदस्य द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामुद्देशनिर्देश-पदाभ्यामर्थप्रविभागो यथासूत्रमनुगन्तव्यः। यदाह। नित्योऽयं शारिपुत्र धर्मकायोऽनन्यत्वधर्माक्षयधर्मतया। ध्रुवोऽयं शारिपुत्रधर्मकायो ध्रुवशरणोऽपरान्तकोटिसमतया। शिवोऽयं शारिपुत्र धर्मकायोऽद्वयधर्मा-विकल्पधर्मतया। शाश्वतोऽयं शारिपुत्र धर्मकायोऽविनाशधर्मा-कृत्रिमधर्मतयेति।

इनका असंस्कृत धातु में चार नित्य, ध्रुव, शिव और शाश्वत पदों का क्रमशः एक एक पद का दो दो उद्देश और निर्देश पदों के द्वारा अर्थ विभाग यथा सूत्र ही जानना चाहिए। जैसा कहते हैं। हे शारीपुत्र यह धर्मकाय नित्य है। धर्म के अक्षय धर्म होने से। यह धर्मकाय भी ध्रुव है। अपरान्त कोटि समता के ध्रुवशरणात्मक है। यह धर्मकाय शिव है अद्वय धर्म और अविकल्पित धर्मता के कारण। यह धर्मकाय शाश्वत भी है, अविनाशी धर्म तथा अकृत्रिम धर्मता के कारण भी।

अस्यामेव विशुद्धावस्थायामत्यन्तव्यवदाननिष्ठागमनलक्षणस्य तथागतगर्भस्यासंभेदार्थमारभ्य श्लोकः।

इसी विशुद्धि की अवस्था में अत्यन्त व्यवदान निष्ठागमन लक्षणात्मक तथागत गर्भ का संभेद बताने के लिए यह श्लोक है।

स धर्मकायः स तथागतो
यतस्तदार्यसत्यं परमार्थनिर्वृतिः।
अतो न बुद्धत्वमृतेऽर्करश्मिवद्
गुणाविनिर्भागतयास्ति निर्वृतिः॥८४॥

वह धर्मकाय है, वही तथागत भी है क्योंकि वही आर्यसत्य है जहाँ परमार्थ का प्रकटीकरण होता है। अतः बुद्धत्व के बिना, जैसे सूर्य के बिना प्रकाश प्रकट नहीं होता, उसी प्रकार गुणों का विभाग और उसके बाद परम विश्राम भी संभव नहीं है॥ ८४ ॥

तत्र पूर्वश्लोकार्धेन किं दर्शयति।

यहाँ पूर्वश्लोकार्ध से क्या दिखाया गया है।

धर्मकायादिपर्याया वेदितव्याः समासतः।
चत्वारोऽनास्रवे धातौ चतुरर्थप्रभेदतः॥ ८५ ॥

धर्मकाय आदि पर्याय संक्षेप में जानने चाहिए। चार अनास्रव धातु में हैं चार अर्थ के भेद से बोध्य हैं॥ ८५ ॥

समासतोऽनास्रवे धातौ तथागतगर्भे चतुरोऽर्थानधिकृत्य चत्वारो नामपर्याया वेदितव्याः। चत्वारोऽर्थाः कतमे।

संक्षेप में अनास्रव धातु - तथागत गर्भ में चार अर्थों के लेकर चार नाम पर्याय जानने चाहिए। चार अर्थ कौन हैं?

बुद्धधर्माविनिर्भागस्तद्गोत्रस्य तथागमः।
अमृषामोषधर्मित्वमादिप्रकृतिशान्तता॥ ८६ ॥

बुद्ध धर्मों का अविनिर्भाग, बुद्ध गोत्र का आगम, अमृषामोषधर्मित्व तथा आदि प्रकृति शान्तता चार ही हैं॥ ८६ ॥

बुद्धधर्माविनिर्भागार्थः। यमधिकृत्योक्तम्। अशून्यो भगवंस्तथागतगर्भो गङ्गानदीवालुकाव्यतिवृत्तैरविनिर्भागैर-

मुक्तज्ञैरचिन्त्यैर्बुद्धधर्मैरिति। तद्गोत्रस्य प्रकृतेरचिन्त्यप्रकारसमुदागमार्थः। यमधिकृत्योक्तम्। षडायतनविशेषः स तादृशः परंपरागतोऽनादिकालिको धर्मताप्रतिलब्ध इति। अमृषामोषार्थः। यमधिकृत्योक्तम्। तत्र परमार्थसत्यं यदिदममोषधर्मि निर्वाणम्। तत्कस्माद्धेतोः। नित्यं तद्गोत्रं समधर्मतयेति। अत्यन्तोपशमार्थः। यमधिकृत्योक्तम्। आदिपरिनिर्वृत एव तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽनुत्पन्नोऽनिरुद्ध इति। एषु चतुर्ष्वर्थेषु यथासंख्यमिमे चत्वारो नामपर्याया भवन्ति। तद्यथा धर्मकायस्तथागतः परमार्थसत्यं निर्वाणमिति। यत एवमाह। तथागतगर्भ इति शारिपुत्र धर्मकायस्यैतदधिवचनमिति। नान्यो भगवंस्तथागतोऽन्यो धर्मकायः। धर्मकाय एव भगवंस्तथागत इति। दुःखनिरोधनाम्ना भगवन्नेवंगुणस-मन्वागतस्तथागतधर्मकायो देशित इति। निर्वाणधातुरिति भगवंस्तथातधर्मकायस्यैतदधिवचनमिति।

बुद्ध धर्मों का अविनिर्माणार्थ। जिसे लेकर कहा गया है। हे भगवन् तथागत गर्भ अशून्य है। गङ्गा नदी के बालुका के समान अविनिर्भाग जो अमुक्तिज्ञों के द्वारा अचिन्त्य बुद्ध धर्मों से भरे हुए हैं। उस गोत्र का प्रकृति से ही अचिन्त्य प्रकार समुदागम है। जिसे लेकर कहा गया है। वह षडायतन विशेष ही है वैसा परंपरागत अनादिकालिक धर्मताप्रतिलब्ध कहा गया है। अमृषा ही मोषार्थ है। जिसे लेकर कहा गया है। यहाँ परमार्थ सत्य ही है जो अमोषधर्मी निर्वाण कहलाता है। क्यों? समधर्मता के कारण वह गोत्र नित्य है। अत्यन्त उपशमार्थ है। जिसे लेकर कहा गया है। आदि परिनिवृत ही है तथागत, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध, अनुत्पन्न और अनिरुद्ध भी। इन चार अर्थों में क्रमशः चार नाम पर्याय होते हैं। जैसा कि धर्मकाय तथागत ही परमार्थ सत्य और निर्वाण भी है। क्योंकि, हे शारिपुत्र! तथागत गर्भ धर्मकाय का ही संकेत है। तथागत से भिन्न धर्मकाय नहीं है। धर्मकाय ही तथागत है। दुःखनिरोध के लिए भी इसी तथागत काय का = धर्मकाय का निर्देश किया गया है। निर्वाण धातु भी यही तथागत धर्मकाय ही है।

तत्रापरेण श्लोकार्धेन किं दर्शयति।

दूसरे श्लोकार्ध क्या दिखाते हैं?

सर्वाकाराभिसंबोधिः सवासनमलोद्धृतिः।
बुद्धत्वमथ निर्वाणमद्वयं परमार्थतः॥ ८७ ॥

सर्वाकाराभिसम्बोधि, वासनासहितमल का विनाश, बुद्धत्व और निर्वाण पारमार्थिक रूप में अद्वय ही है॥ ८७ ॥

यत एते चत्वारोऽनास्रवधातुपर्यायास्तथागतधातावेकस्मिन्नभिन्नेऽर्थे समवसरन्ति। अत एषामेकार्थत्वाददद्वयधर्मनयमुखेन यच्च सर्वाकारसर्वधर्माभिसंबोधाद्बुद्धत्वमित्युक्तं यच्च महाभिसंबोधात् सवासनमलप्रहाणान्निर्वाणमित्युक्तमेतदुभयमनास्रवे धातावद्वयमिति द्रष्टव्यमभिन्नमच्छिन्नम्।

क्योंकि वे चार अनास्रव धातु के पर्याय तथागत धातु के एक ही अभिन्न अर्थ में अवतरित होते हैं। अतः इनका एकार्थ होने से अद्वय धर्म के अनुरूप सर्वाकारात्मक अभिधर्म-अभिसंबोधि से जो कहा गया है और जो महा अभिसंबोधि से वासना सहित मलों के विनाश के कारण निर्वाण कहा गया है वे दोनों ही अनास्रव धातुमें अद्वय इस रूप में देखा जाना चाहिए। जो अभिन्न तथा अच्छिन्न भी है।

सर्वाकारैरसंख्येयैर चिन्त्यैरमलैर्गुणैः।
अभिन्नलक्षणो मोक्षो यो मोक्षः स तथागत इति॥

यदुक्तमर्हत्प्रयेकबुद्धपरिनिर्वाणमधिकृत्य। निर्वाणमिति भगवन्नुपाय एष तथागतानामिति। अनेन दीर्घाध्वपरिश्रान्तानामटवीमध्ये नगरनिर्माणवदविवर्तनोपाय एष धर्मपरमेश्वराणां सम्यक्संबुद्धानामिति परिदीपितम्। निर्वाणाधिगमाद् भगवंस्तथागता भवन्त्यर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः सर्वाप्रमेयाचिन्त्यविशुद्धिनिष्ठागतगुणसमन्वागता इति। अनेन चतुराकारगुणनिष्पत्स्वसंभिन्नलक्षणं निर्वाणमधिम्य तदात्मकाः सम्यक्संबुद्धा भवन्तीति। बुद्धत्वनिर्वाणयोरविनिर्भागगुणयोगाद्बुद्धत्वमन्तरेण कस्यचिन्निर्वाणाधिगमो नास्तीति परिदीपितम्।

सर्वाकार, असंख्येय, अचिन्त्य तथा अमल गुणों के कारण अभिन्न लक्षण ही मोक्ष है। और जो मोक्ष है वही निर्वाण भी है। जो कहा अर्हत् प्रत्येक बुद्ध और परिनिर्वाण के विषय में। निर्वाण का तात्पर्य तथागतों का उपाय ही

है। इससे लम्बे रास्ते में थके हुए और जंगल के बीच में फँसे हुए लोगों के लिए नगर निर्माण के तरह ही विवर्तन का उपाय है यह धर्म परमेश्वरों का सम्यक् बुद्धत्व यही दिखाया गया है। निर्वाण के अधिगम से हे भगवन्! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध सर्व अप्रमेय, अचिन्त्य, विशुद्धि निष्ठा गुणों से युक्त हैं यही बताया गया है। इस चतुराकार गुण निष्पन्न असंभिन्न लक्षण निर्वाण को जानकर तन्मय ही सम्बुद्ध होते हैं। बुद्धत्व और निर्वाण में समान गुण होने से बुद्धत्व के बिना किसी का भी निर्वाण की प्राप्ति संभव नहीं है यही दिखाया गया है।

तत्र तथागतानामनास्रवे धातौ सर्वाकारवरोपेतशून्यताभिनिर्हारतश्चित्रकर-दृष्टान्तेन गुणसर्वता वेदितव्या।

तथागतों का अनास्रवधातु में सर्वाकारावपेत शून्यता के निहार पूर्वक चित्रकार के दृष्टान्त से गुण की सर्वज्ञता को समझना चाहिए।

अन्योन्यकुशला यद्वद्भवेयुश्चित्रलेखकाः।
यो यदङ्गं प्रजानीयात्तदन्यो नावधारयेत्॥ ८८ ॥
अथ तेभ्यः प्रभू राजा प्रयच्छेद्दूष्यमाज्ञया।
सर्वैरेवात्र युष्माभिः कार्या प्रतिकृतिर्मम॥ ८९ ॥
ततस्तस्य प्रतिश्रुत्य युञ्जेरंश्चित्रकर्मणि।
तत्रैको व्यभियुक्तानामन्यदेशतो भवेत्॥ ९० ॥
देशान्तरगते तस्मिन् प्रतिमा तद्वियोगतः।
न सा सर्वाङ्गसंपूर्णा भवेदित्युपमा कृता॥ ९१ ॥
लेखका ये तदाकारा दानशीलक्षमादयः।
सर्वाकारवरोपेता शून्यता प्रतिमोच्यते॥ ९२ ॥

कुछ एक दूसरे से बढ़कर चित्र बनाने वाले कलाकार थे। एक कलाकार किसी एक अङ्ग को बना सकता था किन्तु दूसरे का नहीं। इसी प्रकार सभी कलाकार दूसरे के बनाए हुए चित्राङ्ग को नहीं लेते थे। या नहीं बनाते, या नहीं जानते थे। इसी क्रम में उनके मालिक राजा ने सभी चित्रकारों को आज्ञा दी कि सब आप मिलकर मेरा चित्र बनायें। प्रभु की आज्ञा से वे सब चित्रकार अपने अपने हिस्सों का चित्र बनाने लगे। परन्तु बीच में ही एक

चित्रकार किसी कारणवश अन्यत्र चला गया अत: वह चित्र राजा का जिसे सब मिलकर बना रहे थे पूर्ण नहीं हुआ किन्तु अपूर्ण एवं विकृत ही हुआ। यही यहाँ उपमा दी गई है। यहाँ जो लेखक हैं वे तदाकार दान-शील-क्षमा आदि पारमिता है। वह प्रतिमा जिसका निर्माण किया जा रहा था वह सर्वाकारवरोपेत शून्यता ही है॥ ८८-९२॥

तत्रैषामेव दानादीनामेकैकस्य बुद्धविषयापर्यन्तप्रकारभेदभिन्नत्वादपरिमितत्वं वेदितव्यम्। संख्याप्रभावाभ्यामचिन्त्यत्वम्। मात्सर्यादिविपक्षमलवासनापकर्षितत्वाद्विशुद्धिपरमत्वमिति। तत्र सर्वाकारवरोपेतशून्यतासमाधिमुखभावनयानुत्पत्तिकधर्मलाभादचलायां बोधिसत्त्वभूमावविकल्पनिश्छिद्रनिरन्तरस्वरसवाहिमार्गज्ञानसंनिश्रयेण तथागतानामनास्त्रवे धातौ गुणसर्वता समुदागच्छति। साधुमत्यां बोधिसत्त्वभूमावसंख्येयसमाधिधारणीमुखसमुद्रैरपरिमाणबुद्धधर्मपरिग्रहज्ञानसंनिश्रयेण गुणाप्रमेयता समुदागच्छति। धर्ममेघायां बोधिसत्त्वभूमौ सर्वतथागतगुह्यस्थानाविपरोक्षज्ञानसंनिश्रयेण गुणाचिन्त्यता समुदागच्छति। तदनन्तरं बुद्धभूम्यधिगमाय सर्वसवासनक्लेशज्ञेयावरणविमोक्षज्ञानसंनिश्रयेण गुणविशुद्धिपरमता समुदागच्छति। यत एषु चतुर्षु भूमिज्ञानसंनिश्रयेष्वहंत्प्रत्येकबुद्धा न संदृश्यन्ते तस्मात्ते दूरीभवन्ति चतुराकारगुणपरिनिष्पत्त्यसंभिन्नलक्षणान् निर्वाणधातोरित्युक्तम्।

यहाँ, इन्हीं दान आदि प्रत्येक के बुद्धि विषय का अपूर्णता के कारण ही अपरिमितता है यह जानना चाहिए। सङ्ख्या और प्रभाव से ही अचिन्त्य है। मात्सर्य आदि विपक्ष मलवासना से आकर्षित न होने से ही विशुद्धि परमत्व का निर्देश किया गया है। वहाँ सर्वाकार जैसा उत्तम शून्यता समाधि भावना द्वारा अनुत्पत्तिक धर्म के लाभ होने से अचल बोधिसत्त्व भूमि में अविकल्पित छिद्ररहित निरन्तर स्वरसवाही मार्ग ज्ञान के संश्रय से तथागतों का अनास्त्रव धातु में गुण ही सर्वता उद्‌गत होती है। साधुमती बोधिसत्त्व भूमि में असंख्य समाधि, धारणी आदि के अनन्त बुद्ध धर्म परिग्रह ज्ञान को संनिश्रय के कारण गुणों में अप्रमेयता उत्पन्न होते हैं। धर्ममेघा बोधिसत्त्व

भूमि में सर्वतथागत गुह्य स्थान के अविपरीत ज्ञान के संश्रय से गुणों की अचिन्त्यता उपलब्ध होती है। उसके बाद बुद्ध भूमि के अधिगम हेतु सभी वासना, क्लेश-ज्ञेयावरण-विमोक्ष ज्ञान के सहयोग से गुणविशुद्धि की उत्पत्ति होती है। क्योंकि इन चार भूमि ज्ञान संनिश्रयों में अर्हत्, प्रत्येक बुद्ध नहीं दिखते इसीलिए वे दूर होते हैं चार आकार गुण के परिनिष्पत्ति-असंभिन्न लक्षण ही निर्वाण धातु के विषय हैं यही कहा गया है।

प्रज्ञाज्ञानविमुक्तीनां दीप्तिस्फरणशुद्धितः।
अभेदतश्च साधर्म्यं प्रभारश्म्यर्कमण्डलैः॥ ६३ ॥

प्रज्ञा, ज्ञान और विमुक्तियों का, दीप्ति, स्फरण, शुद्धि और अभेदों से प्रभा, रश्मि और सूर्य-मण्डल से साधर्म्य है॥ ६३ ॥

यया प्रज्ञया येन ज्ञानेन यया विमुक्त्या स चतुराकारगुणनिष्पत्त्यसंभिन्नलक्षणो निर्वाणधातुः सूच्यते तासां यथाक्रमं त्रिभिरेकेन च कारणेन चतुर्विधमादित्यसाधर्म्यं परिदीपितम्। तत्र बुद्धसान्तानिक्या लोकोत्तरनिर्विकल्पायाः परमज्ञेयतत्त्वान्धकारविधमन-प्रत्युपस्थानतया प्रज्ञाया दीप्तिसाधर्म्यम्। तत्पृष्ठलब्धस्य सर्वज्ञज्ञानस्य सर्वाकारनिरवशेषज्ञेयवस्तुप्रवृत्ततया रश्मिजालस्फरणसाधर्म्यम्। तदुभयाश्रयस्य चित्तप्रकृतिविमुक्तेरत्यन्तविमलप्रभास्वरतयार्कमण्डल-विशुद्धिसाधर्म्यम्। तिसृणामपि धर्मधात्वसंभेदस्वभावतया तत्त्रयाविनि-र्भागसाधर्म्यमिति।

जिस प्रज्ञा से, जिस ज्ञान से, जिस विमुक्ति से वह चतुराकार गुण निष्पत्ति असंभिन्न लक्षण निर्वाण धातु सूचित होता है उनका क्रमशः तीन या एक कारण द्वारा चार प्रकार के आदित्य का साधर्म्य परिदीपित हुआ है। यहाँ बुद्ध के सन्तान स्वरूप लोकोत्तर निर्विकल्प, परमज्ञेय तत्त्वान्धकार का अप्रस्थान रूप प्रज्ञा से दीप्ति का साधर्म्य कहा गया है। उसके पीछे चलने वाले सर्वज्ञ ज्ञान का सर्वाकार निरवशेष ज्ञेय वस्तु के प्रवृत्ति से रश्मि जाल स्फरण से साधर्म्य है। उन दोनों के आश्रयभूत चित्त प्रकृति के विमुक्ति से अत्यन्त विमल प्रभास्वरता से अर्कमण्डल के विशुद्धि से साधर्म्य है। तीनों का भी धर्मधातु असंभेद स्वभाव होने से तीन अविनिर्भाग से साधर्म्य है।

अतोऽनागम्य बुद्धत्वं निर्वाणं नाधिगम्यते॥
न हि शक्यः प्रभारश्मी निर्वृज्य प्रेक्षितुं रविः॥ ९४ ॥

अतः बुद्धत्व को बिना जाने निर्वाण की प्राप्ति संभव नहीं है। सूर्य के प्रभा रश्मि को हटाकर सूर्य को नहीं देखा जा सकता है॥ ९४ ॥

यत एवमनादि सांनिध्यस्वभावशुभधर्मोपहिते धातौ तथागतानामविनिर्भागगुणधर्मत्वमतो न तथागतत्वमसङ्गप्रतिहतप्रज्ञाज्ञानदर्शनमनागम्य सर्वावरणविमुषितलक्षणस्य निर्वाणधातोरधिगमः साक्षात्करणमुपपद्यते प्रभारश्म्यदर्शिन इव सूर्यमण्डलदर्शनम्। अत एवमाह। न हि भगवन् हीनप्रणीतधर्माणां निर्वाणाधिगमः। समधर्माणां भगवन् निर्वाणाधिगमः। समज्ञानानां समविमुक्तीनां समविमुक्तिज्ञानदर्शनानां भगवन् निर्वाणाधिगमः। तस्माद् भगवन् निर्वाणधातुरेकरसः समरस इत्युच्यते। यदुत विद्याविमुक्तिरसेनेति।

जिस कारण से अनादि सांनिध्य स्वभाव रूप शुभ धर्म युक्त धातु में तथागतों का अविनिर्भाग गुण धर्मत्व है अतः तथागतत्व असङ्ग रहित प्रज्ञाज्ञान दर्शन को न जानकर सर्वावरण विमुक्ति लक्षण निर्वाण धातुक अधिगम या साक्षात्कार संभव नहीं है जैसे की प्रभारश्मि के दर्शन के विना सूर्यमण्डल दर्शन नहीं होता है। इसीलिए कहते हैं। हे भगवन्! हीन प्रणीत धर्मों का निर्वाण की प्राप्ति संभव नहीं है। समता ज्ञान वाले समविमुक्ति वालों का तथा समविमुक्ति ज्ञान को देखने वालों का निर्वाण की प्राप्ति संभव है। इसीलिए हे भगवन्! निर्वाण धातु एक रस और समरस है ऐसा कहा है। अथवा विद्या विमुक्ति रस से युक्त होना भी है।

जिनगर्भव्यवस्थानमित्येवं दशधोदितम्।
तत्क्लेशकोशगर्भत्वं पुनर्ज्ञेयं निदर्शनैः॥ ९५ ॥

इस प्रकार जिन के गर्भ का व्यवस्थापन दश प्रकार से होता है यह कहा गया है। उनके क्लेश और कोश गर्भ को फिर उनके निर्देशन से ही फिर जानना चाहिए॥ ९५ ॥

इत्येतदपरान्तकोटिसमध्रुवधर्मतासंविद्यमानतामधिकृत्य दशविधेनार्थेन तथागतगर्भव्यवस्थानमुक्तम्। पुनरनादिसांनिध्यासंबद्ध-स्वभावक्लेशकोशतामनादिसांनिध्यसंबद्धस्वभावशुभधर्मतां चाधिकृत्य नवभिरुदाहरणैरपर्यन्तक्लेशकोशकोटिगूढस्तथागत गर्भ इति यथासूत्रमनु-गन्तव्यम्। नवोदाहरणानि कतमानि।

इस प्रकार अपरान्त कोटियुक्त ध्रुव धर्मता के होने पर उसी को लेकर दश प्रकार के अर्थ से तथागत व्यवस्थान कहा है। फिर अनादि सान्निध्य असंबद्ध स्वभाव क्लेश कोश को अनादि सांनिध्य सम्बद्ध स्वभाव शुभ धर्मता को भी लेकर नौ उदाहरणों से अपर्यन्त-क्लेश-कोश-कोटि गूढ तथागत गर्भ है इस प्रकार यथासूत्र ही जानना चाहिए। वे नौ उदाहरण क्या हैं?

बुद्धः कुपद्मे मधु मक्षिकासु
तुषेसु साराण्यशुचौ सुवर्णम्।
निधिः क्षितावल्पफलेऽङ्कुरादि
प्रक्लिन्नवस्त्रेषु जिनात्मभावः॥९६॥
जघन्यनारीजठरे नृपत्वं यथा
भवेन्मृत्सु च रत्नबिम्बम्।
आगन्तुकक्लेशमलावृतेषु सत्त्वेषु
तद्वत् स्थित एष धातुः॥९७॥

कुपद्म में बुद्ध, मक्षिकाओं में मधु, तुषों में अन्नों का सार, अशुचि में सुवर्ण, निधि पृथिवी में, अल्पफल में अङ्कुर आदि, इसी प्रकार भिगे हुए वस्त्रों में जिनों का आत्मभाव रहता है। नारी के पेट (तुच्छ) में राजा, मिट्टी में रत्नों का बिम्ब तथा आगन्तुक क्लेश मलों में आवृत प्राणियों में यह तथागत धातु स्थित है॥ ९६-९७॥

पद्मप्राणितुषाशुचिक्षितिफलत्वक्पूतिवस्त्रावर-
स्त्रीदुःखज्वलनाभितप्तपृथिवीधातुप्रकाशा मलाः।
बुद्धक्षौद्रसुसारकाञ्चननिधिन्यग्रोधरत्नाकृति-
द्वीपाग्राधिपरत्नबिम्बविमलप्रख्यः स धातुः परः॥ ९८ ॥

कुत्सितपद्मकोशसदृशाः क्लेशाः। बुद्धवत्तथागतधातुरिति।

कुत्सित पद्मकोश के सदृश क्लेश हैं, तथागत धातु बुद्ध के तरह ही है।

यथा विवर्णाम्बुजगर्भवेष्टितं
तथागतं दीप्तसहस्त्रलक्षणम्।
नरः समीक्ष्यामलदिव्यलोचनो
विमोचयेदम्बुजपत्तकोशतः॥९९॥

जैसे सुखे हुए पत्तों से कमल पुष्प ढका हुआ होता है। उसी प्रकार तथागत भी हजारों तेजस्वी तेज से ढके हुए हैं। मनुष्य को अमल दीव्य लोचन होकर समीक्षा करके कमल के पत्तों से उसे बाहर निकालना चाहिए॥ ९९ ॥

विलोक्य तद्वत् सुगतः स्वधर्मता-
मवीचिसंस्थेष्वपि बुद्धचक्षुषा।
विमोचयत्यावरणादनावृतोऽपरान्तकोटिस्थितकः
कृपात्मकः॥१००॥

उसी प्रकार सुगत अपने धर्म को देखकर अवीचि में स्थित होकर भी बुद्ध चक्षु से आवरण से ढके हुए अपने बुद्धत्व को निकाले, अपरान्त कोटि में स्थित होकर कृपात्मा॥ १०० ॥

यद्वत् स्याद्विजुगुप्सितं जलरुहं-
संमिञ्जितं दिव्यदृक्
तद्गर्भस्थितमभ्युदीक्ष्य सुगतं
पत्राणि संछेदयेत्।
रागद्वेषमलादिकोशनिवृतं
संबुद्धगर्भं जगत्
कारुण्यादवलोक्य तन्निवरणं
निर्हन्ति तद्वन्मुनिः॥ १०१ ॥

यद्यपि यह हो सकता है कि कोई कमल पुष्प जुगुप्सित ही हो फिर भी दिव्य दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति उसके अन्त:स्थल में छिपे हुए अच्छे पत्रों को देखे और उन्हें अपने लिए ले आए। इसी प्रकार प्रत्येक शरीर के भीतर राग, द्वेष, मल आदि कोष अवश्य विद्यमान रहते हैं किन्तु करुणापूर्ण दृष्टियुक्त

होकर उसके अन्दर अवस्थित विशुद्ध चित्त को देखकर उसे अपनाए। वैसा ही मुनि, भगवान् तथागत करते हैं॥ १०१ ॥

क्षुद्रप्राणकसदृशाः क्लेशाः।
क्षौद्रवत्तथागतधातुरिति।

क्लेश छोटे कीटों के तरह ही हैं। उनको सुरक्षित करने वाले छादक ही तथागत धातु है।

यथा मधु प्राणिगणोपगूढं
विलोक्य विद्वान् पुरुषस्तदर्थी।
समन्ततः प्राणिगणस्य तस्मा-
दुपायतोऽपक्रमणं प्रकुर्यात्॥१०२॥

जैसे मधु विभिन्न वस्तुओं के अन्तस्तल पर छिपा हुआ होता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष इस रहस्य को समझ कर चारों ओर ढूँढकर अपने आवश्यक मधु का संचय करें। उसके लिए उपायों का अन्वेषण करें॥१०२॥

सर्वज्ञचक्षुर्विदितं महर्षि-
र्मधूपमं धातुमिमं विलोक्य।
तदावृतीनां भ्रमरोपमाना-
मश्लेषमात्यन्तिकमादधाति॥ १०३ ॥

वह महर्षि जो सर्वज्ञरूप नेत्र को धारण किए हुए हैं। वह मधु भी तथागत धातु ही है। उसे देखकर, उसके चारों ओर मंडराते भ्रमर समूहों को हटाकर वह मधु अपने लिए सञ्चित करते हैं॥ १०३ ॥

यद्वत् प्राणिसहस्त्रकोटिनियुतैर्मध्वावृतं स्यान्नरो
मध्वर्थी विनिहत्य तान्मधुकरान्मध्वा यथाकामतः।
कुर्यात्कार्यमनास्त्रवं मधुनिभं ज्ञानं तथा देहिषु
क्लेशाः क्षुद्रनिभा जिनः पुरुषवत् तद्घातने कोविदः॥ १०४॥

जैसे हजारों मधुमक्षिकाओं से मधु का छत्ता घिरा रहता है, किन्तु मधु को चाहने वाला पुरुष उन सभी को भगाकर-मारकर अपने लिए उस मधु को ले ही लेता है उसी प्रकार अनन्त कामनों के द्वारा घिरे हुए अपने आप को देखकर तथा उसके भीतर के ज्ञान राशि (मधु) को पता लगाकर सबसे पहले

उन कामनाओं को हटाकर मारकर उस मधु ज्ञान को ले लेता है वही विद्वान् है। वही बुद्धिमान् और जिन भी है॥ १०४ ॥

बहिस्तुषसदृशाः क्लेशाः। अन्तःसारवत्तथागतधातुरिति।

बाहर के भूषा के जैसे क्लेश हैं। अन्दर के सार-चावल के तरह ही तथागत धातु है।

धान्येषु सारं तुषसंप्रयुक्तं नृणां न यद्वत्परिभोगमेति।
भवन्ति येऽन्नादिभिरर्थिनस्तु ते तत्तुषेभ्यः परिमोचयन्ति॥१०५॥

धान्यों के बाहर भूषा रहता है, जब तक उसे अलग नहीं किया जाता तब तक उस चामल (सार) को ग्रहण नहीं किया जा सकता अतः जो अन्नार्थी हैं सबसे पहले तुष-भूषा को अलग करते हैं॥ १०५ ॥

सत्त्वेष्वपि क्लेशमलोपसृष्ट-मेवं न तावत्कुरुते जिनत्वम्।
संबुद्धकार्यं त्रिभवे न यावद्विमु%यते क्लेशमलोपसर्गात्॥१०६॥

इसी प्रकार प्राणियों में भी क्लेशमलों से ज्ञान ढका हुआ होता है जब तक उन क्लेशों को दूर न किया जाय तब तक जिनत्व-तथागत धातु-ज्ञान प्रकट नहीं होता। अतः विद्वान् वर्ग त्रिभव में क्लेशमलों को दूर करने के बाद ही संसार से मुक्त होते हैं॥ १०६ ॥

यद्वत् कङ्गुकशालिकोद्रवयवव्रीहिष्वमुक्तं तुषात्
सारं खाड्य सुसंस्कृतं न भवति स्वादूपभोज्यं नृणाम्॥
तद्वत् क्लेशतुषादनिःसृतवपुः सत्त्वेषु धर्मेश्वरो
धर्मप्रीतिरसप्रदो न भवति क्लेशक्षुधार्ते जने॥ १०७ ॥

जब तब इस संसार में, जब तक कङ्गु, शाली, कोद्रव और धानों के भूषा का अंत करके उनके अन्दर में रह रहे अत्यन्त सुन्दर सार चावल आदि को सुसंस्कृत नहीं किया जाता तब तक वह भोजन स्वादपूर्ण नहीं हो सकता। उसी प्रकार क्लेश रूपी तुष-भूषा से ढके हुए अन्तःस्थित प्रीतिपूर्ण धर्म को नहीं निकाला जाता तब तक धर्म प्रीति रस उपलब्ध नहीं होता जिससे क्लेश क्षुधा की शान्ति भी नहीं होती॥ १०७ ॥

अशुचिसंकारधानसदृशाः क्लेशाः। सुवर्णवत्तथागतधातुरिति।

अशुद्ध, संकर-धान जैसे कलेश हैं। सुवर्ण के तरह ही तथागत धातु है।

यथा सुवर्णं व्रजतो नरस्य च्युतं भवेत्संकरपूतिधाने।
बहूनि तद्वर्षशतानि तस्मिन् तथैव तिष्ठेदविनाशधर्मि॥ १०८ ॥

कोई व्यक्ति सुवर्ण लेकर कहीं जा रहा है, उसे पता नहीं चला और उसका वह बहुमूल्य सुवर्ण अत्यन्त अपवित्र जगह में गिर गया और हजारों वर्षों तक पड़ा ही रहा किन्तु उसमें कोई विकार नहीं आया॥ १०८ ॥

तद्देवता दिव्यविशुद्धचक्षुर्विलोक्य तत्र प्रवदेन्नरस्य।
सुवर्णमस्मिन्नवमग्ररत्नं विशोध्य रत्नेन कुरुष्व कार्यम्॥१०९॥

कोई दिव्य दृष्टि सम्पन्न देवता ने यह देखकर किसी व्यक्ति से कहा देखो वहाँ पर, उस अशुद्ध जगह में सुवर्ण पड़ा है तुम ले लो और अपना कार्य करो, जो नवरत्नों में अग्रस्थानीय है॥ १०९ ॥

दृष्ट्वा मुनिः सत्त्वगुणं तथैव क्लेशेष्वमेध्यप्रतिमेषु मग्नम्।
तत्क्लेशपङ्कव्यवदानहेतोर्धर्माम्बुवर्षं व्यसृजत् प्रजासु॥११०॥

इसी प्रकार तथागत ने समग्र प्राणियों में भीतर रह रहे सत्त्व गुण को देखा जो अनेक अशुद्ध क्लेशों के भीतर है, उसे उठाकर, धर्मवर्षा से पवित्र कर जनता को वितरित किया॥ ११० ॥

यद्वत् संकरपूतिधानपतितं चामीकरं देवता
दृष्ट्वा दृश्यतमं नृणामुपदिशेत् संशोधनार्थं मलात्।
तद्वत् क्लेशमहाशुचिप्रपतितं संबुद्धरत्नं जिनः
सत्त्वेषु व्यवलोक्य धर्ममदिशत्तच्छुद्धये देहिनाम्॥ १११ ॥

जैसे की गाय के गोबर में फँसे हुए अनेक धान आदि अन्नों को देखकर कोई देवता मुनिगणों को यह बताता है कि देखो वहाँ पर अन्न है आप लोग उसे लेकर शुद्ध करो और उससे अपना कार्य करो। इसी प्रकार महान् अशुद्ध मलों में पतित बुद्ध रत्न को देखकर भगवान् तथागत उन जनों को उपदेश देते है उसे शुद्ध कर अनेक कार्यों को करने के लिए॥ १११ ॥

पृथिवीतलसदृशाः क्लेशाः। रत्ननिधानवत्तथागतधातुरिति।

पृथिवी तल के जैसे क्लेश हैं। रत्नों के तरह तथागत धातु है।

यथा दरिद्रस्य नरस्य वेश्मन्यन्तः
पृथिव्यां निधिरक्षयः स्यात्।
विद्यान्न चैनं स नरो न
चास्मिन्नेषोऽहमस्मीति वदेन्निधिस्तम्॥११२॥

जैसे किसी अत्यन्त दरिद्र व्यक्ति के घर के भीतर अक्षय धन गढ़ा हुआ हो किन्तु वह घर धनी नहीं जानता और वह बहुमूल्य धन भी यह नहीं बताता की मैं यहाँ हूँ॥ ११२ ॥

तद्वन्मनोऽन्तर्गतमप्य चिन्त्यमक्षय्यधर्मामलरत्नकोशम्।
अबुध्यमानानुभवत्यजस्त्रं दारिद्र्यदुःखं बहुधा प्रजेयम्॥११३॥

उसी प्रकार मन के अन्दर अचिन्त्य रूप से रह रहे अक्षय धर्म हैं किन्तु वह अनेक कोषों से ढका हुआ है किन्तु वह व्यक्ति (मन) नहीं जानता वह अक्षय धर्म भी कुछ कहता नहीं अतः वह दारिद्रच दुःख वैसा ही रहता है॥ ११३ ॥

यद्वद्रत्ननिधिर्दरिद्रभवनाभ्यन्तर्गतः स्यान्नरं
न ब्रूयादहमस्मि रत्ननिधिरित्येवं न विद्यान्नरः।
तद्वद्धर्मनिधिर्मनोगृहगतः सत्त्वा दरिद्रोपमा-
स्तेषां तत्प्रतिलम्भकारणमृषिर्लोके समुत्पद्यते॥११४॥

जैसे अति दरिद्र व्यक्ति के घर के भीतर गढा हुआ रत्न समूह कुछ नहीं कहता कि - मैं यहाँ गढा हूँ, और वह व्यक्ति नहीं जान सकता। वैसे ही वह गढा हुआ निधि धर्म है दद्रिता गृहपति समस्त प्राणी हैं, किन्तु उस गृहपति को सत्त्वों को वह धन = धर्म को दिखाने वाले दिव्यदृष्टि सम्पन्न मुनि बुद्ध पुरुष आते हैं॥ ११४ ॥

त्वक्कोशसदृशाः क्लेशाः। बीजाङ्कुरवत्तथागतधातुरिति।

भूषा के कोष जैसा क्लेश। बीजाङ्कुर जैसे तथागत धातु है।

यथाम्रतालादिफले द्रुमाणां
बीजाङ्कुरः सन्नविनाशधर्मी।
उप्तः पृथिव्यां सलिलादियोगात्
क्रमादुपैति द्रुमराजभावम्॥११५॥

जैसे आम, ताल आदि वृक्षों में बीज और उसमें अविनाशी (सुन्दर) अङ्कुर लगते हैं – पृथिवी में, जल मल आदि के सहयोग द्वारा। क्रमशः वह बीजाङ्कुर विशाल वृक्ष बन जाता है॥ ११५ ॥

सत्त्वेष्वविद्यादिफलत्वगन्तः-कोशावनद्धः शुभधर्मधातुः।
उपैति तत्तत्कुशलं प्रतीत्य क्रमेण तद्वन्मुनिराजभावम्॥११६॥

प्राणियों में अविद्या रूपी तुष के अन्दर कोशों से ढका हुआ शुभ धर्म धातु है। जब कुशल मूल उसमें पहुँचता है तब वह क्रमशः अङ्कुरित होकर बढ़ने लगता है॥ ११६ ॥

अम्ब्वादित्यगभस्तिवायुपृथिवीकालाम्बरप्रत्ययै-
र्यद्वत् तालफलाम्रकोशविवरादुत्पद्यते पादपः।
सत्त्वक्लेशफलत्वगन्तरगतः संबुद्धबीजाङ्कुर-
स्तद्वद्वृद्धिमुपैति धर्मविटपस्तैस्तैः शुभप्रत्ययैः॥ ११७ ॥

जल, सूर्य के किरण, पृथिवी और समय के कारणों से एक नन्हा सा बीज – जो आम, ताल आदि वृक्षों का है, वह क्रमशः बड़ा होकर विशालकाय वृक्ष बन जाता है। उसी प्रकार प्राणियों केअन्दर अविद्या कोश से ढका हुआ संबुद्धत्व का बीज क्रमशः शुभ कारणों के आ जाने पर अङ्कुर होते हुए विशिष्ट धर्म वृक्ष बन जाता है॥ ११७ ॥

पूतिवस्त्रसदृशाः क्लेशाः। रत्नविग्रहवत्तथातधातुरिति।

मैले वस्त्रों के जैसे क्लेश हैं। रत्नों की मूर्ति के तरह ही तथागत धातु है।

बिम्बं यथा रत्नमयं जिनस्य दुर्गन्धिपूत्यम्बरसंनिरुद्धम्।
दृष्ट्वोज्झितं वर्त्मनि देवतास्य मुक्त्यै वदेदध्वगमेतमर्थम्॥११८॥

रत्नों से बनी हुई भगवान् तथागत की मूर्ति है। वह बहुमूल्य तथा शूद्ध है किन्तु किसी ने उसके ऊपर अत्यन्त दुर्गन्धित वस्त्र रख दिया या ढक दिया हो। उसे किसी देवता ने देखा और कहा की यह रत्नों की मूर्ति है। तब लोगों ने उस वस्त्र को हटा दिया तब पता चला कि कितनी सुन्दर, पवित्र मूर्ति है॥११८॥

नानाविधक्लेशमलोपगूढ-
मसङ्गचक्षुः सुगतात्मभावम्।
विलोक्य तिर्यक्ष्वपि तद्विमुक्तिं
प्रत्यभ्युपायं विदधाति तद्वत्॥११९॥

इसी प्रकार अनेक क्लेश मलों से आवृत सुगतात्म भाव को, किसी असङ्ग एवं दिव्य चक्षु सम्पन्न व्यक्ति ने, देखकर पशु प्राणि आदि समस्त संसार को और उन्हें मुक्ति के उपाय को बताते हैं॥ ११९ ॥

यद्वद्रत्नमयं तथागतवपुर्दुर्गन्धवस्त्रावृतं
वर्त्मन्युज्झितमेक्ष्य दिव्यनयनो मुक्त्यै नृणां दर्शयेत्।
तद्वत् क्लेशविपूतिवस्त्रनिवृतं संसारवर्त्मोज्झितं
तिर्यक्षु व्यवलोक्य धातुमवदद्धर्मं विमुक्त्यै जिनः॥ १२० ॥

जैसे रत्नों से बनी हुई तथागत की मूर्ति को किसी अपवित्र कपड़े से लपेटकर रास्ते में फेंक दी गई हो, उसे किसी दिव्य दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति ने मनुष्यों को दिखा दिया कि देखो यह रत्नमयी तथागत मूर्ति है तब उसे लोगों ने मुक्त किया। उसी प्रकार क्लेश रूपी अपवित्र वस्त्रों से ढक कर संसार रूपी मार्ग में फेंके हुए तथागत धातु को देखकर तथागत ने उनकी मुक्ति के लिए धर्म का उपदेश दिया ॥ १२० ॥

आपन्नसत्त्वनारी सदृशाः क्लेशाः।
कललमहाभूतगतचक्रवर्तिवत्तथागत-धातुरिति।

नारियों की तरह क्लेश हैं। चक्रवर्ती राजा के तरह तथागत धातु हैं।

नारी यथा काचिदनाथभूता वसेदनाथावसथे विरूपा।
गर्भेण राजश्रियमुद्वहन्ती न सावबुध्येत नृपं स्वकुक्षौ॥ १२१ ॥

कोई महिला है जो अनाथ हो गई है और किसी अनाथालय में रहती है। अत्यन्त विरूप हो गई है और वह ऊपर से गर्भवती भी है। किन्तु उसके गर्भ में जो बच्चा है वह भावी चक्रवर्ती राजा है किन्तु वह उस राजत्व को नहीं जानती॥ १२१ ॥

अनाथशालेव भवोपपत्तिरन्तर्वतीस्त्रीवदशुद्धसत्त्वाः।
तद्गर्भवत्तेष्वमलः स धातुर्भवन्ति यस्मिन्सति ते सनाथाः॥ १२२ ॥

अनाथालय के तरह ही यह संसार है। गर्भिणी स्त्री के सदृश प्राणी, जो अशुद्ध हैं। गर्भ में स्थित राजा के तरह विशुद्ध धर्मधातु है, जिसके होने से वे सनाथ हो जाते हैं॥ १२२ ॥

यद्वत् स्त्री मलिनाम्बरावृततनुर्बीभत्सरूपान्विता
विन्देद्दुःखमनाथवेश्मनि परं गर्भान्तरस्थे नृपे।
तद्वत् क्लेशवशादशान्तमनसो दुःखालयस्था जनाः
सन्नाथेषु च सत्स्वनाथमतयः स्वात्मान्तरस्थेष्वपि॥ १२३ ॥

जैसे कोई स्त्री मलिन वस्त्रों से ढकी हो, कुरूप हो, अनाथालय में हो, दुःखी हो किन्तु वह नहीं जानती उसके गर्भ में राजा है। उसी प्रकार क्लेशों के कारण अशान्त चित्त वाले दुःखालय में अवस्थित जनता अपने अन्दर स्थित नाथ धर्म धातु के होते हुए भी दुःखी हैं यह नहीं जानते कि उनके भीतर क्या है॥ १२३ ॥

मृत्पङ्कलेपसदृशाः क्लेशाः। कनकबिम्बवत्तथागतधातुरिति।

मिट्टी के पङ्कलेप जैसे क्लेश हैं। कनक बिम्ब जैसे तथागत धातु।

हेम्नो यथान्तःक्वथितस्य पूर्णं बिम्बं बहिर्मृन्मयमेक्ष्य शान्तम्।
अन्तर्विशुद्ध्यै कनकस्य तज्ज्ञः संचोदयेदावरणं बहिर्धा॥१२४॥

कोई मूर्ति है बाहर से मिट्टी दिखती है किन्तु वह मूर्ति तो पूर्ण रूप से सुवर्ण से बनी हुई है, को जानकार उसे देखकर बताता है कि यह लेप केवल बाहर मिट्टी का है भीतर तो सुवर्ण है॥ १२४ ॥

प्रभास्वरत्वं प्रकृतेर्मलानामागन्तुकत्वं च सदावलोक्य।
रत्नाकराभं जगदग्रबोधिर्विशोधयत्यावरणेभ्य एवम्॥१२५॥

मलों की आगन्तुक प्रवृत्ति और अन्दर प्रकृति से ही प्रभास्वर तथागतधातु है। इसे देखकर जगत् के अग्रबोधिसत्त्व इन मलावरणों से सत्त्वों को परिशोधित करते हैं॥ १२५ ॥

यद्वन्निर्मलदीप्तकाञ्चनमयं बिम्बं मृदन्तर्गतं
स्याच्छान्तं तदवेत्य रत्नकुशलः संचोदयेन्मृत्तिकाम्।
तद्वच्छान्तमवेत्य शुद्धकनकप्रख्यं मनः सर्वविद्
धर्माख्याननयप्रहारविधितः संचोदयत्यावृतिम्॥ १२६ ॥

नानाविधक्लेशमलोपगूढ-
मसङ्गचक्षुः सुगतात्मभावम्।
विलोक्य तिर्यक्ष्वपि तद्विमुक्तिं
प्रत्यभ्युपायं विदधाति तद्वत्॥११६॥

इसी प्रकार अनेक क्लेश मलों से आवृत सुगतात्म भाव को, किसी असङ्ग एवं दिव्य चक्षु सम्पन्न व्यक्ति ने, देखकर पशु प्राणि आदि समस्त संसार को और उन्हें मुक्ति के उपाय को बताते हैं॥ ११६ ॥

यद्वद्रत्नमयं तथागतवपुर्दुर्गन्धवस्त्रावृतं
वर्त्मन्युज्झितमेक्ष्य दिव्यनयनो मुक्त्यै नृणां दर्शयेत्।
तद्वत् क्लेशविपूतिवस्त्रनिवृतं संसारवर्त्मोज्झितं
तिर्यक्षु व्यवलोक्य धातुमवदद्धर्मं विमुक्त्यै जिनः॥ १२० ॥

जैसे रत्नों से बनी हुई तथागत की मूर्ति को किसी अपवित्र कपड़े से लपेटकर रास्ते में फेंक दी गई हो, उसे किसी दिव्य दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति ने मनुष्यों को दिखा दिया कि देखो यह रत्नमयी तथागत मूर्ति है तब उसे लोगों ने मुक्त किया। उसी प्रकार क्लेश रूपी अपवित्र वस्त्रों से ढक कर संसार रूपी मार्ग में फेंके हुए तथागत धातु को देखकर तथागत ने उनकी मुक्ति के लिए धर्म का उपदेश दिया ॥ १२० ॥

आपन्नसत्त्वनारी सदृशाः क्लेशाः।
कललमहाभूतगतचक्रवर्तिवत्तथागत-धातुरिति।

नारियों की तरह क्लेश हैं। चक्रवर्ती राजा के तरह तथागत धातु हैं।

नारी यथा काचिदनाथभूता वसेदनाथावसथे विरूपा।
गर्भेण राजश्रियमुद्वहन्ती न सावबुध्येत नृपं स्वकुक्षौ॥ १२१ ॥

कोई महिला है जो अनाथ हो गई है और किसी अनाथालय में रहती है। अत्यन्त विरूप हो गई है और वह ऊपर से गर्भवती भी है। किन्तु उसके गर्भ में जो बच्चा है वह भावी चक्रवर्ती राजा है किन्तु वह उस राजत्व को नहीं जानती॥ १२१ ॥

अनाथशालेव भवोपपत्तिरन्तर्वतीस्त्रीवदशुद्धसत्त्वाः।
तद्गर्भवत्तेष्वमलः स धातुर्भवन्ति यस्मिन्सति ते सनाथाः॥ १२२ ॥

अनाथालय के तरह ही यह संसार है। गर्भिणी स्त्री के सदृश प्राणी, जो अशुद्ध हैं। गर्भ में स्थित राजा के तरह विशुद्ध धर्मधातु है, जिसके होने से वे सनाथ हो जाते हैं॥ १२२ ॥

यद्वत् स्त्री मलिनाम्बरावृततनुर्बीभत्सरूपान्विता
विन्देद्दुःखमनाथवेश्मनि परं गर्भान्तरस्थे नृपे।
तद्वत् क्लेशवशादशान्तमनसो दुःखालयस्था जनाः
सन्नाथेषु च सत्स्वनाथमतयः स्वात्मान्तरस्थेष्वपि॥ १२३ ॥

जैसे कोई स्त्री मलिन वस्त्रों से ढकी हो, कुरूप हो, अनाथालय में हो, दुःखी हो किन्तु वह नहीं जानती उसके गर्भ में राजा है। उसी प्रकार क्लेशों के कारण अशान्त चित्त वाले दुःखालय में अवस्थित जनता अपने अन्दर स्थित नाथ धर्म धातु के होते हुए भी दुःखी हैं यह नहीं जानते कि उनके भीतर क्या है॥ १२३ ॥

मृत्पङ्कलेपसदृशाः क्लेशाः। कनकबिम्बवत्तथागतधातुरिति।

मिट्टी के पङ्कलेप जैसे क्लेश हैं। कनक बिम्ब जैसे तथागत धातु।

हेम्नो यथान्तःक्वथितस्य पूर्णं बिम्बं बहिर्मृन्मयमेक्ष्य शान्तम्।
अन्तर्विशुद्ध्यै कनकस्य तज्ज्ञः संचोदयेदावरणं बहिर्धा॥१२४॥

कोई मूर्ति है बाहर से मिट्टी दिखती है किन्तु वह मूर्ति तो पूर्ण रूप से सुवर्ण से बनी हुई है, को जानकार उसे देखकर बताता है कि यह लेप केवल बाहर मिट्टी का है भीतर तो सुवर्ण है॥ १२४ ॥

प्रभास्वरत्वं प्रकृतेर्मलानामागन्तुकत्वं च सदावलोक्य।
रत्नाकराभं जगदग्रबोधिर्विशोधयत्यावरणेभ्य एवम्॥१२५॥

मलों की आगन्तुक प्रवृत्ति और अन्दर प्रकृति से ही प्रभास्वर तथागतधातु है। इसे देखकर जगत् के अग्रबोधिसत्त्व इन मलावरणों से सत्त्वों को परिशोधित करते हैं॥ १२५ ॥

यद्वन्निर्मलदीप्तकाञ्चनमयं बिम्बं मृदन्तर्गतं
स्याच्छान्तं तदवेत्य रत्नकुशलः संचोदयेन्मृत्तिकाम्।
तद्वच्छान्तमवेत्य शुद्धकनकप्रख्यं मनः सर्वविद्
धर्माख्याननयप्रहारविधितः संचोदयत्यावृतिम्॥ १२६ ॥

नानाविधक्लेशमलोपगूढ-
मसङ्गचक्षुः सुगतात्मभावम्।
विलोक्य तिर्यक्ष्वपि तद्विमुक्तिं
प्रत्यभ्युपायं विदधाति तद्वत्॥११९॥

इसी प्रकार अनेक क्लेश मलों से आवृत सुगतात्म भाव को, किसी असङ्ग एवं दिव्य चक्षु सम्पन्न व्यक्ति ने, देखकर पशु प्राणि आदि समस्त संसार को और उन्हें मुक्ति के उपाय को बताते हैं॥ ११९ ॥

यद्वद्रत्नमयं तथागतवपुर्दुर्गन्धवस्त्रावृतं
वर्त्मन्युज्झितमेक्ष्य दिव्यनयनो मुक्त्यै नृणां दर्शयेत्।
तद्वत् क्लेशविपूतिवस्त्रनिवृतं संसारवर्त्मोज्झितं
तिर्यक्षु व्यवलोक्य धातुमवदद्धर्मं विमुक्त्यै जिनः॥ १२० ॥

जैसे रत्नों से बनी हुई तथागत की मूर्ति को किसी अपवित्र कपड़े से लपेटकर रास्ते में फेंक दी गई हो, उसे किसी दिव्य दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति ने मनुष्यों को दिखा दिया कि देखो यह रत्नमयी तथागत मूर्ति है तब उसे लोगों ने मुक्त किया। उसी प्रकार क्लेश रूपी अपवित्र वस्त्रों से ढक कर संसार रूपी मार्ग में फेंके हुए तथागत धातु को देखकर तथागत ने उनकी मुक्ति के लिए धर्म का उपदेश दिया ॥ १२० ॥

आपन्नसत्त्वनारी सदृशाः क्लेशाः।
कललमहाभूतगतचक्रवर्तिवत्तथागत-धातुरिति।

नारियों की तरह क्लेश हैं। चक्रवर्ती राजा के तरह तथागत धातु हैं।

नारी यथा काचिदनाथभूता वसेदनाथावसथे विरूपा।
गर्भेण राजश्रियमुद्वहन्ती न सावबुध्येत नृपं स्वकुक्षौ॥ १२१ ॥

कोई महिला है जो अनाथ हो गई है और किसी अनाथालय में रहती है। अत्यन्त विरूप हो गई है और वह ऊपर से गर्भवती भी है। किन्तु उसके गर्भ में जो बच्चा है वह भावी चक्रवर्ती राजा है किन्तु वह उस राजत्व को नहीं जानती॥ १२१ ॥

अनाथशालेव भवोपपत्तिरन्तर्वतीस्त्रीवदशुद्धसत्त्वाः।
तद्गर्भवत्तेष्वमलः स धातुर्भवन्ति यस्मिन्सति ते सनाथाः॥ १२२ ॥

अनाथालय के तरह ही यह संसार है। गर्भिणी स्त्री के सदृश प्राणी, जो अशुद्ध हैं। गर्भ में स्थित राजा के तरह विशुद्ध धर्मधातु है, जिसके होने से वे सनाथ हो जाते हैं॥ १२२ ॥

यद्वत् स्त्री मलिनाम्बरावृततनुर्बीभत्सरूपान्विता
विन्देद्दुःखमनाथवेश्मनि परं गर्भान्तरस्थे नृपे।
तद्वत् क्लेशवशादशान्तमनसो दुःखालयस्था जनाः
सन्नाथेषु च सत्स्वनाथमतयः स्वात्मान्तरस्थेष्वपि॥ १२३ ॥

जैसे कोई स्त्री मलिन वस्त्रों से ढकी हो, कुरूप हो, अनाथालय में हो, दुःखी हो किन्तु वह नहीं जानती उसके गर्भ में राजा है। उसी प्रकार क्लेशों के कारण अशान्त चित्त वाले दुःखालय में अवस्थित जनता अपने अन्दर स्थित नाथ धर्म धातु के होते हुए भी दुःखी हैं यह नहीं जानते कि उनके भीतर क्या है॥ १२३ ॥

मृत्पङ्कलेपसदृशाः क्लेशाः। कनकबिम्बवत्तथागतधातुरिति।

मिट्टी के पङ्कलेप जैसे क्लेश हैं। कनक बिम्ब जैसे तथागत धातु।

हेम्नो यथान्तःक्वथितस्य पूर्णं बिम्बं बहिर्मृन्मयमेक्ष्य शान्तम्।
अन्तर्विशुद्ध्यै कनकस्य तज्ज्ञः संचोदयेदावरणं बहिर्धा॥१२४॥

कोई मूर्ति है बाहर से मिट्टी दिखती है किन्तु वह मूर्ति तो पूर्ण रूप से सुवर्ण से बनी हुई है, को जानकार उसे देखकर बताता है कि यह लेप केवल बाहर मिट्टी का है भीतर तो सुवर्ण है॥ १२४ ॥

प्रभास्वरत्वं प्रकृतेर्मलानामागन्तुकत्वं च सदावलोक्य।
रत्नाकराभं जगदग्रबोधिर्विशोधयत्यावरणेभ्य एवम्॥१२५॥

मलों की आगन्तुक प्रवृत्ति और अन्दर प्रकृति से ही प्रभास्वर तथागतधातु है। इसे देखकर जगत् के अग्रबोधिसत्त्व इन मलावरणों से सत्त्वों को परिशोधित करते हैं॥ १२५ ॥

यद्वन्निर्मलदीप्तकाञ्चनमयं बिम्बं मृदन्तर्गतं
स्याच्छान्तं तदवेत्य रत्नकुशलः संचोदयेन्मृत्तिकाम्।
तद्वच्छान्तमवेत्य शुद्धकनकप्रख्यं मनः सर्वविद्
धर्माख्याननयप्रहारविधितः संचोदयत्यावृतिम्॥ १२६ ॥

जैसे निर्मल, दीप्त काञ्चनमयी बिम्ब को बाहर से मृत्तिका के लेप को देखकर रत्नकुशल जौहर मृत्तिका को हटाकर उसे दिखाता है। उसी प्रकार शान्त, तेजस्वी मनरूपी तथागतधातु को धर्मरूपी आख्यान से शुद्धकर लोगों-सत्त्वों को कोई तथागत ही दिखाता है॥ १२६ ॥

उदाहरणानां पिण्डार्थः।

अम्बुजभ्रमरप्राणितुषोच्चारक्षितिष्वथ।
फलत्वक्पूतिवस्त्रस्त्रीगर्भमृत्कोशकेष्वपि॥ १२७ ॥
बुद्धवन्मधुवत्सारसुवर्णनिधिवृक्षवत्।
रत्नविग्रहवच्चक्रवर्तिवद्धेमबिम्ब वत्॥ १२८ ॥
सत्त्वधातोरसंबद्धं क्लेशकोशेष्वनादिषु।
चित्तप्रकृतिवैमल्यमनादिमदुदाहृतम्॥ १२९ ॥

उदाहरणों के पिण्डार्थ।

कमल, भ्रमर, प्राणिगण, भूषा, गन्दगी, पृथिवी, फलों के त्वक्, गन्दा वस्त्र, स्त्रीगर्भ, मिट्टी का लेप आदि में बुद्ध, मधु, अन्न, सुवर्ण, निधि (रत्न), वृक्ष, रत्नों की मूर्ति, चक्रवर्ती राजा, सुवर्ण की मूर्ति के तरह ही सत्त्व धातुओं का असम्बद्ध क्लेश शोश जो अनादि हैं में, प्रकृति से ही निर्मल चित्त का निवास हुआ करता है यह अनादिकाल से है यही उदाहरण उपर्युक्त श्लोकों में दिया गया है॥ १२७-१२९॥

समासतोऽनेन तथागतगर्भसूत्रोदाहरणनिर्देशेन कृत्स्नस्य सत्त्वधातोरनादिचित्तसंक्लेशधर्मागन्तुकत्वमनादिचित्तव्यवदानधर्मसहजाविनिर्भागता च परिदीपिता। तत उच्यते। चित्तसंक्लेशात् सत्त्वाः संक्लिश्यन्ते चित्तव्यवदानाद्विशुध्यन्त इति। तत्र कतमश्चित्तसंक्लेशो यमधिकृत्य नवधा पद्मकोशादिदृष्टान्तदेशना।

संक्षेप में यहाँ पर तथागत गर्भसूत्रोदाहरण निर्देश के अनुरूप समस्त सत्त्वधातु का अनादिचित्त संक्लेश धर्मों का आगन्तुक होने से अनादिचित्तगत व्यवदान धर्मगत सहज अविनिर्भागता को परिदीपित किया गया है। इसी से कहा जाता है। चित्त के क्लेश से प्राणी दुःखी होते हैं, चित्त के शान्ति से प्राणी शान्त हो जाते हैं। यहाँ कौन सा चित्त संक्लेश है यह ९ प्रकार के पद्मकोशादिदृष्टान्त

को बता रहे हैं।

रागद्विड्मोहतत्तीव्रपर्यवस्थानवासनाः।
दृड्मार्गभावनाशुद्धशुद्धभूमिगता मलाः॥ १३० ॥
पद्मकोशादिदृष्टान्तैर्नवधा संप्रकाशिताः।
अपर्यन्तोपसंक्लेशकोशकोट्यस्तु भेदतः॥ १३१ ॥

राग, द्वेष, मोह, तीव्र चारों ओर से घिरे हुए वासनागण, दृष्टि, मार्ग, भावना, अशुद्ध, शुद्ध भूमि में स्थित मलगण, पद्मकोश आदि दृष्टान्तों से ९ प्रकार से बताए गए हैं अपर्यन्त, उपक्लेश और कोश वृद्धि आदि भेदपूर्वक सविस्तार प्रकाशित हैं उन्हें जानना चाहिए॥ १३०-१३१॥

समासत इमे नव क्लेशाः प्रकृतिपरिशुद्धेऽपि तथागतधातौ पद्मकोशादय इव बुद्धबिम्बादिषु सदागन्तुकतया संविद्यन्ते। कतमे नव। तद्यथा रागानुशयलक्षणः क्लेशः। द्वेषानुशयलक्षणः। मोहानुशयलक्षणः। तीव्ररागद्वेषमोहपर्यवस्थानलक्षणः। अविद्यावासभूमिसंगृहीतः। दर्शन-प्रहातव्यः। भावनाप्रहातव्यः। अशुद्धभूमिगतः। शुद्धभूमिगतश्च। तत्र ये लौकिकवीतरागसान्तानिकाः क्लेशा आनिञ्ज्य संस्कारोपचयहेतवो रूपारूप्य-धातुनिर्वर्तका लोकोत्तरज्ञानवध्यास्त उच्यन्ते रागद्वेषमोहानुशय-लक्षणा इति। ये रागादिचरितसत्त्वसान्तानिकाः पुण्यापुण्यसंस्कारो-पचयहेतवः केवल-कामधातुनिर्वर्तका अशुभादिभावज्ञानवध्यास्त उच्यन्ते तीव्ररागद्वेषमोहपर्यवस्थानलक्षणा इति। येऽर्हत्सान्तानिका अनास्रव-कर्मप्रवृत्तिहेतवो विमलमनोमयात्मभावनिर्वर्तकास्तथागतबोधिज्ञानवध्यास्त उच्यन्तेऽविद्यावासभूमिसंगृहीता इति। द्विविधः शैक्षः पृथग्जन आर्यश्च। तत्र ये पृथग्जनशैक्षसांतानिकाः प्रथमलोकोत्तरधर्मदर्शनज्ञानवध्यास्त उच्यन्ते दर्शनप्रहातव्या इति। य आर्यपुद्गलशैक्षसान्तानिका यथादृष्ट-लोकोत्तरधर्मभावनाज्ञानवध्यास्त उच्यन्ते भावनाप्रहातव्या इति। येऽनिष्ठागतबोधिसत्त्वसान्तानिकाः सप्तविधज्ञानभूमिविपक्षा अष्टम्यादि-भूमित्रयभावनाज्ञानवध्यास्त उच्यन्तेऽविद्यावासभूमिसंगृहीता इति। द्विविधः शैक्षः पृथग्जन आर्यश्च। तत्र ये पृथग्जनशैक्षसांतातिकाः प्रथमलोकोत्तर-धर्मदर्शनज्ञानवध्यास्त उच्यन्ते दर्शनप्रहातव्या इति। य आर्यपुद्गल-

शैक्षसान्तानिका यथादृष्टलोकोत्तरधर्म-भावनाज्ञान-वध्यास्त उच्यन्ते भावनाप्रहातव्या इति। येऽनिष्ठागतबोधिसत्त्वसान्तानिकाः सप्तविधज्ञानभूमिविपक्षा अष्टम्यादिभूमित्रयभावनाज्ञानवध्यास्त उच्यन्तेऽशुद्धभूमिगता इति। ये निष्ठागतबोधिसत्त्वसान्तानिका अष्टम्यादि-भूमित्रयभावनाज्ञानविपक्षा वज्रोपमसमाधिज्ञानवध्यास्त उच्यन्ते शुद्ध-भूमिगता इति। एते -

संक्षेप में वे ९ क्लेश प्रकृति से परिशुद्ध तथागत धातु में भी पद्मकोशों के तरह, बुद्ध बिम्ब आदि के तरह भी वे आगन्तुक के रूप में रहते हैं। वे ९ कौन हैं। जैसे कि रागानुशय लक्षण वाला क्लेश है। द्वेषानुशय लक्षण। मोहानुशय लक्षण। तीव्रराग-द्वेष-मोह पर्यवस्थान लक्षण। अविद्या वासनाभूमि में संगृहीत। दर्शन का त्याग। भावना त्याग। अशुद्ध भूमि में स्थित। यहाँ लौकिक वीतराग के समूह ही क्लेश हैं वे आञ्जनेय संस्कारों से वृद्धि को प्राप्त होकर रूपी अरूपी धातु के निवर्तक, लोकोत्तर ज्ञान से वध्य हैं और राग द्वेष मोह अनुशय लक्षणात्मक कहे गए हैं।

जो रागादिचरित से वर्धित समूह है वह पुण्य, अपुण्य संस्कार समूहों से वृद्धि को प्राप्त होकर केवल कामधातु में निवृत्त होने वाले अशुभ आदि भाव ज्ञान के द्वारा ही वध्य होते हैं, इन्हें तीव्रराग, द्वेष और मोह के नाशक कहा गया है। जो अर्हत् सान्तानिक हैं उनके वे अनास्रव कर्म प्रवृत्ति के कारण विमल मनोमय आत्मभाव निवर्तक तथागत बोधिज्ञान से वध्य हैं और विद्यावास भूमि में संगृहीत कहे गए हैं। शैक्ष व्यक्ति दो प्रकार का है। पृथग्जन और आर्य। जो पृथग्जन हैं वे शैक्ष के समूह में हैं तथा प्रथम लोकोत्तर धर्मदर्शन ज्ञान से वध्य हैं और कहे जाते हैं - दर्शन के द्वारा प्रहातव्य (वध्य) हैं। जो आर्य पुद्गल शैक्ष सन्तान हैं वे यथादृष्ट लोकोत्तर धर्म भावना ज्ञान से वध्य कहे गए हैं। भावना प्रहातव्य है। जो अनिष्ठागत बोधिसत्त्व के सन्तान हैं वे सात प्रकार के बोधि ज्ञान भूमि विपक्ष हैं तथा अष्टमी आदि तीन भूमि की भावना ज्ञान से वध्य हैं। इन्हें ही शुद्ध भूमिगत कहा जाता है। जो निष्ठागत बोधिसत्त्वों के सन्तान हैं अष्टमी आदि तीन भूमि भावना ज्ञान के विपक्ष हैं तथा वज्रोपम समाधि ज्ञान से वध्य हैं। इन्हें ही शुद्ध भूमि में गए हुए कहा जाता

है। वे हैं –

नव रागादयः क्लेशाः संक्षेपेण यथाक्रमम्।
नवभिः पद्मकोशादिदृष्टान्तैः संप्रकाशिताः॥ १३२ ॥

नौ प्रकार के राग आदि क्लेश संक्षेप में, क्रमशः नौ प्रकार के कोश आदि दृष्टान्तों के द्वारा प्रकाशित किए गए हैं॥ १३२ ॥

विस्तरेण पुनरेत एव चतुरशीतिसहस्रप्रकारभेदेन तथागत-ज्ञानवदपर्यन्ता भवन्ति यैरपर्यन्तक्लेशकोशकोटिगूढस्तथागतगर्भ उच्यते।

विस्तारपूर्वक फिर वे ८४ हजार प्रकार से तथागत ज्ञान के तरह असीम होते हैं जिनसे अनन्त क्लेश कोश कोटि रूप में स्थित तथागत गर्भ कहा जाता है।

बालानामर्हतामेभिः शैक्षाणां धीमतां क्रमात्।
मलैश्चतुर्भिरेकेन द्वाभ्यां द्वाभ्यामशुद्धता॥ १३३ ॥

इन चार प्रकार के मलों से बालकों का, अर्हतों का, शैक्ष और बुद्धिमानों का क्रमशः एक से या दो-दो से अशुद्धि होती है॥ १३३ ॥

यदुक्तं भगवता। सर्वसत्त्वास्तथागतगर्भ इति। तत्र सर्वसत्त्वाः संक्षेपेणोच्यन्ते चतुर्विधास्तद्यथा पृथग्जना अर्हन्तः शैक्षा बोधिसत्त्वाश्चेति। तत्रैषामनास्रवे धातौ यथाक्रमं चतुर्भिरेकेन द्वाभ्यां द्वाभ्यां च क्लेशमलाभ्यामशुद्धिः परिदीपिता।

जैसा भगवान ने कहा है। सभी प्राणी तथागत गर्भ हैं। सभी प्राणियों को संक्षेप में (सरलता के लिए) चार विभाग किए गए हैं। वे हैं - पृथग्जन, अर्हत्, शैक्ष और बोधिसत्त्व। जिनका अनास्रव धातु में क्रमपूर्वक चारों से, एक से, दो दो से, क्लेशमलों के (दो) द्वारा अशुद्धि परिदीपित किया गया है।

कथं पुनरिमे नव रागादयः क्लेशाः पद्मकोशादिसदृशा वेदितव्याः। कथं च तथागतधातोर्बुद्धबिम्बादिसाधर्म्यमनुगन्तव्यमिति।

कैसे फिर वे नौ राग आदि क्लेश पद्म आदि कोशों के तरह जानें? कैसे तथागत धातु का बुद्ध बिम्ब आदि के साथ साधर्म्य को जानें? (यही बता रहे हैं)-

तत्पद्मं मृदि संभूतं पुरा भूत्वा मनोरमम्।
अरम्यमभवत् पश्चाद्यथा रागरतिस्तथा॥१३४॥

वह कमल अत्यन्त सुकोमल है जो उसके जन्मकाल में सुन्दर था किन्तु बाद में वह कुरुप हो गया जैसे की रागी व्यक्ति का चित्त के अन्त में होता है॥ १३४ ॥

भ्रमराः प्राणिनो यद्वद्दशन्ति कुपिता भृशम्।
दुःखं जनयति द्वेषो जायमानस्तथा हृदि॥ १३५ ॥

अत्यन्त कुपित होकर (कभी कभी) मधुमक्खियाँ जैसे लोगों को काटती हैं उसी प्रकार हृदय में स्थित होकर द्वेष दुःख पैदा करता है॥ १३५ ॥

शाल्यादीनां यथा सारमवच्छन्नं बहिस्तुषैः।
मोहाण्डकोशसंछन्नमेवं सारार्थदर्शनम्॥ १३६ ॥

चावलों को जैसे बाह्य तुष ढक देते हैं उसी प्रकार मोह रूपी कोशों से अन्तस्थित सार ढके हुए होते हैं॥ १३६ ॥

प्रतिकूलं यथामेध्यमेवं कामा विरागिणाम्।
कामसेवानिमित्तत्वात् पर्युत्थानान्यमेध्यवत्॥ १३७ ॥

कामी पुरुषों के लिए जैसे अमेध्य (अपवित्र) पदार्थ प्रतिकूल होते हैं वैसे ही वैराग्यवान् लोगों के लिए काम हैं। काम वासना पूर्ति के लिए वे अमेध्य (अपवित्र) हो जाते हैं वैराग्य के स्थिति में॥ १३७ ॥

वसुधान्तरितं यद्वदज्ञानान्नाप्नुयुर्निधिम्।
स्वयंभूत्वं तथाविद्यावासभूम्यावृता जनाः॥ १३८ ॥

पृथिवी के अन्दर छिपे हुए बहुमूल्य धातु अज्ञान के कारण प्राप्त नहीं होते उसी प्रकार अन्दर में स्वयंभू के रूप में स्थित तथता भी अविद्यावासना भूमि में छिपे होने से उपलब्ध नहीं होते॥ १३८ ॥

यथा बीजत्वगुच्छित्तिरङ्कुरादिक्रमोदयात्।
तथा दर्शनहेयानां व्यावृत्तिस्तत्त्वदर्शनात्॥ १३९ ॥

जैसे बीज, फिर उसका फूटना, फिर अङ्कुर क्रमशः होते हैं उसी प्रकार जो हेय पदार्थ हैं क्रमशः तत्त्व दर्शन से निष्प्राण हो जाते हैं॥ १३९ ॥

हतसत्कायसाराणामार्यमार्गानुषङ्गतः।
भावनाज्ञानहेयानां पूतिवस्त्रनिदर्शनम्॥ १४० ॥

शरीर को सत्य समझने वाले लोगों का जो अन्तःसार ढका हुआ है, आर्यों के उपदेशों से क्रमशः ज्ञान उत्पन्न होने से ढका हुआ तत्त्व प्रकट होता है जैसे - गन्दे वस्त्र से ढकी हुई मूर्ति॥ १४० ॥

गर्भकोशमलप्रख्याः सप्तभूमिगता मलाः।
विकोशगर्भवज्ज्ञानमविकल्पं विपाकवत्॥ १४१ ॥

गर्भ, कोश और मल के दृष्टान्त से सप्तभूमि में अवस्थित मलों का निदर्शन है। कोश का विपाटन, गर्भ का बाहर आना, और ज्ञान प्राप्त करने के तरह विकल्प समाप्त होते हैं। जैसे कि विपाक॥ १४१ ॥

मृत्पङ्कलेपवज्ज्ञेयास्त्रिभूम्यनुगता मलाः।
वज्रोपमसमाधानज्ञानवध्या महात्मनाम्॥ १४२ ॥

मिट्टी-पङ्क (कीचड़) के लेपन के तरह ही स्त्री और भूमि में स्थित राज और निधि को जानना चाहिए। जो मल हैं वे वज्रोपमा से समाधान होते हैं और ज्ञान से वध्य होते हैं महात्माओं के लिए॥ १४२ ॥

एवं पद्मादिभिस्तुल्या नव रागादयो मलाः।
धातोर्बुद्धादिसाधर्म्यं स्वभावत्रयसंग्रहात्॥ १४३ ॥

इसी प्रकार पद्म आदि के समान ९ राग आदि मलों को जानना चाहिए। बुद्ध धातु के समान ही तीन स्वभावों के संग्रह से वे मल समाप्त होते हैं॥ १४३ ॥

त्रिविधं स्वभावमधिकृत्य चित्तव्यवदानहेतोस्तथागतगर्भस्य नवधा बुद्धबिम्बादिसाधर्म्यमनुगन्तव्यम्। त्रिविधः स्वभावः कतमः।

तीन प्रकार के स्वभावों को लेकर चित्त के व्यवदान के लिए तथागत गर्भ का ९ प्रकार के बुद्ध बिम्ब के साथ साधर्म्य जानना चाहिए। तीन स्वभाव क्या है?

स्वभावो धर्मकायोऽस्य तथता गोत्रमित्यपि।
त्रिभिरेकेन स ज्ञेयः पञ्चभिश्च निदर्शनैः॥ १४४ ॥

धर्मकाय स्वभाव, तथता और गोत्र वे तीन स्वभाव हैं। तीनों से और एक से वह जाना जाता है और ५ निदर्शनों के सहयोग से॥ १४४ ॥

त्रिभिर्बुद्धबिम्बमधुसारदृष्टान्तैर्धर्मकायस्वभावः स धातुरवगन्तव्यः। एकेन सुवर्णदृष्टान्तेन तथतास्वभावः। पञ्चभिर्निधितरुरत्नविग्रहचक्रवर्ति-कनकबिम्बदृष्टान्तैस्त्रिविधबुद्धकायोत्पत्तिगोत्रस्वभाव इति। तत्र धर्मकायः कतमः।

तीन बुद्ध बिम्ब-मधुसार दृष्टान्तों से धर्मकाय स्वभावात्मात्मक वह धातु है यह जानना चाहिए। एक सुवर्ण दृष्टान्त से तथागत स्वभाव जानना चाहिए। पाँच निधि, वृक्ष, रत्न, विग्रह और चक्रवर्ती आदि के दृष्टान्तों से त्रिविध बुद्धकाय की उत्पत्ति-गोत्र स्वभाव कहा गया है। धर्मकाय कौन सा है?

धर्मकायो द्विधा ज्ञेयो धर्मधातुः सुनिर्मलः।
तन्निष्यन्दश्च गाम्भीर्यवैचित्र्यनयदेशना॥ १४५ ॥

धर्मकाय दो प्रकार का है ऐसा समझना चाहिए धर्मधातु निर्मल है और उसका निष्यन्द (रस) जो गाम्भीर्य, वैचित्र्य और नय देशना॥ १४५ ॥

द्विविधो बुद्धानां धर्मकायोऽनुगन्तव्यः। सुविशुद्धश्च धर्मधातो-रविकल्पज्ञानगोचरविषयः। स च तथागतानां प्रत्यात्ममधिगमधर्ममधिकृत्य वेदितव्यः। तत्प्राप्तिहेतुश्च सुविशुद्धधर्मधातुनिष्यन्दो यथावैनयिक-परसत्त्वेषु विज्ञप्तिप्रभवः। स च देशनाधर्ममधिकृत्य वेदितव्यः। देशना पुनर्द्विविधा सूक्ष्मौदारिकधर्मव्यवस्थाननयभेदात्। यदुत गम्भीरबोधि-सत्त्वपिटक-धर्मव्यवस्थाननयदेशना च परमार्थसत्यमधिकृत्य विचित्रसूत्र-गेयव्याकरण-गाथोदाननिदानादिविविधधर्मव्यवस्थाननयदेशना च संवृतिसत्यमधिकृत्य।

दो प्रकार का बुद्धों का धर्मकाय है। सुविशुद्ध धर्मधातु और उसका अविकल्प ज्ञान विषय। वह तथागतों का प्रत्यात्म अधिगम धर्म को लेकर बताया गया है। उसकी प्राप्ति के लिए सुविशुद्ध धर्मधातु का निष्यन्द है जो सामान्य जन हैं उनके लिए विज्ञप्ति का होना। देशना धर्म को लेकर वह बताया गया है। देशना भी दो प्रकार की है। सौक्ष्म और उदार धर्म व्यवस्थान

के भेद से। अथवा गम्भीर बोधिसत्त्व पिटक धर्म व्यवस्थापन ही नय देशना है और परमार्थ सत्य को लेकर विचित्र सूत्र ज्ञेय-व्याकरण गाथा उदान निदान आदि विविध धर्म व्यवस्थान-नय देशना है-संवृति को लेकर बताया गया है।

लोकोत्तरत्वाल्लोकेऽस्य दृष्टान्तानुपलब्धितः।
धातोस्तथागतेनैव सादृश्यमुपपादितम्॥ १४६ ॥

इस संसार से ऊपर होने से इस लोक में कोई दृष्टान्त उपलब्ध नहीं है अतः धातु (धर्मधातु) का दृष्टान्त तथागत को ही बनाया गया है॥ १४६ ॥

मध्वेकरसवत् सूक्ष्मगम्भीरनयदेशना।
नानाण्डसारवज्ज्ञेया विचित्रनयदेशना॥ १४७ ॥

जैसे मधु का एक विचित्र रस हुआ करता है उसी तरह सूक्ष्म, गंभीर नय की देशना भी नाना प्रकार के अन्नों के रस के तरह ही है यह विचित्र नय की देशना॥ १४७ ॥

इत्येवमेभिस्त्रिभिर्बुद्धबिम्बमधुसारदृष्टान्तैस्तथागतधर्मकायेन निरवशेष-सत्त्व धातुपरिस्फरणार्थमधिकृत्य तथागतस्येमे गर्भाः सर्वसत्त्वा इति परिदीपितम्। न हि स कश्चित्सत्त्वः सत्त्वधातौ संविद्यते यस्तथागत-धर्मकायाद्बहिराकाशधातोरिव रूपम्। एवं ह्याह।

इस प्रकार के तीन बुद्ध बिम्ब, मधु सार आदि के दृष्टान्तों के द्वारा तथागत धर्म काय से निरवशेष धर्म धातु परिस्फुरण हेतु तथागत के वे गर्भ सभी सत्त्व के रूप में दीपित हुए हैं। कोई भी ऐसा सत्व नहीं है जो तथागत के धर्मकाय से बाहर हो जैसा कि आकाश धातु से बाहर कोई रूप नहीं होता। इसी प्रकार कहते हैं।

यथाम्बरं सर्वगतं सदा मतं तथैव तत्सर्वतं सदा मतम्।
यथाम्बरं रूपगतेषु सर्वगं तथैव तत्सत्त्वगणेषु सर्वगमिति॥

जैसे सदा आकाश सर्वत्र व्यापक रहता है उसी प्रकार यह धर्मधातु भी व्यापक है। जैसे आकाश में सभी रूप (संस्थान-स्वरूप) रहते हैं उसी प्रकार सभी प्राणियों में बुद्ध का गर्भ लगा ही रहता है।

प्रकृतेरविकारित्वात् कल्याणत्वाद्विशुद्धितः।
हेममण्डलकौपम्यं तथतायामुदाहृतम्॥ १४८ ॥

प्रकृति से ही अविकारी होने से, कल्याणात्मक होने से तथा विशुद्ध होने से भी सुवर्ण के मण्डल (राशि) के तरह ही तथता को बताया गया है॥१४८॥

यच्चित्तमपर्यन्तक्लेशदु:खधर्मानुगतमपि प्रकृतिप्रभास्वरतया विकारानुदाहृतेरत: कल्याणसुवर्णवदन-न्यथाभावार्थेन तथतेत्युच्यते। स च सर्वेषामपि मिथ्यात्वनियतसंतानानां सत्त्वानां प्रकृतिनिर्विशिष्टानां सर्वागन्तुकमलविशुद्धिमागतस्तथागत इति संख्यां गच्छति। एवमेकेन सुवर्णदृष्टान्तेन तथताव्यतिभेदार्थमधिकृत्य तथागतस्तथतैषां गर्भ: सर्वसत्त्वानामिति परिदीपितम्। चित्तप्रकृतिविशुद्ध्यद्वयधर्मतामुपादाय यथोक्तं भगवता। तत्र मञ्जुश्रीस्तथागत आत्मोपादानमूलपरिज्ञातावी। आत्मविशुद्ध्या सर्वसत्त्वविशुद्धिमनुगत:। या चात्मविशुद्धिर्या च सत्त्वविशुद्धिरद्वयैषाद्वैधीकारो ति। एवं ह्याह।

जो चित्त अपर्यन्त क्लेशदु:ख धर्मानुगत होकर भी प्रकृति प्रभास्वरता के कारण विकार न होने से कल्याणकारी है अत: सुवर्ण के तरह अनन्यथा रूप में तथता को रखा गया है। वह सभी मिथ्यात्व नियत सन्तानों के लिए जो प्रकृति निर्दिष्ट सत्त्व हैं, सभी आगन्तुक मल विशुद्धि को प्राप्त तथागत हैं यही कहा है। एक सुवर्ण के दृष्टान्त से तथता के अभेद को दिखाकर और तथागत को इन सत्त्वों के गर्भ हैं यही दिखाया गया है। चित्त प्रकृति विशुद्धि अद्वय धर्म को लेकर जैसा भगवान् ने कहा है। मञ्जुश्री तथागत ने आत्मोपादान मूल को जान लिया है। आत्मविशुद्धि से सर्वसत्त्वविशुद्धि बताया गया है। जो आत्मशुद्धि है, जो सत्त्वशुद्धि है यही अद्वय या अद्वैधीकार है। ऐसा कहते हैं।

सर्वेषामविशिष्टापि तथता शुद्धिमागता।
तथागतत्वं तस्माच्च तद्गर्भा: सर्वदेहिन इति॥

सभी में अविशिष्ट होते हुए भी वह तथता शुद्ध होती है। तथागत भी शुद्ध है, इसीलिए उनके गर्भ (सत्त्व) सभी सत्त्व उनके तरह ही शुद्ध हैं।

गोत्रं तद्द्विविधं ज्ञेयं निधानफलवृक्षवत्।
अनादिप्रकृतिस्थं च समुदानीतमुत्तरम्॥ १४९ ॥

वह तथागत गोत्र भी दो प्रकार का है निधान (खानी) और फल वृक्ष के तरह ही, जो अनादि प्रकृति में स्थित और बाद में बाहर आया हुआ ॥१४९॥

बुद्धकायत्रयावाप्तिरस्माद्गोत्रद्वयान्मता।
प्रथमात्प्रथमः कायो द्वितीयाद्द्वौ तु पश्चिमौ॥१५०॥

तीन बुद्धकायों की प्राप्ति इसी गोत्र से होती है जो अद्वय काय है। प्रथम से प्रथम काय द्वितीय से दूसरा काय और तीसरे से तीसरा काय॥१५०॥

रत्नविग्रहवज्ज्ञेयः कायः स्वाभाविकः शुभः।
अकृत्रिमत्वात् प्रकृतेर्गुणरत्नाश्रयत्वतः॥ १५१ ॥

रत्नों से निर्मित प्रतिमाओं के तरह यह काय शुभ और स्वाभाविक होता है क्यों अकृत्रिम, प्राकृत तथा रत्नों के गुण होने से॥ १५१ ॥

महाधर्माधिराजत्वात् साम्भोगश्चक्रवर्तिवत्।
प्रतिबिम्बस्वभावत्वान्निर्माणं हेमबिम्बवत्॥ १५२ ॥

महाधर्माधिराजरूप यह काय है - सम्भोग काय। चक्रवर्ती राजा के तरह। प्रतिबिम्ब स्वभाव होने से निर्माण काय सुवर्ण राशि के तरह ही है॥ १५२ ॥

इत्येवमेभिरवशिष्टैः पञ्चभिर्निधितरुरत्नविग्रहचक्रवर्तिकनकबिम्ब-दृष्टान्तैस्त्रि- विधबुद्धकायोत्पत्तिगोत्रस्वभावार्थमधिकृत्य तथागतधातुरेषां गर्भः सर्वसत्त्वानामिति परिदीपितम्। त्रिविधबुद्धकायप्रभावितत्वं हि तथागतत्वम्। अतस्तत्प्राप्तये हेतुस्तथागतधातुरिति। हेत्वर्थोऽत्र धात्वर्थः। यत आह। तत्र च सत्त्वे सत्त्वे तथागतधातुरुत्पन्नो गर्भगतः संविद्यते न च ते सत्त्वा बुध्यन्त इति। एवं ह्याह।

इस प्रकार इन अवशिष्ट पाँच निधि, तरु, रत्न, विग्रह, चक्रवर्ती, सुवर्ण बिम्बों के दृष्टान्तों से त्रिविध बुद्धकाय की उत्पत्ति गोत्र स्वभाव के लिए है, तथागत धातु ही इनका गर्भ है - सभी सत्त्वों के लिए यही परिदीपित किया गया है। त्रिविध बुद्धकाय से प्रभावित ही तथागत तत्व है। अतः उसके प्राप्ति के लिए हेतु - तथागत धातु है। हेतु का अर्थ धातु है। इसीलिए कहते हैं। वहाँ प्रत्येक सत्त्व में तथागत धातु उत्पन्न तथा गर्भगत होता है परन्तु इसे

प्राणी नहीं समझते हैं। ऐसा कहते भी हैं।

अनादिकालिको धातुः सर्वधर्मसमाश्रयः।
तस्मिन् सति गतिः सर्वा निर्वाणाधिगमोऽपि च॥

अनादिकालिक धातु में ही सभी धर्मों की स्थिति है। उसके रहने पर ही सभी गतियाँ होती हैं और निर्वाण की उपलब्धि भी है।

तत्र कथमनादिकालिकः। यत्तथागतगर्भमेवाधिकृत्य भगवता पूर्वकोटिर्न प्रज्ञायत इति देशितं प्रज्ञप्तम्। धातुरिति। यदाह। योऽयं भगवंस्तथागतगर्भो लोकोत्तरगर्भः प्रकृतिपरिशुद्धगर्भ इति। सर्वधर्मसमाश्रय इति। यदाह। तस्माद्भगवतंस्तथागतगर्भो निश्रय आधारः प्रतिष्ठा संवद्धानामविनिर्भागानाममुक्तज्ञानानामसंस्कृतानां धर्माणाम्। असंबद्धानामपि भगवन् विनिर्भागधर्माणां मुक्तज्ञानानां संस्कृतानां धर्माणां निश्रय आधारः प्रतिष्ठा तथागतगर्भ इति। तस्मिन् सति गतिः सर्वेति। यदाह। सति भगवंस्तथागतगर्भे संसार इति परिकल्पमस्य वचनायेति। निर्वाणाधिगमोऽपि चेति। यदाह। तथागत गर्भश्चेद् भगवन्न स्यान्न स्याद्दुःखेऽपि निर्विन्ननिर्वाणेच्छा प्रार्थना प्रणिधिर्वेति विस्तरः।

यह क्यों अनादि कालिक है। यह तथागत गर्भ को लेकर पूर्व कोटि का ज्ञान नहीं होता यह भगवान् ने कहा है। धातु का तात्पर्य जैसा भगवान् ने कहा है। यह जो भगवन्! तथागत गर्भ है वही लोकोत्तर गर्भ है जो प्रकृति परिशुद्ध गर्भ है। सर्वधर्म श्रमाश्रय यही है। जैसा कहते हैं। इसीलिए हे भगवन्! तथागत गर्भ प्रतिष्ठा सम्बन्ध, अविनिर्भाग, अनुक्त ज्ञान वाले असंस्कृत धर्मों का पूर्ण आधार है। असम्बद्ध, विनिर्भागधर्म, मुक्तज्ञान धर्मों का पूर्ण आधार प्रतिष्ठा तथागतगर्भ है। उसके होने पर ही सर्वत्र गति होती है। जैसा कि कहते हैं। तथागत गर्भ के होने पर हि संसार है इसी से वह परिकल्पित लक्षण वाला कहा गया है। निर्वाण का अधिगम भी वही है। तथागत गर्भ के होने पर दुःख में भी दुःखी नहीं होता - सत्त्व। उसके होने पर निर्वाण की कामना, इच्छा, और प्रार्थना तथा प्रणिधान भी नहीं होंगे। यह अन्यत्र विस्तार पूर्वक कहा गया है।

स खल्वेष तथागतगर्भो धर्मकायाविप्रलम्भस्तथतासंभिन्नलक्षणो नियतगोत्रस्वभावः सर्वदा च सर्वत्र च निरवशेषयोगेन सत्त्वधाताविति द्रष्टव्यं धर्मतां प्रमाणीकृत्य। यथोक्तम्। एषा कुलपुत्र धर्माणां धर्मता। उत्पादाद्वा तथागतानामनुत्पादाद्वा सदैवैते सत्त्वास्तथागतगर्भा इति। यैव चासौ धर्मता युक्तिर्योग उपायः पर्यायः। एवमेव तत्स्यात्। अन्यथा नैव तत्स्यादिति। सर्वत्र धर्मतैव प्रतिशरणम्। धर्मतैव युक्तिश्चित्तनिध्यापनाय चित्तसंज्ञापनाय। सा न चिन्तयितव्या न विकल्पयितव्याधिमोक्तव्येति।

यह तथागतगर्भ धर्मकाय से अभिन्न तथता से समान लक्षण वाला तथा नियत गोत्र स्वभावयुक्त सर्वदा सर्वत्र निरवशेष योग से सत्त्व धातु में रहता है इस दृष्टि से धर्मता को प्रमाणित करके इसे देखना चाहिए। जैसा कहा है। यही, हे कुलपुत्र! धर्मों की धर्मता है। तथागतों के उत्पाद या अनुत्पाद से भी हमेशा वे सत्त्व तथागत गर्भ हैं। यह जो धर्मता है वही यहाँ पर युक्ति, योग या उपाय है वे पर्यायवाची शब्द हैं। यही यहाँ हो। अन्यथा वह नहीं होगा। सर्वत्र धर्मता ही प्रतिशरण है। धर्मता ही युक्ति के लिए, चित्त के निध्यापन के लिए तथा चित्त संज्ञापन के लिए है। उसका चिन्तन, विकल्पन, और अधिमोक्तन (त्याग) भी नहीं करनी चाहिए।

श्रद्धयैवानुगन्तव्यं परमार्थे स्वयंभुवाम्।
न ह्यचक्षुः प्रभादीप्तमीक्षते सूर्यमण्डलम्॥ १५३ ॥

स्वयंभूबुद्धों की तथता, धर्मधातु आदि के विषय में श्रद्धा द्वारा ही जानने का प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि कोई आँख विहीन व्यक्ति सुदीप्त सूर्य के प्रभामण्डल को नहीं देख सकता॥ १५३ ॥

समासत इमे चत्वारः पुद्गलास्तथागतगर्भदर्शनं प्रत्यचक्षुष्मन्तो व्यवस्थिताः। कतमे चत्वारः। यदुत पृथग्जनः श्रावकः प्रत्येकबुद्धो नवयानसंप्रस्थितश्च बोधिसत्त्वः। यथोक्तम्। अगोचरोऽयं भगवंस्तथागतगर्भः सत्कायदृष्टिपतितानां विपर्यासाभिरतानां शून्यताविक्षिप्तचित्तानामिति। तत्र सत्कायदृष्टिपतिता उच्यन्ते बाल-पृथग्जनाः। तथा हि तेऽत्यन्त-सास्रवस्कन्धादीन्धर्मानात्मत आत्मीय-तश्चोपगम्याहंकारममकाराभिनिविष्टाः सत्कायनिरोधमनास्रवधातु-

मधिमोक्तुमपि नालम्। कुतः पुनः सर्वज्ञविषयं तथागतगर्भमवभोत्स्यन्त इति। नेदं स्थानं विद्यते। तत्र विपर्यासाभिरता उच्यन्ते श्रावकप्रत्येकबुद्धाः। तत्कस्मात्। तेऽपि हि नित्ये तथागतगर्भे सत्युत्तरिभावयितव्ये तन्नित्यसंज्ञा भावनाविपर्ययेणानित्यसंज्ञाभावनाभिरताः। सुखे तथागतगर्भे सत्युत्तरिभावयितव्ये तत्सुखसंज्ञाभावनाविपर्ययेण दुःखसंज्ञाभावनाभिरताः। आत्मनि तथागतगर्भे सत्युत्तरिभावयितव्ये तदात्मसंज्ञाभावनाविपर्ययेणानात्मसंज्ञाभावनाभिरताः। शुभे तथागतगर्भे सत्युत्तरिभावयितव्ये तच्छुभसंज्ञाभावनाविपर्ययेणाशुभसंज्ञा भावनाभिरताः। एवमनेन पर्यायेण सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धानामपि धर्मकाय-प्राप्तिविधुरमार्गाभिरतत्वादगोचरः स परमनित्यसुखात्मशुभलक्षणो धातुरित्युक्तम्। यथा च स विपर्यासाभिरतानामनित्यदुःखानात्माशुभसंज्ञानामगोचरस्तथा विस्तरेण महापरिनिर्वाणसूत्रे भगवता वापीतोयमणिदृष्टान्तेन प्रसाधितः।

संक्षेप में वे चार पुदगल तथागत गर्भ दर्शन के प्रति अचक्षु वालों को व्यवस्थित किया गया है। वे चार कौन हैं। जैसा कि पृथग्जन, श्रावक, प्रत्येक बुद्ध और नया यान में प्रस्थित बोधिसत्त्व। जैसा कहा है। यह तथागत गर्भ अगोचर है - सत्काय दृष्टि में पतित, विपर्यास में रत, और शून्यता विक्षिप्त दृष्टि वालों के लिए। सत्काय दृष्टि वाले बाल-पृथग्जन ही हैं। जैसा कि - वे अत्यन्त सास्रव स्कन्धयुक्त सास्रव धर्मयुक्त आत्मीय और स्वयं आप को प्राप्त कर अहंकार तथा ममकार - मैं और मेरा इस दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण सत्काय के निरोधक अनास्रव धातु को छोड़ने में असमर्थ हैं। फिर कैसे सर्वज्ञ के विषय में तथता और तथागत गर्भ को जान पायेंगे। यह स्थान नहीं है। विपर्यासों से भरे हुए होते हैं श्रावक और प्रत्येक बुद्ध। यह कैसे। वे भी नित्य तथागत गर्भ के होने पर उसके ऊपर चिन्तन होना चाहिए था किन्तु उस नित्य के भावना के विपरीत अनित्य संज्ञा भावनाभिरत होते हैं। तथा गर्भ सुख के होने पर उसके ऊपर विचारणीय होना था किन्तु उस सुख के विपरीत दुःख संज्ञा भावना में रत होते हैं। आत्मरूप तथागत गर्भ के होने पर, उसके उत्तर में विचार होना चाहिए था किन्तु उस आत्म संज्ञा भावना के विरुद्ध अनात्म संज्ञा भावना में अभिरत रहते हैं। तथागत गर्भ के शुभ होने पर,

उसको भावित न करके उसके विपरीत अशुभ संज्ञा भावना में रत होते हैं। इस प्रकार के पर्याय से सर्वश्रावक-प्रत्येक बुद्धों का भी धर्मकाय के प्राप्ति के लिए दूसरे मार्ग में चलने से वह परम, नित्य, सुख, आत्म, शुभ लक्षणात्मक धर्म धातु गोचर नहीं होता है। यही कहा है। जैसा कि विपर्यास में अभिरत, अनित्य, दुःख, अनात्म, अशुभ संज्ञा वालों के लिए यह अगोचर है, यह विषय सविस्तार महापरिनिर्वाणसूत्र में भगवान ने कूल, जल और मणि के दृष्टान्त से सिद्ध किया है।

तद्यथापि नाम भिक्षवो ग्रीष्मकाले वर्तमाने सलिलबन्धनं बद्ध्वा स्वैः स्वैर्मण्डनकोपभोगैर्जनाः सलिले क्रीडेयुः। अथ तत्रैको जात्यं वैडूर्यमणिमन्तरुदके स्थापयेत्। ततस्तस्य वैडूर्यस्थार्थे सर्वे ते मण्डनकानि त्यक्त्वा निमगोयुः। अथ यत्तत्रास्ति शर्करं कठल्यं वा तत्ते मणिरिति मन्यमाना गृहीत्वा मया लब्धो मणिरित्युत्सृज्योत्सृज्य वापीतीरे स्थित्वा नायं मणिरिति संज्ञां प्रवर्तेयुः। तच्च वाप्युदकं मणिप्रभावेन तत्प्रभेव भ्राजेत। एवं तेषां तदुदकं भ्राजमानं दृष्ट्वाहो मणिरिति गुणसंज्ञा प्रवर्तेत। अथ तत्रैक उपायकुशलो मेधावी मणि तत्त्वतः प्रतिलभेत। एवमेव भिक्षवो युष्माभिः सर्वमनित्यं सर्व दुःखं सर्वमनात्मकं सर्वमशुभमिति सर्वग्रहणेन भावितभावितं बहुलीकृतबहुलीकृतं धर्मतत्त्वमजानद्भिस्तत्सर्व घटितं निरर्थकम्। तस्माद्भिक्षवो वापीशर्करकठल्यव्यवस्थिता इव मा भूता उपायकुशला यूयं भवत। यद्यद्भिक्षवो युष्माभिः सर्वमनित्यं सर्वं दुःखं सर्वमनात्मकं सर्वमशुभमिति सर्वग्रहणेन भावितभावितं बहुलीकृतबहुलीकृतं तत्र तत्रैव नित्यसुखशुभात्मकानि सन्तीति विस्तरेण परमधर्मतत्त्वव्यवस्थानमारभ्य विपर्यासभूतनिर्देशो यथासूत्रमनुगन्तव्यः।

जैसा कि हे भिक्षुगण! ग्रीष्म काल होने पर पानी को बाँधकर अपने अपने स्थानों में छोटे जलाशय बनाकर लोग उसमें क्रीडा करते हैं। उसमें कोई एक व्यक्ति वैडुर्य मणि को उस जलाशय में रख देवे। अब, उस मणि को पाने के लिए सभी लोग उस जलाशय में डूब जाते हैं। अन्दर जाने के बाद सभी लोगों के हाथों में कुछ छोटे छोटे पाषाण खण्ड हाथ लग जाने से वे मणि मैंने पा लिया है इस प्रकार बाहर आकर देखते हैं वे तो पाषाण हैं यही कहते

हैं मणि नहीं है। वह जलाशय का जल उस मणि के प्रभाव से पूरा चमक रहा होता है। उस चमकते जल राशि को देखकर अहो यह तो मणि है ऐसी संज्ञा वात वे करते हैं। वहीं पर कोई एक आदमी जो उपाय में निष्णात है वह मेधावी मणि को पा जाता है। इसी प्रकार हे भिक्षुगण! आप सबों ने, सब कुछ अनित्य, दुःख, अनात्म, अशुभ इस प्रकार सर्व के ग्रहण से भावित होकर बारम्बार अनेकों वार, धर्मतत्त्व को न जानकर जो कुछ जाना है वह व्यर्थ है। इसीलिए हे भिक्षुगण! वापि के अन्दर में अवस्थित पाषाण खण्ड, काष्ठ खण्ड, अस्थि खण्ड आदि के तरह सब चीजों को जानकर उपाय में कुशल होकर उसे पा लेना चाहिए। जो जो आप लोगों ने सब कुछ अनित्य, दुःख, अनात्म, अशुभ इस प्रकार सर्वग्रहण पूर्वक भावित करके अनेक बार दोहराकर जाना है वे सब उस नित्य, सुख शुभात्मक हैं यह विस्तार पूर्वक परमार्थ धर्म तत्त्व व्यवस्था में विपर्यास-निर्देशको यथासूत्र ही जानना चाहिए।

तत्र शून्यताविक्षिप्तचित्ता उच्यन्ते नवयानसंप्रस्थिता बोधिसत्त्वा-स्तथागतगर्भशून्यतार्थनयविप्रनष्टाः। ये भावविनाशाय शून्यताविमोक्षमु-खमिच्छन्ति सत एव धर्मस्योत्तरकालमुच्छेदो विनाशः परिनिर्वाणमिति। ये वा पुनः शून्यतोपलम्भेन शून्यतां प्रतिसरन्ति शून्यता नाम रूपादिव्य-तिरेकेण कश्चिद्भावोऽस्ति यमधिगमिष्यामो भावयिष्याम इति। तत्र कतमः स तथागतगर्भशून्यतार्थनय उच्यते।

शून्यता विक्षिप्त चित्त नवीनयान में प्रस्थित बोधिसत्त्व ही हैं। वे तथागत गर्भ शून्यतार्थ नय में प्रनष्ट होने से विक्षिप्त चित्त कहलाते हैं। वे भाव के विनाश के लिए शून्यता विमोक्ष को चाहते हैं। अवस्थित धर्म का भविष्य में न होना ही विनाश है। अथवा परिनिर्वाण भी कहते हैं। अथवा वे फिर शून्यता को प्राप्त कर, शून्यता के प्रति लालायित होते हैं। शून्यता का अर्थ है - रूप आदि को छोड़कर कोई भाव है जिसे हम प्राप्त करेंगे और होंगे। यहाँ वह कौन सा तथता गर्भ शून्यतार्थ नय है?

नापनेयमतः किंचिदुपनेयं न किंचन।
द्रष्टव्यं भूततो भूतं भूतदर्शी विमुच्यते॥ १५४ ॥

यहाँ कुछ भी त्याज्य नहीं है और न ही कुछ ग्राह्य है। यथार्थ को यथार्थ दृष्टि से देखना चाहिए। ऐसा यथार्थ दर्शी ही मुक्त होता है॥ १५४॥

शून्य आगन्तुकैर्धातुः सविनिर्भागलक्षणैः।
अशून्योऽनुत्तरैर्धर्मैरविनिर्भागलक्षणैः॥ १५५ ॥

तथागत धातु आगन्तुक सविनिर्भाग लक्षणात्मक मलों से शून्य है। अनुत्तर धर्मों से जो अविनिर्भाग लक्षणात्म हैं, उनसे अशून्य (युक्त) तथागत धातु है॥ १५५ ॥

किमनेन परिदीपितम्। यतो न किंचिदपनेयमस्त्यतः प्रकृतिपरिशुद्धात् तथागतधातोः संक्लेशनिमित्तमागन्तुकमलशून्यताप्रकृतित्वादस्य। नाप्यत्र किंचिदुपनेयमस्ति व्यवदाननिमित्तमविनि-र्भागशुद्धधर्मप्रकृतित्वात्। तत उच्यते। शून्यस्तथागतगर्भो विनिर्भागैर्मुक्तज्ञैः सर्वक्लेशकोशैः। अशून्यो गङ्गानदीवालिकाव्यतिवृत्तैरविनिर्भागैर-मुक्तज्ञैरचिन्त्यैर्बुद्धधर्मैरिति। एवं यद्यत्र नास्ति तत्तेन शून्यमिति समनुपश्यति। यत्पुनरत्रावशिष्टं भवति तत्सदिहास्तीति यथाभूतं प्रजानाति। समारोपापवादान्तपरिवर्जनादपर्यन्तं शून्यतालक्षणमनेन श्लोकद्वयेन परिदीपितम्। तत्र येषामितः शून्यतार्थनयाद्बहिश्चित्तं विक्षिप्यते विसरति न समाधीयते नैकाग्रीभवति तेन ते शून्यताविक्षिप्तचित्ता उच्यन्ते। न हि परमार्थशून्यताज्ञानमुखमन्तरेण शक्यतेऽविकल्पो धातुरधिगन्तुं साक्षात्कर्तुम्। इदं च संधायोक्तम्। तथागतगर्भज्ञानमेव तथागतानां शून्यताज्ञानम्। तथागतगर्भश्च सर्वश्रावकप्रत्येक-बुद्धैरदृष्टपूर्वोऽनधिगतपूर्व इति विस्तरः। स खल्वेष तथागतगर्भो यथा धर्मधातुगर्भस्तथा सत्कायदृष्टिपतितानामगोचर इत्युक्तं दृष्टिप्रतिपक्षत्वाद्धर्मधातोः। यथा धर्मकायो लोकोत्तरधर्म गर्भस्तथा विपर्यासाभिरतानामगोचर इत्युक्तमनित्यादिलोकधर्मप्रतिपक्षेण लोकोत्तरधर्मपरिदीपनात्। यथा प्रकृतिपरिशुद्धधर्मगर्भस्तथा शून्यताविक्षिप्तानामगोचर इत्युक्तमागन्तुकमलशून्यताप्रकृतित्वाद्विशुद्धि-गुणधर्माणामविनिर्भागलोकोत्तरधर्मकायप्रभावितानामिति। तत्र यदेकनयधर्मधात्वसंभेदज्ञानमुखमागम्य लोकोत्तरधर्मकायप्रकृति-परिशुद्धिव्यवलोकनमिदमत्र यथाभूतज्ञानदर्शनमभिप्रेतं येन दशभूमिस्थिता

बोधिसत्त्वास्तथागतगर्भमीषत्पश्यन्तीत्युक्तम्। एवं ह्याह।

इससे क्या दिखाया गया है। कुछ भी त्यागने योग्य नहीं है। क्योंकि प्रकृति परिशुद्ध होने से तथागत धातु का संक्लेश निमित्तक आगन्तुक मल शून्यता होने से त्याग योग्य नहीं है। कुछ लेना भी नहीं है क्योंकि व्यवदान निमित्तक अविनिर्भाग शुद्ध धर्म होने से ग्राह्य कुछ भी नहीं है। इसी से कहते हैं - तथागत गर्भ शून्य है, क्योंकि विनिर्भाग मुक्तज्ञ और सर्वक्लेश कोशों के द्वारा यह परिनिष्ठित है। यह अशून्य है जैसा कि गङ्गानदी के बालुका के समान अविनिर्भाग अचिन्त्य बुद्ध धर्मों से, अतः कुछ भी ग्राह्य अवशिष्ट नहीं है। जो यहाँ नहीं है यह उससे शून्य है ऐसा देखता है। जो यहाँ अवशिष्ट है वह सत् भूत धर्म यहाँ है यह यथार्थ वह जानता है। समारोप और अपवाद के अन्त होने से अपर्यन्त शून्यता लक्षण को दो श्लोकों से परिदीपित किया गया है। जिन लोगों का यहाँ शून्यता के अर्थ से चित्त बाहर हो जाता है, विक्षिप्त या चञ्चल होता है, एकाग्र नहीं होता उसी से वे शून्यता विक्षिप्त चित्त कहे गए हैं। परमार्थ शून्यता ज्ञान के बिना अविकल्प धातु का साक्षात्कार या प्राप्ति संभव नहीं है। इसी को मन में रखकर भगवान् ने कहा है। तथागत गर्भ ज्ञान ही तथागतों का शून्यता ज्ञान है। तथागत गर्भ - श्रावक और प्रत्येक बुद्धों से अदृष्ट पूर्व है। वह तथागत गर्भ जैसा धर्मधातु गर्भ है उसे सत्काय-दृष्टि वाले देख नहीं सकते, क्योंकि दृष्टि प्रतिपक्ष है - धर्म-धातु का स्वभाव। जैसे कि धर्मकाय और लोकोत्तर धर्म गर्भ ऐसे ही विपर्यासाभिरतों के लिए अचोचर है ऐसा कहा है। अनित्य आदि लोक धर्म के प्रतिपक्ष होने के कारण यह लोकोत्तर धर्म का परिदीपन किया गया है। जैसा कि प्रकृति परिशुद्ध-धर्म गर्भ - शून्यता विक्षिप्तों के लिए अगोचर है। ऐसा कहा है - आगन्तुक मल शून्यता प्रकृति होने से विशुद्ध धर्मों का जो अविनिर्भाग लोकोत्तर धर्मकाय प्रभावित होने के कारण। यहाँ एकनय धर्म धातु असंभेद ज्ञान को लेकर लोकोत्तर धर्मकाय प्रकृति परिशुद्धि को देखना ही यहाँ यथाभूत ज्ञान दर्शन अभिप्रेत है। इससे दशभूमि में अवस्थित बोधिसत्त्व तथागत गर्भ को थोड़ा सा देखते हैं यह कहा गया है। ऐसा ही कहते हैं।

छिद्राभ्रे नभसीव भास्कर इह त्वं शुद्धबुद्धीक्षणै-
रार्यैरप्यवलोक्यसे न सकलः प्रादेशिकीबुद्धिभिः।
ज्ञेयानन्तनभस्तलप्रविसृतं ते धर्मकायं तु ते
साकल्येन विलोकयन्ति भगवन् येषामनन्ता मतिः। इति॥

मेघ से ढके हुए आकाश में किसी छोटे से मेघ के छिद्र से जैसे सूर्य को थोड़ा सा देखा जा सकता है, प्रादेशिक (क्षेत्र) बुद्धि से पूर्ण सूर्य नहीं देखे जा सकते। उसी प्रकार अनन्त आकाश में फैले हुए सूर्य के सदृश उस धर्मकाय को पूर्णता से तो वही देख सकते हैं जिनकी अनन्त मति हो गई हो।

यद्येवमसङ्गनिष्ठाभूमिप्रतिष्ठितानामपि परमार्याणामसर्वविषय एव दुर्दृशो धातुः। तत्किमनेन बालपृथग्जनमारभ्य देशितेनेति। देशनाप्रयोजन-संग्रहे श्लोकौ। एकेन प्रश्नो द्वितीयेन व्याकरणम्।

इस प्रकार असङ्गनिष्ठ भूमि में प्रतिष्ठित परम आर्यों का यह विषय है अतः सामान्यों के लिए दुर्दृश - कठिनता से ही देखा जा सकता है। तब क्यों बाल पृथग्जनों के लिए देशना की जाती है। देशना प्रयोजन के लिए श्लोक है। एक से प्रश्न दूसरे से व्याकरण बताया जा रहा है।

शून्यं सर्वं सर्वथा तत्र तत्र ज्ञेयं
मेघस्वप्नमायाकृताभम्।
इत्युक्त्वैवं बुद्धधातुः पुनः किं
सत्त्वे सत्त्वेऽस्तीति बुद्धैरिहोक्तम्॥१५६॥

सब कुछ शून्य है। सर्वथा यत्र तत्र शून्य ही है। उसे मेघ, स्वप्न और माया के तरह ही जानना चाहिए। ऐसा कहा है फिर बुद्ध धातु सभी सत्त्वों में अवस्थित है यह क्यों कहा गया है॥ १५६ ॥

लीनं चित्तं हीनसत्त्वेष्ववज्ञा-
भूतग्राहो भूतधर्मापवादः।
आत्मस्नेहश्चाधिकः पञ्च दोषा येषां
तेषां तत्प्रहाणार्थमुक्तम्॥१५७॥

हीन प्राणियों में चित्त (अहं मम) लीन होने से, हीन सत्त्वों की अवज्ञा होने से, भूत ग्राह होने से, भूत धर्मों में अपवाद और अधिक आत्मस्नेह

ये पाँच दोष होने से वे शून्यता से दूर हैं यह कहा गया है॥ १५७ ॥

अस्य खलु श्लोकद्वयस्यार्थः समासेन दशभिः श्लोकैर्वेदितव्यः।

इन दो श्लोकों का अर्थ संक्षेप में निम्न दश श्लोकों से जानना चाहिए।

विविक्तं संस्कृतं सर्वप्रकारं भूतकोटिषु।
क्लेशकर्मविपाकार्थं मेघादिवदुदाहृतम्॥ १५८ ॥

भूत कोटियों में सभी प्रकार के संस्कृत धर्मों का विवेचन किया जा चुका है। वे सब क्लेश-कर्म-विपाक के लिए हैं और मेघ आदि के तरह ही उदाहृत किया गया है॥ १५८ ॥

क्लेशा मेघोपमाः कृत्यक्रिया स्वप्नोपभोगवत्।
मायानिर्मितवत् स्कन्धा विपाकाः क्लेशकर्मणाम्॥ १५९ ॥

क्लेश मेघोपम हैं, कृत्य क्रिया स्वप्न के भोगों के तरह हैं। स्कन्ध जादू जैसे हैं जो क्लेश कर्मों के ही फल हैं॥ १५९॥

पूर्वमेवं व्यवस्थाप्य तन्त्रे पुनरिहोत्तरे।
पञ्चदोषप्रहाणाय धात्वस्तित्वं प्रकाशितम्॥ १६० ॥

पहले ही सब कुछ व्यवस्थित करके इस उत्तर तन्त्र में पाँच दोषों के प्रहाण के लिए धातु के अस्तित्त्व को प्रकाशित किया गया है॥ १६० ॥

तथा ह्यश्रवणादस्य बोधौ चित्तं न जायते।
केषांचिन्नीचचित्तानामात्मावज्ञानदोषतः॥ १६१ ॥
बोधिचित्तोदयेऽप्यस्य श्रेयानस्मीति मन्यतः
बोध्यनुत्पन्नचित्तेषु हीनसंज्ञा प्रवर्तते॥ १६२ ॥
तस्यैवंमतिनः सम्यग्ज्ञानं नोत्पद्यते ततः।
अभूतं परिगृह्णाति भूतमर्थं न विन्दते॥ १६३ ॥
अभूतं सत्त्वदोषास्ते कृत्रिमागन्तुकत्वतः।
भूतं तद्दोषनैरात्म्यं शुद्धिप्रकृतयो गुणाः॥ १६४ ॥
गृह्णन् दोषानसद्भूतान् भूतानपवदन् गुणान्।
मैत्रीं न लभते धीमान् सत्त्वात्मसमदर्शिकाम्॥ १६५ ॥
तच्छ्रवाच्चयते त्वस्य प्रोत्साहः शास्तृगौरवम्।
प्रज्ञा ज्ञानं महामैत्री पञ्चधर्मोदयात्ततः॥ १६६ ॥

निरवज्ञः समप्रेक्षी निर्दोषो गुणवानसौ।
आत्मसत्त्वसमस्नेहः क्षिप्रमाप्नोति बुद्धताम्॥ १६७ ॥

इसके अश्रवण के कारण बोधि में चित्त व्यवस्थित नहीं होता है। कुछ नीच चित्त युक्त व्यक्तियों के लिए आत्मा के अब ज्ञान दोषों के कारण बोधिचित्त के उदय होने पर भी मैं श्रेष्ठ हूँ इस अहं के कारण बोधि अनुत्पन्नों के प्रति हीन संज्ञा उत्पन्न होती है। ऐसे बुद्धि वालों को सम्यक् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती अतः अभूत का ग्रहण और भूत का अग्रहण होता है। अभूत ही सत्त्वों के दोष हैं, क्योंकि कृत्रिम आगन्तुक मलों के कारण और भूत उनके लिए दोष भी है जो नैरात्म्य है और शुद्धि प्रकृति के गुण हैं।

असत् दोषों का ग्रहण, यथार्थ को ग्रहण करना और उनकी निन्दा करना इस प्रकार सत्त्व अपने समदर्शी सत्त्वों का मैत्री भी प्राप्त नहीं कर सकते।

इस उपर्युक्त वक्तव्य से शास्ता के गौरव के प्रति उत्साह का वर्धन होगा और प्रज्ञा, ज्ञान और मैत्री की प्राप्ति होगी पाँच धर्मों के उदय के कारण। इसके बाद वह सत्त्व समदर्शी होगा, निर्दोष होगा, गुणवान् होगा। अपने समान प्राणियों में स्नेह भाव रखेगा इस प्रकार अति शीघ्रता से वह बुद्धत्व प्राप्त करेगा॥ १६१-१६७ ॥

इति रत्नगोत्रविभागे महायानोत्तरतन्त्रशास्त्रे तथागतगर्भाधिकारः प्रथमः परिच्छेदः श्लोकार्थसंग्रहव्याख्यानतः समाप्तः॥ १ ॥

इस प्रकार रत्न गोत्र विभाग नामक महायानोत्तर तन्त्र शास्त्र में तथागत गर्भाधिकार नामक प्रथम परिच्छेद श्लोकार्थ संग्रह का व्याख्या पूर्वक समाप्त हुआ।

अथ बोध्यधिकारो नाम द्वितीयः परिच्छेदः

उक्ता समला तथता। निर्मला तथतेदानीं वक्तव्या। तत्र कतमा निर्मला तथता यासौ बुद्धानां भगवतामनास्त्रवधातौ सर्वाकारमलविगमादाश्रयपरिवृत्तिर्व्यवस्थाप्यते। सा पुनरष्टौ पदार्थानधिकृत्य समासतो वेदितव्या। अष्टौ पदार्थाः कतमे।

समल तथता का व्याख्यान पूरा हुआ। निर्मल तथता की व्याख्या अब करना है। कौन सी निर्मल तथता है जो बुद्ध भगवान का अनास्त्रव धातु में सर्वाकार मल के न रहने से आश्रय परिवृत्ति की व्यवस्था की जाती है। उसे आठ पदार्थों के लेकर संक्षेप में जानना चाहिए। वे आठ पदार्थ कौन हैं।

शुद्धिः प्राप्तिर्विसंयोगः स्वपरार्थस्तदाश्रयः।
गम्भीर्यौदार्यमाहात्म्यं यावत्कालं यथा च तत्॥ १ ॥

शुद्धि, प्राप्ति, विसंयोग, स्व-परार्थ और उनका आश्रय, गाम्भीर्य, औदार्य और उनका महात्म्य यावत्काल यथावत् रूप से ज्ञेय हैं॥ १ ॥

इत्येतेऽष्टौ पदार्था यथासंख्यमनेन श्लोकेन परिदीपिताः। तद्यथा स्वभावार्थो हेत्वर्थः फलार्थः कर्मार्थो योगार्थो वृत्त्यर्थो नित्यार्थोऽचिन्त्यार्थः। तत्र योऽसौ धातुरविनिर्मुक्लक्लेशकोशस्तथागतगर्भ इत्युक्तो भगवता। तद्विशुद्धिराश्रयपरिवृत्तेः स्वभावो वेदितव्यः। यत आह। यो भगवन् सर्वक्लेशकोशकोटिगूढे तथागतगर्भे निष्काङक्षः सर्वक्लेशकोशविनिर्मुक्तेस्तथागतधर्मकायेऽपि स निष्काङक्ष इति। द्विविधं ज्ञानं लोकोत्तरमविकल्पं तत्पृष्ठलब्धं च। लौकिकलोकोत्तरज्ञानमाश्रयपरिवृत्तिहेतुः प्राप्तिशब्देन परिदीपितः। प्राप्यतेऽनेनेति प्राप्तिः। तत्फलं द्विविधम्। द्विविधो विसंयोगः क्लेशावरणविसंयोगो ज्ञेयावरणविसंयोगश्च।

यथाक्रमं स्वपरार्थसंपादनं कर्म। तदधिष्ठानसमन्वागमो योगः। त्रिभि-र्गाम्भीयौदार्यमाहात्म्यप्रभावितैर्बुद्धकायैर्नित्यमा भवगतेर चिन्त्येन प्रकारेण वर्तनं वृत्तिरिति। उद्दानम्।

वे आठ पदार्थ क्रमशः इस श्लोक से परिदीपित किए गए हैं। जैसा कि स्वभावार्थ, हेत्वर्थ, फलार्थ, कर्मार्थ, योगार्थ, वृत्यर्थ, नित्यार्थ और अचिन्त्यार्थ। यहाँ जो यह धातु है उसे भगवान् ने अविनिर्मुक्त-क्लेश-कोश-तथागत गर्भ कहा है। उसकी विशुद्धि आश्रय परावृत्ति से होती है यही इसका स्वभाव है। इसीलिए कहते हैं। हे भगवन्! सर्व-क्लेश-कोटि गूढ तथागत गर्भ में आकाङ्क्षारहित, सर्वक्लेश कोश विनिर्मुक्ति से तथागत धर्मकाय में भी वह निष्काङ्क्ष ही है। दो प्रकार का ज्ञान-लोकोत्तर अविकल्प तथा उसके पृष्ठ गामी। लौकिक और लोकोत्तर ज्ञान आश्रय परिवृत्ति का हेतु है जिसे प्राप्ति शब्द से परिदीपित किया गया है। जिससे प्राप्त किया जाता है वही प्राप्ति है। उसका फल दो प्रकार का है। विसंयोग दो प्रकार का है क्लेशवरण विसंयोग और ज्ञेयावरण विसंयोग। क्रमशः स्वपरार्थ संपादन कर्म और उसका अधिष्ठान समन्वागम योग। तीनों से गाम्भीर्य-औदार्य महात्म्य से प्रभावित बुद्ध कायों से अवगति के अचिन्त्य प्रकार से रहना है वृत्ति है। यह कथन है।

स्वभावहेतुफलतः कर्मयोगप्रवृत्तितः।
तन्नित्याचिन्त्यतश्चैव बुद्धभूमिष्ववस्थितिः॥ २ ॥

स्वभाव हेतु फल द्वारा, कर्मयोग की प्रवृत्ति से, नित्य और अचिन्त्य से भी बुद्ध भूमि में अवस्थिति कहा गया है॥ २ ॥

तत्र स्वभावार्थं हेत्वर्थं चारभ्य बुद्धत्वे तत्प्राप्त्युपाये च श्लोकः।

स्वभावार्थ और हेत्वर्थ को लेकर बुद्धत्व में उसकी प्राप्ति का उपाय हेतु यह श्लोक है।

बुद्धत्वं प्रकृतिप्रभास्वरमिति प्रोक्तं यदागन्तुक-
क्लेशज्ञेयघनाभ्रजालपटलच्छन्नं रविव्योमवत्।
सर्वैर्बुद्धगुणैरुपेतममलैर्नित्यं ध्रुवं शाश्वतं
धर्माणां तदकल्पनप्रविचयज्ञानाश्रयादाप्यते॥ ३ ॥

बुद्धत्व प्रकृतिप्रभावस्वर है यह जो कहा है उसमें आगन्तुक क्लेश आवरण तथा ज्ञेयावरण रूपी मेघ के घटाओं के जाल से आ%छादित सूर्य के तरह ही है। उस आच्छादन को, समग्र बुद्धगुणों से युक्त निर्मल, नित्य, ध्रुव, शाश्वत तत्त्व को धर्मों के अकल्पनात्मक प्रविचयरूप ज्ञान के द्वारा देखा जा सकता है॥ ३ ॥

अस्य श्लोकस्यार्थः समासेन चतुर्भिः श्लोकैर्वेदितव्यः।

इस श्लोक का अर्थ संक्षेप में चार श्लोकों से जानना चाहिए।

बुद्धत्वमविनिर्भागशुक्लधर्मप्रभावितम्।
आदित्याकाशवज्ज्ञानप्रहाणद्वयलक्षणम्॥ ४ ॥

अविनिर्भाग तथा शुक्लधर्म से प्रभावित बुद्धत्व है जो सूर्य के तरह, आकाश के तरह तथा ज्ञान प्रहाण द्वय लक्षणयुक्त भी है॥ ४ ॥

गङ्गातीररजोऽतीतैर्बुद्धधर्मैः प्रभास्वरैः।
सर्वैरकृतकैर्युक्तमविनिर्भागवृत्तिभिः॥ ५ ॥

गङ्गातीर में अवस्थित रजकणों के समान सङ्ख्यायुक्त सभी प्रभास्वर बुद्ध धर्मों से, जो अकृतक लक्षण सम्पन्न हैं और अभिनिर्भाग वृत्तियों से युक्त बुद्धत्व है॥ ५ ॥

स्वभावापरिनिष्पत्तिव्यापित्वागन्तुकत्वतः।
क्लेशज्ञेयावृतिस्तस्मान्मेघवत् समुदाहृता॥ ६ ॥

स्वभाव-अपरिनिष्पन्न व्यापी होने से, और आगन्तुक होने से क्लेशवरण और ज्ञेयावरण से संयुक्त मेघ के तरह ही बुद्धत्व है॥ ६ ॥

द्वयावरणविश्लेषहेतुर्ज्ञानद्वयं पुनः।
निर्विकल्पं च तत्पृष्ठलब्धं तज्ज्ञानमिष्यते॥ ७ ॥

दो आवरणों के विश्लेष (हटाने से) के द्वारा फिर दो ज्ञान निर्विकल्प और उसके पृष्ठभावी ज्ञान ही इष्ट है॥ ७ ॥

यदुक्तमाश्रयपरिवृत्तेः स्वभावो विशुद्धिरिति तत्र विशुद्धिः समासतो द्विविधा। प्रकृतिविशुद्धिर्वैमल्यविशुद्धिश्च। तत्र प्रकृतिविशुद्धिर्या विमुक्तिर्न च विसंयोगः प्रभास्वरायाश्चित्तप्रकृतेरागन्तुकमलाविसंयोगात्। वैमल्यविशुद्धिर्विमुक्तिर्विसंयोगश्च वार्यादीनामिव रजोजलादिभ्यः

प्रभास्वरायाश्चित्तप्रकृतेरनवशेषमागन्तुक-मलेभ्यो विसंयोगात्। तत्र वैमल्यविशुद्धौ फलार्थमारभ्य द्वौ श्लोकौ।

उपर्युक्त आश्रयपरावृत्ति का स्वभाव ही विशुद्धि ही है। विशुद्धि संक्षेप में दो प्रकार का है। प्रकृति विशुद्धि और वैमल्यविशुद्धि। प्रकृति विशुद्धि ही विमुक्ति है किन्तु विसंयोग नहीं है। क्योंकि प्रभास्वर चित्त प्रकृति का आगन्तुक मलों से अविसंयोग है। वैमल्य विशुद्धि विमुक्ति और संयोग पानी का धूल में मिलने जैसा प्रभास्वर चित्त प्रकृति के अनवशेष आगन्तुक मलों से विसंयोग होता है। वैमल्यविशुद्धि में फलार्थ के लिए दो श्लोक है।

ह्रद इव विमलाम्बुः फुल्लपद्मक्रमाढ्यः
सकल इव शशाङ्को राहुवक्त्राद्विमुक्तः।
रविरिव जलदादिक्लेशनिर्मुक्तरश्मि-
र्विमलगुणयुतत्वाद्भाति मुक्तं तदेव॥ ८ ॥

स्वच्छ जलयुक्त एवं प्रफुल्लित पद्म से ढके हुए सरोवर के तरह, राहु के मुख निकला हुआ पूर्ण चन्द्र के तरह, मेघ, धूल आदि क्लेश निर्मुक्त सूर्य के तरह विशिष्ट शुद्ध गुणों से भरा हुआ मुक्त व्यक्ति होता है॥ ८ ॥

मुनिवृषमधुसारहेमरत्न-प्रवरनिधानमहाफलद्रुमाभम्।
सुगतविमलरत्नविग्रहाग्र-क्षितिपतिकाञ्चनबिम्बवच्चिनत्वम्॥९॥

मुनि, वृष, मधु, अन्न, सुवर्ण, निधान, फलयुक्त वृक्ष, सुगत विमल रत्न विग्रह, राजा, काञ्चन बिम्ब के तरह ही जिनत्व है॥ ९ ॥

अस्य खलु श्लोकद्वयस्यार्थः समासतोऽष्टाभिः श्लोकैर्वेदितव्यः।

· इन दो श्लोकों का अर्थ संक्षेप में आठ श्लोकों से जानना चाहिए।

रागाद्यागन्तुकक्लेशशुद्धिरम्बुह्रदादिवत्।
ज्ञानस्य निर्विकल्पस्य फलमुक्तं समासतः॥ १० ॥

राग आदि आगन्तुक क्लेशों की शुद्धि जलह्रद के तरह ही निर्विकल्प ज्ञान का फल संक्षेप में बताया गया है॥ १० ॥

सर्वाकारवरोपेतबुद्धभावनिदर्शनम्।
फलं तत्पृष्ठलब्धस्य ज्ञानस्य परिदीपितम्॥ ११ ॥

सर्वाकार जो उत्तम बुद्धभाव का निदर्शन है और उसका पृष्ठभावी ज्ञान का फल यही परिदीपित किया गया है॥ ११ ॥

स्वच्छाम्बुह्रदवद्रागरजः कालुष्यहानितः।
विनेयाम्बुरुहध्यानवार्यभिष्यन्दनाच्च तत्॥ १२ ॥

स्वच्छ सरोवर के तरह राग-रज-कालुष्य के नाश से विनेय (शिष्य) रूपी जल कमल के निष्यन्द (रस) के तरह ही वह बुद्धत्व है॥ १२ ॥

द्वेषराहुप्रमुक्तत्वान्महामैत्रीकृपांशुभिः।
जगत्स्फरणतः पूर्णविमलेन्दूपमं च तत्॥ १३ ॥

द्वेष रूपी राहु से मुक्त होने से, महान् मैत्री कृपा किरणों से व्याप्त, जगत् को प्रकाशित करने वाले पूर्ण तथा स्वच्छ चन्द्र के तरह ही वह ज्ञानी होता है॥ १३ ॥

मोहाभ्रजालनिर्मोक्षाच्चगति ज्ञानरश्मिभिः।
तमोविधमनात्तच्च बुद्धत्वममलार्कवत्॥ १४ ॥

मोह रूपी मेघों के हट जाने से, जगत् में ज्ञानरश्मियों के द्वारा प्रकाशित करने से, अन्धकार को हटाने से स्वच्छ सूर्य के तरह ही वह बुद्धत्व है ॥१४ ॥

अतुल्यतुल्यधर्मत्वात् सद्धर्मरसदानतः।
फल्गुव्यपगमात्तच्च सुगतक्षौद्रसारवत्॥ १५ ॥

अतुल्य-समान-धर्मत्व से, सद्धर्म रूपी रसायन के दान से, तुच्छ वस्तु को हटाने से, अति मधु द्राक्षा के रस के तरह ही बुद्धत्व है॥ १५ ॥

पवित्रत्वाद्गुणद्रव्यदारिद्र्यविनिवर्तनात्।
विमुक्तिफलदानाच्च सुवर्णनिधिवृक्षवत्॥ १६ ॥

पवित्रता से, गुण-द्रव्यों के दरिद्रता के हटने से, विमुक्ति रूपी फल के देने से भी वह बुद्धत्व सुवर्ण निधि (रत्न) के तरह ही है॥ १६ ॥

धर्मरत्नात्मभावत्वाद् द्विपदाग्राधिपत्यतः।
रूपरत्नाकृतित्वाच्च तद्रत्ननृपबिम्बवत्॥ १७ ॥

धर्म रत्न रूपी अपनापन होने से, मनुष्यों में अग्र स्थान प्राप्त करने के कारण से, रूप रत्न और आकृति होने से वह बुद्धत्व रत्न, नृप और सुवर्ण बिम्ब के तरह ही है॥ १७ ॥

यत्तु द्विविधं लोकोत्तरमविकल्पं तत्पृष्ठलब्धं च ज्ञानमाश्रयपरि-वृत्तेर्हेतुर्विसंयोगफलसंज्ञितायाः। तत्कर्म स्वपरार्थसंपादनमित्युक्तम्। तत्र कतमा स्वपरार्थसंपत्। या सवासनक्लेशज्ञेयावरणविमोक्षादना-वरणधर्मकायप्राप्तिरियमुच्यते स्वार्थसंपत्तिः। या तदूर्ध्वमा लोकादनाभोगतः कायद्वयेन संदर्शनदेशनाविभुत्वद्वयप्रवृत्तिरियमुच्यते परार्थसंपत्तिरिति। तस्यां स्वपरार्थसंपत्तौ कर्मार्थमारभ्य त्रयः श्लोकाः।

वह दो तरह का ज्ञान एक लोकोत्तर अविकल्प और दूसरा उसका फल वे दोनों ही आश्रय परिवृत्ति के हेतु रूप विसंयोग फल संज्ञा से ज्ञात हैं। वह कर्म स्व और पर के लिए संपादनीय है। वह स्वपरार्थ संपत् कौन सी है। जो ऊर्ध्व में अवस्थित लोक से अनाभोग द्वारा दो कायों से संदर्शन-देशना विभुत्व - द्वय प्रवृत्ति ही परार्थ संपत् कहा गया है। उस परार्थ सम्पत्ति में कर्मार्थ को बताने के लिए तीन श्लोक हैं।

अनास्त्रवं व्याप्यविनाशधर्मि च ध्रुवं शिवं शाश्वतमच्युतं पदम्।
तथागतत्वं गगनोपमं सताम् षडिन्द्रियार्थानुभवेषु कारणम्।।१८।।

अनास्त्रव, व्यापक, अविनाश धर्मी, ध्रुव, शिव, शाश्वत और अच्युत पद ही तथागतत्व जो गगनोपम है वह ६ इन्द्रियों के अनुभव के प्रयोजन में कारण कहा गया है॥ १८ ॥

विभूतिरूपार्थविदर्शने सदा निमित्तभूतं सुकथाशुचिश्रवे।
तथागतानां शुचिशीलजिघ्रणे महार्यसद्धर्मरसाग्रविन्दने।। १९ ।।

ऐश्वर्यात्मक अर्थ के दर्शन में सदैव निमित्त भूत पवित्र सुन्दर कथा के श्रवण तथा तथागतों के पवित्र शील के सूँघने के लिए महान् आर्य सद्धर्म के अग्ररस को जानने के लिए यही एक उपाय है॥ १९ ॥

समाधिसंस्पर्शसुखानुभूतिषु स्वभावगाम्भीर्यनयाश्वबोधने।
सुसूक्ष्मचिन्तापरमार्थगह्वरं तथागतव्योम निमित्तवर्जितम्।। २० ।।

समाधि संस्पर्श सुख की अनुभूति, स्वभावगाम्भीर्य नय का अवबोधन, सुसूक्ष्म चिन्तन रूपी परमार्थ गुफा रूप तथागत व्योम है जहाँ समग्र निमित्त नहीं रहते हैं॥ २० ॥

अस्य खलु श्लोकत्रयस्यार्थः समासतोऽष्टाभिः श्लोकैर्वेदितव्यः।

तीन श्लोकों का अर्थ संक्षेप में अष्ट श्लोकों से जानना चाहिए।

कर्म ज्ञानद्वयस्यैतद्वेदितव्यं समासतः।
पूरणं मुक्तिकायस्य धर्मकायस्य शोधनम्॥ २१ ॥
विमुक्तिधर्मकायौ च वेदितव्यौ द्विरेकधा।
अनास्त्रवत्वाद्व्यापित्वादसंस्कृतपदत्वतः॥ २२ ॥
अनास्त्रवत्वं क्लेशानां सवासननिरोधतः।
असङ्गाप्रतिघातत्वाज्ज्ञानस्य व्यापिता मता॥ २३ ॥
असंस्कृतत्वमत्यन्तमविनाशस्वभावतः।
अविनाशित्वमुद्देशस्तन्निर्देशो ध्रुवादिभिः॥ २४ ॥
नाशश्चतुर्विधो ज्ञेयो ध्रुवत्वादिविपर्ययात्।
पूतिर्विकृतिरुच्छित्तिरचिन्त्यनमनच्युतिः॥ २५ ॥
तदभावाद् ध्रुवं ज्ञेयं शिवं शाश्वतमच्युतम्।
पदं तदमलज्ञानं शुक्लधर्मास्पदत्वतः॥ २६ ॥
यथानिमित्तमाकाशं निमित्तं रूपदर्शने।
शब्दगन्धरसस्पृश्यधर्माणां च श्रवादिषु॥ २७ ॥
इन्द्रियार्थेषु धीराणामनास्त्रवगुणोदये।
हेतुः कायद्वयं तद्वदनावरणयोगतः॥ २८ ॥

ज्ञान द्वय (दो ज्ञानों का) के कर्म संक्षेप में जानना चाहिए। वह है मुक्तिकाय की पूर्ति तथा धर्मकाय का परिशोधन। विमुक्तिकाय और धर्मकाय दो और एक से जानने चाहिए। अनास्त्रव, व्यापक और असंस्कृत पदों के द्वारा ही वर्णित हैं। क्लेशों को अनास्त्रव का अर्थ है वासनाओं का निरोध। और असङ्ग अप्रतिघा तथा ज्ञान की व्यापकता से यह होता है।

असंस्कृतत्व और अत्यन्त अविनाशी स्वभाव के कारण, अविनाशित्व यहाँ उद्देश है और ध्रुव से उसका निर्देश किया गया है।

नाश चार प्रकार का है, ध्रुव और अविपर्यय के कारण तथा पूर्ति - विकृति, उच्छित्ति, अचिन्त्य तथा नमनच्युति ही है।

उसके अभाव के कारण ध्रुव, शिव, शाश्वत तथा अच्युत पद ही वह अमल ज्ञान है जिसमें शुक्लधर्मों का निवास होता है।

अनिमित्त आकाश भी जैसे रूप देखने से निमित्त हो जाता है और शब्द, गन्ध, रस और स्पृश्य धर्मों के ग्रहण में ही यही स्थिति है।

धीर व्यक्तियों के इन्द्रिय और उनके विषयों में अनास्रव गुणों के उदय होने पर वही कायद्वय का हेतु (कारण) हो जाता है उसी प्रकार अनवरण योग से भी होता है॥ २१-२८॥

यदुक्तमाकाशलक्षणो बुद्ध इति तत्पारमार्थिकमावेणिकं तथागतानां बुद्ध-लक्षणमभिसंधायोक्तम्। एवं ह्याह। यद्येतद्द्वात्रिंशन्म-हापुरुषलक्षणैस्तथागतो द्रष्टव्योऽभविष्यत्तद्राजापि चक्रवर्ती तथागतोऽभविष्यदिति। तत्र परमार्थलक्षणे योगार्थमारभ्य श्लोकः।

जो यह कहा है कि आकाश लक्षण बुद्ध हैं यह कथन पारमार्थिक रूप में तथागतों का बुद्ध लक्षण बताया गया है। ऐसा ही बताते हैं। यदि ३२ महापुरुषों के लक्षणों से तथागत को जाना जाय तो कोई चक्रवर्ती राजा भी तथागत हो जाएगा। यहाँ परमार्थ लक्षण में योगार्थ के लिए यह श्लोक है।

अचिन्त्यं नित्यं च ध्रुवमथ शिवं शाश्वतमथ
प्रशान्तं च व्यापि व्यपगतविकल्पं गगनवत्।
असक्तं सर्वत्राप्रतिघपुरुषस्पर्शविगतं
न दृश्यं न ग्राह्यं शुभमपि च बुद्धत्वममलम्॥ २९ ॥

अचिन्त्य, नित्य, ध्रुव, शिव, शाश्वत, प्रशान्त, व्यापक, अविकल्प है आकाश के तरह। वह असङ्ग, सर्वत्र अप्रतिघ, परुष-स्पर्श रहित वह पवित्र बुद्धत्व न दृश्य है, न ग्राह्य है जो अत्यन्त शुभ भी है॥ २९ ॥

अथ खल्वस्य श्लोकस्यार्थः समासतोऽष्टाभिः श्लोकैर्वेदितव्यः।

इस श्लोक का अर्थ संक्षेप में आठ श्लोकों से जानना चाहिए।

विमुक्तिधर्मकायाभ्यां स्वपरार्थो निदर्शितः।
स्वपरार्थाश्रये तस्मिन् योगोऽचिन्त्यादिभिर्गुणैः॥ ३० ॥
अचिन्त्यमनुगन्तव्यं त्रिज्ञानाविषयत्वतः।
सर्वज्ञज्ञानविषयं बुद्धत्वं ज्ञानदेहिभिः॥ ३१ ॥

श्रुतस्याविषयः सौक्ष्म्याच्चिन्तायाः परमार्थतः।
लौक्यादिभावनायाश्च धर्मतागह्वरत्वतः॥ ३२ ॥
दृष्टपूर्वं न तद्यस्माद्बालैर्जात्यन्धकायवत्।
आर्यैश्च सूतिकामध्यस्थितबालार्कबिम्बवत्॥ ३३ ॥
उत्पादविगमान्नित्यं निरोधविगमाद्ध्रुवम्।
शिवमेतद्द्वयाभावाच्छाश्वतं धर्मतास्थितेः॥ ३४ ॥
शान्तं निरोधसत्यत्वाद्व्यापि सर्वावबोधतः।
अकल्पमप्रतिष्ठानादसक्तं क्लेशहानितः॥ ३५ ॥
सर्वत्राप्रतिघं सर्वज्ञेयावरणशुद्धितः।
परुषस्पर्शनिर्मुक्तं मृदुकर्मण्यभावतः॥ ३६ ॥
अदृश्यं तदरूपित्वादग्राह्यमनिमित्ततः।
शुभं प्रकृतिशुद्धत्वादमलं मलहानितः॥ ३७ ॥

विमुक्तिकाय और धर्मकाय से क्रमशः स्वार्थसम्पत् और परार्थ सम्पत् जानना चाहिए। उनके सिद्ध हो जाने पर उस व्यक्ति में अचिन्त्य गुणों के साथ बुद्धत्व गुण रूप योग प्रकट हो जाता है। तीन ज्ञानों का अविषय होने से सर्वज्ञ का ज्ञान विषय, जो बुद्धत्व है देह धारियों के लिए अचिन्त्य कहा गया है।

सूक्ष्म होने से ज्ञान का अविषय, पारमार्थिक होने से चिन्ता का अविषय, धर्मता के गह्वर (गुफा) होने से लौकिक भावना का भी अविषय है।

बालों द्वारा वह कभी भी नहीं देखा गया है जैसाकि – जन्म से ही अन्धों के तरह और आर्यों ने भी नहीं देखा है जैसे कि प्रभातकालीन बादलों से घिरा हुआ बाल–सूर्य का बिम्ब हो।

उत्पत्ति न होने से वह नित्य है। निरोध न होने से ध्रुव है। द्वय के न होने से शिव है धर्मता के स्थिति के कारण शाश्वत भी है।

निरोध सत्य के होने से शान्त है, सर्व का अवबोध होने से व्यापक है, अप्रतिष्ठित होने से अकल्पनीय है, क्लेशों के न होने से अनासक्त भी है।

सर्व ज्ञेयावरणों के शुद्धि के कारण व्यापक और अप्रतिघ है। कोमलता होने से कठोरता भी बुद्धत्व में नहीं है। अरूप होने से अदृश्य है, अनित्तों के

कारण अग्राह्य, प्रकृति से ही शुद्ध होने से शुभ और मलों के नाश होने से अमल यह बुद्धत्व है। ॥ ३०-३७॥

यत्पुनरे तदाकाशवदसंस्कृतगुणाविनिर्भागवृत्त्यापि तथागतत्वमाभवगतेर-चिन्त्यमहोपायकरुणाज्ञानपरिकर्मविशेषेण जगद्धितसुखाधाननिमित्तममलैस्त्रिभिः स्वभाविकसांभोगिकनैर्माणिकैः कायैर-नुपरतमनुच्छिन्नमनाभोगेन प्रवर्तत इति द्रष्टव्यमावेणिकधर्म-युतत्वादिति। तत्र वृत्त्यर्थमारभ्य बुद्धकायविभागे चत्वारः श्लोकाः।

और भी, यह बुद्धत्व, आकाश के तरह असंस्कृत गुणों से, अविनिर्भाग व्युत्पत्ति के कारण, वह तथागतत्व भवगति के अग्रिम काल तक अचिन्त्य, महा उपाय, करुणा, ज्ञान-परिकर्म विशेष के कारण, जगत् के हित और सुख साधनों के निमित्त तीन पवित्र - स्वभाव काय - संभोग काय - निर्माण कायों के द्वारा अनुपरत, अनुच्छिन्न, और अनाभोग से प्रवृत्त होता है यह जानना चाहिए क्योंकि उसमें अनन्त धर्म विद्यमान हैं। यहाँ वृत्यर्थ के लिए बुद्धकाय विभाग में चार श्लोक हैं।

अनादिमध्यान्तमभिन्नमद्वयं त्रिधा विमुक्तं विमलाविकल्पकम्।
समाहिता योगिनस्तत्प्रयत्नाः पश्यन्ति यं धर्मधातुस्वभावम्॥३८॥

आदि, मध्य और अन्तरहित, अभिन्न, अद्वय तथा तीन प्रकार से मुक्त, विमल एवं अविकल्प स्वरूप धर्मधातु का स्वभाव है, जिसे प्रयत्नशील होकर समाधि में प्रविष्ट योगी ही उसे देख सकते हैं॥ ३८ ॥

अमेयगङ्गासिकतातिवृत्तै-र्गुणैरचिन्त्यैरसमैरुपेतः।
सवासनोन्मूलितसर्वदोष-स्तथागतानाममलः स धातुः॥३९॥

असङ्ख्क गङ्गानदी के बालुकाओं के समान अनन्त असमान गुणों से युक्त, समस्त वासनाओं के उन्मूलन के कारण दोष रहित वह तथागत धातु अत्यन्त पवित्र निर्मल कहा गया है॥ ३९ ॥

विचित्रसद्धर्ममयूखविग्रहै-र्जगद्विमोक्षार्थसमाहृतोद्यमः।
क्रियासु चिन्तामणिराजरत्नव-द्विचित्रभावो न च तत्स्वभाववान्॥४०॥

विचित्र सद्धर्म रूप किरणों से युक्त होकर संसार के कल्याण के लिए उद्यम में लगा हुआ, साथ ही चिन्तामणि राजरत्न के तरह क्रियाओं में लगा हुआ, विचित्र भाव भङ्गिमा से युक्त है किन्तु वह स्वभाव उसमें नहीं है ॥४०॥

लोकेषु यच्छान्तिपथावतार-प्रपाचनाव्याकरणे निदानम्।
बिम्बं तदप्यत्र सदावरुद्ध-माकाशधाताविव रूपधातुः॥४१॥

संसार में जो शान्ति के पथ का अवतार है उसका आदि कारण स्वरूप जो बिम्ब है वही बुद्ध बिम्ब है, वह भी हमेशा अवरुद्ध है जैसा कि रूप धातु आकाश धातु में अवरुद्ध (लगा हुआ) होता है॥ ४१ ॥

एषां खलु चतुर्णां श्लोकानां पिण्डार्थो विंशतिश्लोकैर्वेदितव्यः।

इन चार श्लोकों का पिण्डार्थ २० श्लोकों से जानना चाहिए।

यत्तद्बुद्धत्वमित्युक्तं सर्वज्ञत्वं स्वयंभुवाम्।
निर्वृतिः परमाचिन्त्यप्राप्तिः प्रत्यात्मवेदिता॥ ४२ ॥

स्वयंभुवों का जो बुद्धत्व और सर्वज्ञत्व कहा गया है, वह निर्वृति (निर्वाण) है, अचिन्त्य परम प्राप्ति है और प्रत्यात्मवेद्य भी है॥ ४२ ॥

तत्प्रभेदस्त्रिभिः कायैर्वृत्तिः स्वाभाविकादिभिः।
गाम्भीर्यौदार्यमाहात्म्यगुणधर्मप्रभावितैः॥ ४३ ॥

उसका तीन कायों से भेद किया जाता है - जो स्वाभाविक, गाम्भीर्य और औदार्य के रूप में हैं, वे महात्म्य, गुण तथा धर्मों से प्रभावित हैं॥ ४३ ॥

तत्र स्वाभाविकः कायो बुद्धानां पञ्चलक्षणः।
पञ्चाकारगुणोपेतो वेदितव्यः समासतः॥ ४४ ॥

स्वाभाविक काय जो बुद्धों का है वह पाँच लक्षणों से परिसम्पन्न है और पाँच आकारों के गुणों से पूर्ण है संक्षेप में यह जानना चाहिए॥ ४४ ॥

असंस्कृतमसंभिन्नमन्तद्वयविवर्जितम्।
क्लेशज्ञेयसमापत्तित्रयावरणनिःसृतम्॥ ४५ ॥

असंस्कृत, अभिन्न, दो अन्तों से रहित, क्लेश, ज्ञेय और समापत्ति रूप तीन आवरणों से रहित भी है॥ ४५ ॥

वैमल्यादविकल्पत्वाद्योगिनां गोचरत्वतः।
प्रभास्वरं विशुद्धं च धर्मधातोः स्वभावतः॥ ४६ ॥

विमल होने से, अविकल्पित होने से जो योगियों के ज्ञान का विषय है। धर्मधातु के स्वभावयुक्त होने से प्रभास्वर तथा विशुद्ध भी है॥ ४६ ॥

अप्रमेयैरसंख्येयैरचिन्त्यैरसमैर्गुणैः।
विशुद्धिपारमीप्राप्तैर्युक्तं स्वाभाविकं वपुः॥ ४७ ॥

वह (बुद्ध का स्वाभाविक काय) अप्रमेय, असङ्ख्य, अचिन्त्य, असमान गुणों से युक्त है तथा विशुद्ध-पारमिता के प्राप्ति से निर्मल स्वाभाविक काय है॥ ४७ ॥

उदारत्वादगण्यत्वात् तर्कस्यागोचरत्वतः।
कैवल्याद्वासनोच्छित्तेरप्रमेयादयः क्रमात्॥ ४८ ॥

इस शरीर में क्रमशः कैवल्य (निर्वाण) गुणों के कारण, वासनाओं के न होने से, अप्रमेय होने से, उदार, अगण्य एवं तर्क के अगोचर होने से वे सभी गुण रहते हैं॥ ४८ ॥

विचित्रधर्मसंभोगरूपधर्मावभासतः।
करुणाशुद्धिनिष्यन्दसत्त्वार्थास्त्रंसनत्वतः॥ ४९ ॥
निर्विकल्पं निराभोगं यथाभिप्रायपूरितः।
चिन्तामणिप्रभावर्द्धेः सांभोगस्य व्यवस्थितिः॥ ५० ॥
देशने दर्शने कृत्यास्त्रंसनेऽनभिसंस्कृतौ।
अतत्स्वभावाख्याने च चित्रतोक्ता च पञ्चधा॥ ५१ ॥
रङ्गप्रत्ययवैचित्र्यादतद्भावो यथा मणेः।
सत्त्वप्रत्ययवैचित्र्यादतद्भावस्तथा विभोः॥ ५२ ॥
महाकरुणया कृत्स्नं लोकमालोक्य लोकवित्।
धर्मकायादविरलं निर्माणैश्चित्ररूपिभिः॥ ५३ ॥
जातकान्युपपत्तिं च तुषितेषु च्युतिं ततः।
गर्भावक्रमणं जन्म शिल्पस्थानानि कौशलम्॥ ५४ ॥
अन्तःपुररतिक्रीडां नैष्क्रम्यं दुःखचारिकाम्।
बोधिमण्डोपसंक्रान्तिं मारसैन्यप्रमर्दनम्॥ ५५ ॥

ॐ ह्रीं बटुकनाथ चण्डमहारोषण हूँ फट्। इस मन्त्र पूर्वक तर्जनी से डराने से कुत्ता भाग जाता है॥ ११ ॥

ॐ यमान्तक ह्रीः स्त्रीः हूं हूं हूं फट् फट् त्रासय त्रासय चण्ड प्रचण्ड हूं फट्। इत्य् अनेन महीषः पलायते॥ १२ ॥

ॐ यमान्तक ह्रीः स्त्रीः हूं हूं हूं फट् फट् त्रासय त्रासय चण्ड प्रचण्ड हूं फट्। इस मन्त्र से भैंसा भागता है॥ १२ ॥

ॐ यममर्दने मर्दय मर्दय चण्डमहारोषण हूं फट्। इत्य् अनेन पापरोगः पलायते॥ १३ ॥

ॐ यममर्दने मर्दय मर्दय चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र से पापरोग समाप्त होता है॥ १३ ॥

ॐ क्रोशणे संक्रोशणे भेदनाय हूं फट्। [इत्य] अभिमन्त्रयोदकं दद्यात्। शूलं पलायते॥ १४ ॥

ॐ त्रासने मोहनाय हूं फट्। इत्य् अनेन शिखाबन्धनाद् रक्षा॥१५॥

ॐ त्रासने मोहनाय हूं फट्। इस मन्त्र से शिखा बन्धन से रक्षा होती है॥ १५ ॥

ॐ अचले संचले अमुकस्य मुखं कीलय हूं फट्। मदनेन चतुरङ्गुलपुत्तलीं कृत्वा भुर्जे हरितालेन लिखित्वा तस्या मुखे प्रक्षिप्य कीलयेत्। चतुःपथे निखनेत्। प्रतिवादिमुखं कीलयति॥ १६ ॥

ॐ अचले संचले अमुकस्य मुखं कीलय हूं फट्। इस मन्त्र को भोजपत्र में लिखकर हरिताल से उसके मुख पर प्रक्षिप्त करने से वह बोल नहीं सकता। चौराहे पर गाड देने से प्रतिवादी का मुख बन्द हो जाता है॥ १६ ॥

ॐ सर्वमारभञ्जने अमुकस्य पादौ कीलय हूं फट्। पूर्ववद् हृदये प्रक्षिप्य पादौ कीलयेत्। गतिम् आगतिं स्तम्भयति॥ १७ ॥

ॐ सर्वमारभञ्जने अमुकस्य पादौ कीलय हूं फट्। इस मन्त्र से भी गति और आगति रुक जाती है॥ १७ ॥

ॐ विकृतानन परबलभञ्जने भञ्जय भञ्जय स्तम्भय वज्रपाशेन अमुकं ससैन्यं बन्ध बन्ध हूं फट् खः गः ह हा हि ही फें फें। ॐ

चण्डमहारोषण हूं फट्। पूर्ववत् प्रक्षिप्य सेनाधिपतेर् अष्टाङ्गानि कीलयेत्। चुल्ह्यां मध्ये अधोमुखीकृत्य निखनेत्। परसैन्यागमनं स्तम्भयति॥ १८ ॥

ॐ विकृतानन परबलभञ्जने भञ्जय भञ्जय स्तम्भय वज्रपाशेन अमुकं ससैन्यं बन्ध बन्ध हूं फट् खः गः ह हा हि ही फें फें। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र को चुले के नीचे गाडकर रख देने से दूसरे के सैनिक वहीं रुक जाते हैं॥ १८ ॥

ॐ दह दह पच पच मथ मथ ज्वर ज्वर ज्वालय ज्वालय शोषय शोषय गृह्ण गृह्ण ज्वल ज्वल। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट् स्वाहा। श्मशानवस्त्रे विषराजिकयाष्टाङ्गुलप्रमाणं देवदत्तम् अभिलिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयित्वा मदनपुत्तलिकाहृदि प्रक्षिप्य स्नुही काष्ठमध्ये प्रक्षिपेत्। ततः ॐ चण्डमहारोषण अमुकं ज्वरेण गृह्णापय हूं फट्। इति जपन् श्मशानाग्नौ तापयेत्। खदिरबदराग्नौ वा, शत्रुं ज्वालयति॥ १९ ॥

ॐ दह दह पच पच मथ मथ ज्वर ज्वर ज्वालय ज्वालय शोषय शोषय गृह्ण गृह्ण ज्वल ज्वल। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट् स्वाहा। श्मशानवस्त्रे विषराजिकयाष्टाङ्गुलप्रमाणं देवदत्तम् अभिलिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयित्वा मदनपुत्तलिकाहृदि प्रक्षिप्य स्नुही काष्ठमध्ये प्रक्षिपेत्। ततः ॐ चण्डमहारोषण अमुकं ज्वरेण गृह्णापय हूं फट्। इस मन्त्र को जपने से शत्रु जल जाता है॥ १९ ॥

ॐ जय जय पराजय निर्जितयन्त्रे ही ही हा हा स्फोटय स्फोटय उच्छादय उच्छादय शीघ्रं कर्म कुरु कुरु। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। श्मशानकर्पटे लिखित्वा नीलसूत्रेण वेष्ट्य बाहौ कण्ठे शिरसि कटौ वा धारयेत्। परयन्त्रं न भवति॥ २० ॥

ॐ जय जय पराजय निर्जितयन्त्रे ही ही हा हा स्फोटय स्फोटय उच्छादय उच्छादय शीघ्रं कर्म कुरु कुरु। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इसे श्मशान कर्पट में लिखकर नीलसूत्र से वेष्टन करके बाहु में, कण्ठ में, शिर में और कटि में धारण करें। परयन्त्र काम नहीं करता॥ २० ॥

ॐ चण्डमहारोषण ग्रस ग्रस ख ख खाहि खाहि शोषय शोषय मर मर मारय मारय अमुकं हूं फट्। श्मशानकर्पटे लिखित्वा पूर्ववत्

पुत्तलिकायां प्रक्षिप्याङ्गुलप्रमाणेनास्थिकीलकेन लोहकीलकेन वा कीलयित्वा श्मशाने अधोमुखीकृत्य निखनेत्। सप्ताहेन मारयति॥ २१ ॥

ॐ चण्डमहारोषण ग्रस ग्रस ख ख खाहि खाहि शोषय शोषय मर मर मारय मारय अमुकं हूं फट्। श्मशान के कपड़े में लिखकर पुत्तलिका में प्रक्षेपक्ष करके अङ्गुल प्रमाण से अस्थि के कील से अथवा लोहा के कील से कीलन करके श्मशान में अधोमुख करके गाड दे। एक सप्ताह में मर जाता है॥ २१ ॥

ॐ चण्डमहारोषण अमुकम् उच्चाटय हूं फट्। निम्बस्थकाकवासं गृहीत्वा श्मशानाग्निना दहयेत्। तद्भस्माष्टशताभिमन्त्रितं गृहपटले च प्रक्षिपेत्। उष्ट्रारुढं चारेन पाशेन बद्ध्वा दक्षिणं दिशं नीयमानं ध्यायात्। उच्चाटयति॥ २२ ॥

ॐ चण्डमहारोषण अमुकम् उच्चाटय हूं फट्। इस मन्त्र से उच्चाटन होता है॥ २२ ॥

ॐ द्वेषणे द्वेषवज्रे अमुकं अमुकेन विद्वेषय। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। युध्यमानकुक्कुरयोर् धूलिं गृहीत्वा साध्यप्रतिकृतिद्वयं हन्यात्। अन्योन्यं विद्वेषयति॥ २३ ॥

ॐ द्वेषणे द्वेषवज्रे अमुकं अमुकेन विद्वेषय। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र से एक दूसरे में झगड़े होते हैं – आपस में॥ २३ ॥

ॐ चण्डमहारोषण ह्रीं ह्रीं ह्रों घोररूपे चट प्रचट प्रचट हन हन घाटय घाटय हह हह प्रस्फुर प्रस्फुर प्रस्फारय प्रस्फारय कीलय कीलय जम्भय जम्भय स्तम्भय स्तम्भय अमुकं हूं फट्। भूर्जे कूर्मं समालिख्य तालकेन षडङ्गुलं चतुष्पादेषु ह्रईकारं प्लीकारं मुखमध्यतः। गर्ते विष्ठां ततो लिख्य साधकं तु पृष्ठतः परम्। मालामन्त्रेण संवेष्ट्य पूजास्तुत्या समारभेत्। इष्टकोपरि संन्यस्य कूर्मचटुना च्छादयेत्। रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य पाद प्राञ्चत निक्षिपेत्। ताडयेद् वामपादेनामुकं में वशम् आनय सप्तवारान्। शत्रुं सुखं स्तम्भयति॥ २४ ॥

ॐ चण्डमहारोषण ह्रीं ह्रीं ह्रों घोररूपे चट प्रचट प्रचट हन हन घाटय घाटय हह हह प्रस्फुर प्रस्फुर प्रस्फारय प्रस्फारय कीलय कीलय जम्भय

जम्भय स्तम्भय स्तम्भय अमुकं हूं फट्। इस मन्त्र से शत्रु का सुख नष्ट होता है॥ २४ ॥

ॐ चिलि मिलि ललिते हूं फट्। चक्षुःसंकोचनं नश्यति॥ २५ ॥

ॐ चिलि मिलि ललिते हूं फट्। इस मन्त्र से शत्रुओं के आँख बन्द नहीं होते॥ २५ ॥

ॐ च्छ्रीं च्छ्रीं च्छ्रीं शोषय शोष्य धारं बन्ध बन्ध। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। गवास्थिकीलं सप्ताङ्गुलप्रमाणम् अष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं गोष्ठे निखनेत्। क्षीरं न स्त्रवते॥ २६ ॥

ॐ च्छ्रीं च्छ्रीं च्छ्रीं शोषय शोष्य धारं बन्ध बन्ध। ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र से शत्रु के गायों का दूध नहीं निकलता है॥ २६ ॥

ॐ वज्रिणि वज्रं पातय सुरपतिर् आज्ञापयति। ज्वालय ज्वालय ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। वाल्मीकमृण्मयं वज्रं अष्टोत्तरशताभिमन्त्रितं पण्यागारे गोपयेत्। पण्यं नश्यति॥ २७ ॥

ॐ वज्रिणि वज्रं पातय सुरपतिर् आज्ञापयति। ज्वालय ज्वालय ॐ चण्डमहारोषण हूं फट्। इस मन्त्र से शुत्रु का व्यापार नष्ट हो जाता है॥ २७ ॥

ॐ ह्रीं क्लीं त्रं यूं यममथने आकड्ढ आकड्ढ क्षोभय क्षोभय सर्वकामप्रसाधने हूं हूं फट् फट् स्वाहा। भुर्जपत्रे लिखेद् देवं द्विभुजं कुङ्कुमसंनिभं पाशाङ्कुशहस्तं कामोत्कटभीषणम्। गजमदमद्य लक्तरक्तरजस्वलाकुङ्कुमैर् विदर्भयेत् मन्त्राक्षराणि। ॐ शिरसि ह्रीं हृदि क्लीं नाभौ त्रं मेढ्रे। ततो मालामन्त्रेणावेष्ट्य रक्तसूत्रेण संवृत्य स्त्रीपुरुषकपालसम्पुटे प्रक्षिप्य घृतमधुपूरिते मदनेन च वेष्टयित्वा रक्तसूत्रेण च शिरःस्थाने निखनेत्। वामपादेनाक्रम्य जपेत्। पञ्चविंशतिसहस्त्रेण पुरक्षोभा भवति॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं क्लीं त्रं यूं यममथने आकड्ढ आकड्ढ क्षोभय क्षोभय सर्वकामप्रसाधने हूं हूं फट् फट् स्वाहा। इस मन्त्र से शत्रु के नगर में तूफान खड़ा हो जाता है॥ २८॥

ॐ आकर्ष आकर्ष मोहय मोहय अमुकीं मे वशीकुरु स्वाहा। उदरकीटं सुचूर्णं कृत्वा शुक्रानामिकारक्ताभ्यां वटीं कृत्वाभिमन्त्र्य खाने

पाने दद्यात्। वशीकरोति॥ २६ ॥

ॐ आकर्ष आकर्ष मोहय मोहय अमुकीं मे वशीकुरु स्वाहा। इस मन्त्र से वशीकरण होता है॥ २६ ॥

उद्भ्रान्तपत्रौ भ्रमरस्य पक्षौ
द्वौ राजदन्तौ मृतकस्य माल्यम्।
अनेन चूर्णेनाव चूर्णिताङ्गी
पदे पदे धावति मूर्छिताङ्गी॥ ३० ॥

उड़ते हुए भ्रमर के दो पक्षो, दो राजा के दाँत, मृत की माला इस सबके चूर्ण से जिसको अभिमन्त्रित किया जाता है वह मू%र्छत होकर चरणों पर आकर गिर जाती है॥ ३० ॥

ॐ श्वेतगृधृणि खाहि विषं च रुषं च खः खः ह ह सः सः। ॐ चण्डमहासेनाज्ञापयति स्वाहा। अथवा। ॐ संकारिणि ध्रं हां हूं हं हः। सर्वविषं नाशयति॥ ३१ ॥

ॐ श्वेतगृधृणि खाहि विषं च रुषं च खः खः ह ह सः सः। ॐ चण्डमहासेनाज्ञापयति स्वाहा। अथवा। ॐ संकारिणि ध्रं हां हूं हं हः। इस मन्त्र से समग्र विष नष्ट हो जाता है॥ ३१ ॥

ॐ नागारि वामनहरः फट्। अभिमन्त्रितमृदा द्वारे चीरिकया वा सर्पाप्रवेशः॥ ३२ ॥

ॐ नागारि वामनहरः फट्। इस मन्त्र से सर्पों का घर में प्रवेश नहीं होता है॥ ३२ ॥

ॐ आणे काणे अमुकिं वशीकुरु स्वाहा। सुगन्धिश्वेतपुष्पदानाद् वशीकरणम्॥ ३३ ॥

ॐ आणे काणे अमुकिं वशीकुरु स्वाहा। इस मन्त्र से वशीकरण होता है॥ ३३ ॥

ॐ नमो वीतरागाय मैत्रेय सिंहलोचनि स्वाहा। उदकेनाभिमन्त्रितेन चक्षुःक्षालनात् तिमिरं हन्ति॥ ३४ ॥

ॐ नमो वीतरागाय मैत्रेय सिंहलोचनि स्वाहा। इस मन्त्र के प्रयोग से अन्धकार हट जाता है। आँख अच्छे होते हैं॥ ३४ ॥

ॐ सफर खः। चूर्णं खाद। नानुप्रभवति॥ ३५ ॥

ॐ सफर खः चूर्णं खाद। इस मन्त्र से कोई दबा नहीं सकता॥ ३५ ॥

ॐ आदित्यस्य रथवेगेन वासुदेवबलेन च गरुडपक्षपातेन भूम्यां गच्छतु विषं स्वाहा। सर्पवृश्चिककर्कटादिविषं नाशयति॥ ३६ ॥

ॐ आदित्यस्य रथवेगेन वासुदेवबलेन च गरुडपक्षपातेन भूम्यां गच्छतु विषं स्वाहा। इस मन्त्र से सर्प, वृश्चिक, कर्कट आदि का विष नष्ट होता है॥ ३६ ॥

ॐ चामुण्डे ऽजिते ऽपराजिते रक्ष रक्ष स्वाहा। सप्ताभिमन्त्रितं नेष्टुकं चतुर्दिशि क्षिपेत्। एकं स्वस्थाने स्थापयेत्। ॐ जम्भनी स्तम्भनी मोहनी सर्वदुष्टप्रशमनी स्वाहा। चौरी न भवति॥ ३७ ॥

ॐ चामुण्डे ऽजिते ऽपराजिते रक्ष रक्ष स्वाहा। ॐ जम्भनी स्तम्भनी मोहनी सर्वदुष्टप्रशमनी स्वाहा। इस मन्त्र के प्रयोग से चोरी नहीं होती॥ ३७ ॥

ॐ नमश् चण्डमहाक्रोधाय हुलु हुलु चुलु चुलु तिष्ठ तिष्ठ बन्ध बन्ध मोह मोह हन हन मृते हूं फट्। पुष्पादिकं परिजप्य दानाद् वशम् आनयति॥ ३८ ॥

ॐ नमश् चण्डमहाक्रोधाय हुलु हुलु चुलु चुलु तिष्ठ तिष्ठ बन्ध बन्ध मोह मोह हन हन मृते हूं फट्। इस मन्त्र के प्रभाव से शत्रु वश में होता है॥ ३८ ॥

ॐ नमो रत्नत्रयाय ॐ टः सुविस्मरे स्वाहा। केतकीपत्रचीरिकया सर्वज्वराणि नाशयति॥ ३९ ॥

ॐ नमो रत्नत्रयाय ॐ टः सुविस्मरे स्वाहा। इस मन्त्र से सभी ज्वर नष्ट होते हैं॥ ३९ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे नानाभिभेदनिगति यन्त्रमन्त्रपटलो विंशतितमः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक श्रीचण्डमहारोषण तन्त्र में नानाभि-भेद निगति - यन्त्र - मन्त्र नामक २०वाँ पटल समाप्त हुआ।

पटलः २१

अथ भगवान् आह। ॐ चण्डमहारोषण सर्वमायादर्शक सर्वमायां निदर्शय निर्विघ्ने हूं फट्। अनेन चण्डमहारोषणं ध्यात्वा सर्वं कुर्यात् ॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं। ॐ चण्डमहारोषण सर्वमायादर्शक सर्वमायां निदर्शय निर्विघ्ने हूं फट्। इस मन्त्र से चण्डमहारोषण का ध्यान करके सब कुछ सिद्ध करें॥ १ ॥

उडुम्बरक्षीरेण कर्पटं म्रक्षयित्वा नीरन्ध्रं, सतैलसर्जरसं पिष्ट्वा, तस्मिन् प्रक्षिप्य, वर्तिं कारयेत्। उदकेन दीपज्वालनाज् ज्वलति स्थिरम्॥ २ ॥

इस प्रकार करने से दीप स्थिर होता है॥ २ ॥

रात्रौ वरटप्रस्थरखण्डद्वयं निघृष्य हूंकारेण-
विद्युच्छटां दर्शयति॥ ३ ॥

इस प्रकार रात को बिजुली की छटा दिखती है॥ ३ ॥

मृतजलुकचूर्णसहितलाक्षारञ्जितवर्तिज्वालनात्-
स्त्रियस् तद् दृष्ट्वा नग्ना भवन्ति॥ ४ ॥

इस विधि से स्त्रियाँ इसको देखकर नग्न हो जाती हैं॥ ४ ॥

घृतेन कर्णचक्षुर्म्रक्षणाद् आत्मरक्षा॥ ५ ॥

इस प्रकार आत्म रक्षा होती है॥ ५ ॥

हलाहलसर्पस्य लाङ्गुलं छेदयेत्। नग्नो मुक्तशिखः यावल् लुटति तावन् नर्तयेत्।

तच्चूर्णमाषकचतुष्टयं धूस्तूरपञ्चाङ्गं प्रत्येकं माषकैकम् एभिः सहितलाक्षारञ्जितवस्त्रवर्त्यो दीपज्वालनात् सर्वे नृत्यन्ति तं दृष्ट्वा। पूर्ववद् आत्मरक्षा॥ ६ ॥

इस मन्त्र से आत्मरक्षा होती है॥ ६ ॥

शाखोटकमूलं बहेडीमूलम् एकीकृत्य गृहे स्थापयेत्।
कलहं भवेत्॥ ७ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से शत्रु के घर में कलह होता है॥ ७ ॥

धूस्तूरपुष्पमध्यस्थगुण्डकं सुगन्धिपुष्पमध्ये प्रक्षिप्याघ्रातमात्रेण शिरः शूलं भवति। काञ्जिकनस्येन मोक्षः॥ ८ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से शत्रु के शिर में पीडा होती है॥ ८ ॥

कुक्कुरीगर्भशय्या तथा धूपितं वेष्टितं मयूरपिच्छं सव्येन भ्रामितेन चित्रं हरति। अवसव्येन मोक्षः॥ ९ ॥

इस मन्त्र से चित्त का हरण होता है॥ ९ ॥

काकहृदयरुधिरेणाम्रपत्रे तत्पक्षलेखन्या लिखित्वा मन्त्रं यस्य विष्ठायां प्रक्षिपेत्, स काकेन खाद्यते। ॐ काककुहनी क्रुद्धनी देवदत्तं काकेन भक्षापय स्वाहा॥ १० ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से शत्रुओं को कौवा खा जाते हैं॥ १० ॥

भगाकारं गर्तं कृत्वा स्त्रीविष्ठां वृश्चिकपात्रिकासुतां प्रक्षिप्य झोपयेत्। तस्याः मार्गं व्यथते॥ ११ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से उस स्त्री का मार्ग दुःख से भर जाता है॥ ११ ॥

स्नुहीक्षीर भाविततिलतैलम्रक्षणात् शिरोरुहाः श्वेता भवन्ति। मुण्डिते मोक्षः॥ १२ ॥

इसके प्रयोग से शत्रु के बाल सफेद हो जाते हैं॥ १२ ॥

विरालीगर्भशय्या नारीगर्भशय्या द्वाभ्यां धूपाद् भित्तौ चित्रं न दृश्यते। माक्षिकधूपेन मोक्षः॥ १३ ॥

इस मन्त्र के प्रयोग से भित्ति का चित्र गायब हो जाता है॥ १३ ॥

उष्ट्रकपोलश्वेदफेनमूत्रे हरितालं बहुधा भावयित्वा हस्तं म्रक्ष्या-कर्षयेत्। चित्रं न दृश्यते। हस्तक्षालनान् मोक्षः॥ १४ ॥

इस प्रयोग से भी चित्र खो जाता है॥ १४ ॥

स्त्रीगर्भशय्यया धूपाच् चित्रं प्ररोदति।
गुग्गुलधूपेन मोक्षः॥ १५ ॥

इस प्रयोग से चित्र रोता है॥ १५ ॥

भेकतैलेन चक्षुरञ्जनाद् गृहवंशाः सर्पाः दृश्यन्ते॥ १६ ॥

इस प्रयोग से घर के वॉस साप में परिणत होते हैं॥ १६ ॥

दीपनिर्वाणाग्रौ गन्धकचूर्णदानात् पुनर् ज्वलति॥ १७ ॥

इस प्रयोग से दीप फिर जलता है॥ १७ ॥

मुण्डिरीसेवालजलौकभेकवसाभिः पादौ मृअक्षयित्वा कदली-पत्रेण वेष्ट्य ज्वलदङ्गारे भ्रमति न दह्यते॥ १८ ॥

इस प्रयोग से साधक जलते हुए अंगारों में बिना किसी दहन के चल सकता है॥ १८ ॥

स्नुहीमूलं गुडेन भक्षयेत्। निद्रा भवति॥ १९ ॥

इस प्रयोग से नींद आती है॥ १९ ॥

कामाचीमूलं शिखायां बन्धयेत्। निद्रा भवति॥ २० ॥

इसके प्रयोग से भी नींद आती है॥ २० ॥

नागदमनमूलं द्रोणपुष्पकमूलं हरिद्रातण्डुलं च पिष्ट्वोद्वर्तनाद उदकपरीक्षायां जयः॥ २१ ॥

इस प्रयोग से जल की परीक्षा में (तैरने में) सफलता मिलती है॥ २१ ॥

शाल्मलीमूले हिङ्गुलिकाखननात् पुष्पपातनम्॥ २२ ॥

इसके प्रयोग से फूलों की वर्षा होती है॥ २२ ॥

काङ्गुष्ठं मदिरया दद्यात् ताम्बुलेन वा।
विरेचनं भवति॥ २३ ॥

इसके प्रयोग से विरेचन होता है॥ २३ ॥

स्नुहीक्षीरम् अर्कबीजं घुणचूर्णं गुडेन भक्षयेत्।
रक्तं पतति॥ २४ ॥

इसके प्रयोग से रक्तपात होता है॥ २४ ॥

छुच्छुन्दरीचूर्णेन घोटकस्य नासां म्रक्षयेत्।
आहारं न करोति।
चन्दनेन प्रक्षालननस्याभ्यां मोक्षः॥ २५ ॥

इसके प्रयोग से शत्रु खाना छोड़ देता है॥ २५ ॥

केतकीमूलं शिरसि बन्धयेत्। खर्जुरमूलं हस्ते, तालमूलं मुखे। पुष्यनक्षत्रेणोत्पाटयेद् उत्तरदिशिस्थं। नग्नो मुक्तशिखो भूत्वा त्रयाणां च किंचित् पिष्ट्वा पिबेत्। शस्त्राघातं न भवति॥ २६ ॥

इसके प्रयोग से शस्त्रों से आघात नहीं होता॥ २६ ॥

श्योनाकबीजपूर्णपादुकाद्वयं हरिणचर्मणा कुर्यात्।
जले न मगाति॥ २७ ॥

इस प्रयोग से जल में नहीं डूबता है॥ २७ ॥

ओषणीं चर्वयित्वा जिह्वातले स्थापयेत्।
तप्तफालचाटनान् न दहति॥ २८ ॥

इस प्रयोग से जलते हुए लोहे को चाटने से भी जलन नहीं होता॥ २८ ॥

सूतकक्षारयुतहस्तिशुण्डीपानाद् गर्भपतनम्॥ २९ ॥

इस प्रयोग गर्भपात होता है॥ २९ ॥

श्वेतशपुण्खमूलं पुष्ये उद्धृत्य गव्यघृतेन भाव्य शिरसादौ बन्धयेत्। काण्डपतनम् चौरभयं वारयति॥ ३० ॥

इससे चोर से भय नहीं होता॥ ३० ॥

गृध्रवसा उलूकवसाभ्यां चर्मपादुकाम् आरुह्य,
अतिदूरे गमनागमने भवतः॥ ३१ ॥

इस प्रयोग से अतिदूर गमनागमन होता है॥ ३१ ॥

सर्षपफलम् अशस्त्रहतं सुदिवसे संध्यायाम् अधिवास्य नग्नो मुक्तशिखो भूत्वा वामपाणिना गृह्णीयाद् भूमौ न स्थापयेत्। रक्षा च भगवतो

मालामन्त्रेण कार्या॥ ३२ ॥

इस प्रयोग से रक्षा होती है॥ ३२ ॥

यस्य यस्य रक्तेन भावयेद् बहुशस् तद्रक्तसिञ्चनं तन्मांसेनोत्थानकं तदस्थिसारेण तैलकं तद्भस्मना वर्धितम् उप्तं तत्कपालके तद्वसासृङ्मांसादिरक्तेन सेचनं तद्धूपनेयनादीन् यत्नेन कृत्वा पुनः पुनः रक्षा बलिश् च कार्यः॥ ३३ ॥

इस प्रयोग से भी रक्षा होती है॥ ३३ ॥

परिणतफलं मुखे क्षिप्तवा तदात्मकं-
भावयेत् तादृशो भवति॥ ३४ ॥

इस प्रयोग से रक्षा होती है॥ ३४ ॥

त्रिलोहवेष्टितेनान्तर्धानम्। तत्रेदं त्रिलोहं सार्धसप्तत्रयो माषाः सार्धद्वयचतुष्टयपञ्चगुञ्जास् त्रयो माषा रविचन्द्रहुताशनैः। ताम्रमा ३ ती २, रूप्यमा ४(?) ती २, सुवर्णमा ३ ती ५(?) ॥३५ ॥

इस प्रयोग से साधक की रक्षा होती है॥ ३५ ॥

नृकपाले गोरोचनारक्ताभ्यां साध्याकृतिम् आलिख्य तत्रैव तन्नाम मन्त्रविदर्भितं गन्धोदकलिप्तं द्वितीयकपालेन सम्पुटीकृत्य मृतकसूत्रेणावेष्ट्य सिक्थकेन ग्रन्थ्य जपेत्। चित्याङ्गारे तापयेत् रात्रौ यावत् सिक्थको विनीयते। सुरकन्याम् अप्य् आनयति। ॐ आकट आकट मोहय मोहय अमुकीम् आकर्षय जः स्वाहा॥ ३६ ॥

इस मन्त्र से आकर्षण और मोहन होता है॥ ३६ ॥

कपित्थफलं चूर्णीकृत्य माहिष्यदध्ना भावयेत् सप्तवारान्। नूतनभाण्डस्थे तक्रे तं गुण्डकं किंचित् प्रक्षिपेता्। क्षणमात्रेण दधि भवति॥ ३७ ॥

इस प्रयोग से तक्र दही में परिणत होता है॥ ३७ ॥

कपित्थफलं पिष्ट्वा नूतनभाण्डं लेपयेत्। तत्र दुग्धं यावयेत्। मन्थुरहितं दधि भवति॥ ३८ ॥

इस प्रयोग से कपित्थ दही में परिणत होता है॥ ३८ ॥

अपक्वघटे दुग्धम् आवर्तितं यावयेत्। जाते दधौ धैर्यशो घटं भञ्जयेत्। दधि घटो भवति॥ ३९ ॥

इस प्रयोग से भी घड़ा दही से भर जाता है॥ ३९ ॥

अर्कक्षीरेण नवघटं विभाव्य बहुधा तत्र क्षिप्तं जलं तक्रम् इव दृश्यते॥ ४० ॥

इस प्रयोग से जल तक्र होता है॥ ४० ॥

स्त्रीप्रथमप्रसूतदशदिने भस्म गहीत्वा मुष्टिद्वयेनाधोर्ध्वविन्यासेन जले प्रविशेत्। तत उर्ध्वरेखया उदककुम्भः शुष्यति। अधोभस्मरेखया पूरयति॥ ४१ ॥

इस प्रयोग से भस्म से घड़ा भर जाता है॥ ४१ ॥

रविदिने सानिञ्चामूलम् अपामार्गमूलम् उत्पाद्य पृथग्प्रक्षितदण्डाग्रो कटिधारितौ युध्यः॥ ४२ ॥

वङ्ग-आरबीज-बाला-म्रक्षितघनकर्पटे जलप्रक्षेपान् न पतति। तेनैव लिप्तवेत्रपटिकारोहणाज् जले न मगाति॥ ४३ ॥

इसके प्रयोग से जल में नहीं डूबता है॥ ४२-४३ ॥

भूमिलताखद्योतयोश् चूर्णं तैलविमर्दितं कृत्वा तेन यल् लिप्यते तद् रात्रौ ज्वलति॥ ४४ ॥

इससे वह लेपन रात में जलता है॥ ४४ ॥

ताम्रभाजने लवणेनामनकीं पङ्कयित्वा लोहभाजनं येन ताम्रम् इव दृश्यते॥ ४५ ॥

इससे लोहा ताँबा जैसा दिखता है॥ ४५ ॥

तप्ते गोहड्डे मनःशिलाचूर्णदानाज् ज्वलति शिखा॥ ४६ ॥

इससे शिखा जलती है॥ ४६ ॥

ऋण्टकबीजोपरि लघुपुष्पादिं संस्थाप्य जलदानात् पतति॥ ४७॥

इससे वह गिर जाता है॥ ४७ ॥

कुण्टीराकृतचटककोटने भ्रमरं प्रक्षिप्याकाशे त्यजेत। भ्रमति॥ ४८॥

इस प्रयोग से वह भ्रमित होता है॥ ४८ ॥

शुष्कमत्स्यो भल्लातकतैलेनाविभाविते-
जलस्थश् चलति॥ ४६ ॥

इससे सूखी हुई मछली जल में तैरने लगती है॥ ४६ ॥

इत्य् एकल्लवीराख्ये श्रीचण्डमहारोषणतन्त्रे कुतूहलपटल एकविंशतिः॥

इस प्रकार एकलवीर नामक चण्डमहारोषण तन्त्र में कुतूहलनामक २१वाँ पटल समाप्त हुआ।

पटलः २२

अथ भगवान् आह।

भगवान् कहते हैं।

हृदि प्राणो गुदे ऽपानः समानो नाभिदेशके।
उदानः कण्ठदेशे तु व्यानः सर्वशरीरगः॥ १ ॥

हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान तथा व्यान वायु समग्र शरीर में रहता है॥ १ ॥

एषां मध्ये प्रधानो ऽयं प्राणवायुर् हृदि स्थितः।
श्वासप्रश्वासभेदेन जीवनं सर्वजन्तुनाम्॥ २ ॥

इनमें से हृदय में रहने वाला प्राण वायु प्रधान माना गया है। वही श्वास और प्रश्वास के भेद से सभी प्राणियों का जीवन है॥ २ ॥

षोडशसंक्रान्तियोगेन प्रत्येकेन दण्डम् एकम्।
चतुर्मण्डलवाहेन द्वायुतं शतषोडशम्॥ ३ ॥

१६ सङ्क्रान्तियोगों के साथ प्रत्येक एक दण्ड को लेकर चार मण्डलों के वहाव द्वारा दो --
--------------------------- ॥ ३ ॥

दक्षिणस्पर्शवाहेन वह्निमण्डलम् उच्यते।
वामस्पर्शवाहे वायुमण्डलम् उच्यते॥ ४ ॥

दक्षिण की ओर स्पर्शपूर्वक वहाव को वह्निमण्डल और बायीं ओर जो बहाव है उसे वायुमण्डल कहते हैं॥ ४ ॥

वामदक्षिणसमस्पर्शाद् भवेन् माहेन्द्रमण्डलम्।
इदम् एव सुगा मन्दं च वारुणं मण्डलं भवेत्॥ ५ ॥

दक्षिण और बायीं ओर के समान बहाव को माहेन्द्र मण्डल कहते हैं। यही यदि उगा कभी नीचे के ओर हो तो उसे वारुण मण्डल कहते हैं॥ ५ ॥

ललना वामनाडी स्याद् रसना सव्ये व्यवस्थिता।
अवधूती मध्यदेशे हि सहजानन्दक्षणे वहेत्॥ ६ ॥

वाम नाडी को ललना और सव्य को रसना कहते हैं। बीच की नाडी अवधूती कहलाती है। वह सहजानन्द के अवसर पर बहती है॥ ६ ॥

प्रवेशाद् वैभवे सृष्टिः स्थितिनिश्चलरूपतः।
विनाशो निःसृते वायौ यावज्जीवं प्रवर्तते॥ ७ ॥

वायु जब उस मध्य में प्रविष्ट होती है तब वैभव की अवस्था है, स्थिर होने से निश्चल समाधि की अवस्था और बाहर निकलना ही विनाश है जो अन्य दो नाडियों से जीवन भर बहता रहता है॥ ७ ॥

प्रविशन् कुम्भको ज्ञेयः पूरकस् तस्य धारणात्।
निर्गमद्रेचको ज्ञेयो निश्चलः स्तम्भको मतः॥ ८ ॥

वायु जब प्रविष्ट होता है उसे कुम्भक, उसके धारण को पूरक एवं निर्गन को रेचक तथा निश्चल अवस्था को स्तम्भन कहते हैं॥ ८ ॥

चण्डरोषं समाधाय सप्रज्ञं कृत आरभेत्।
प्रविशन्तं गणयेद् वायुं शतसहस्रादिसङ्ख्यया॥ ९ ॥

भगवान् चण्डरोषण का ध्यान करते हुए प्रज्ञा सहित प्राणायाम का आरंभ करें। उस अवसर पर प्रवेश होते हुए वायु को सौ, हजार आदि संख्या द्वारा गणना करनी चाहिए॥ ९ ॥

सिध्यते तत्क्षणाद् एव बुद्धनाथवचो यथा।
वायुम् एवं गणेद् यस् तु प्रज्ञाम् आलिङ्ग्य निर्भरं॥ १० ॥

भगवान् तथागत का वचन है कि यदि एक एक वायु के प्रवेश की गणना कोई करता है प्रज्ञा को साथ लेकर, उसी में निर्भर होकर तो वह तत्काल सिद्धि को प्राप्त करता है॥ १० ॥

सिध्यते पक्षमात्रेण चण्डरोषणमुर्तितः।
दिव्यज्ञानसमायुक्तः पञ्चाभिज्ञो हि जायते॥ ११ ॥

चण्डरोषण को ध्यान पूर्वक यह कृत्य करने से एक पक्ष में ही वह दिव्य ज्ञान पूर्ण होकर पञ्चाभिज्ञ हो जाता है॥ ११ ॥

चण्डरोषसमाधिस्थः स्वस्त्रीम् आलिङ्ग्य निर्भरं।
हृदयेन च हृदं गृह्य गृह्यं गुह्येन सम्पुटम्॥ १२ ॥
मुखेन च मुखं कृत्वा निश्चेष्टः सुखतत्परः।
हृदयान्तर्गतं चन्द्रं ससूर्यं तु प्रभावयेत्॥ १३ ॥
तत्स्थैर्यबलेनैव सर्वज्ञानी भवेन् नरः॥ १४ ॥

श्रीचण्डरोषण के समाधि में निमग्न होकर अपने स्त्री का आलिङ्गन पूर्वक हृदय से हृदय को, गुह्य को गुह्य से सम्पुट कर, मुख से मुख का आलम्बन पूर्वक, सुख में एकाग्र होकर निष्चेष्टता को अपनाते हुए हृदय में अवस्थित सूर्य सहित चन्द्र की भावना करें। उसके स्थिर बल से ही उसी क्षण वह साधक सर्वज्ञ हो जाता है॥ १२-१४ ॥

शमत्वाहरमात्रेण भूतं भविष्यं च वर्तमानं।
परचित्तं च जानाति सत्यम् एतद् वदाम्य् अहम्॥ १५ ॥

समता में अवस्थित होकर वह योगी भूत, भविष्य तथा वर्तमान को साक्षात्कार कर लेता है। तथा परचित्त को भी जानता है। यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ १५ ॥

तथा तेनैव योगेन कर्णमध्ये विभावयेत्।
श्रृणुते सर्वदेशस्थं शब्दं संनिहितं यथा॥ १६ ॥

और उसी योग से कर्ण के अन्दर भावना करने से सभी देशों में अवस्थित शब्दों को सुन सकता है जैसा कि वह शब्द नजदीक का ही हो॥ १६ ॥

तथा नेत्रे प्रभावित्वा त्रैलोक्यं च प्रपश्यति।
नासायां च तथा ध्यात्वा जानीते सर्वगन्धकम्॥ १७ ॥
जिह्वार्थं च तथा ध्यात्वा दूरं स्वादं प्रविद्यते।
स्वलिङ्गाग्रे तथा ध्यात्वा जानीते सर्वस्पर्शकम्॥ १८ ॥

ज्ञानरूपी जल के गुण के समान होने से यह अग्रयान समुद्र के तरह है। सभी सत्त्वों का आधार होने से संभार द्वय युक्त है जो सूर्य के तरह है।

विपुलानन्तमध्यत्वाद् बोधिराकाशधातुवत्।
सम्यक्संबुद्धधर्मत्वात् सत्त्वधातुर्निधानवत्॥ १० ॥

विपुल, अनन्त और मध्य होने से बोधि आकाश धातु के तरह है। सम्यक् सम्बुद्ध धर्म होने से सत्त्व धातु रत्नों के खानों के तरह है।

आगन्तुव्याप्त्यनिष्पत्तेस्तत्संक्लेशोऽभ्रराशिवत्।
तत्क्षिप्तिप्रत्युपस्थानात् करुणोद्वृत्तवायुवत्॥ ११ ॥

आगन्तुक धर्मों के व्याप्ति के निष्पत्ति के कारण वह संक्लेश भी मेघराशि के तरह ही है। उस आगन्तुक क्लेश रूपी मेघों को हटाने के लिए करुणा से उदित वायु के तरह भगवान् तथागत हैं।

पराधिकारनिर्याणात् सत्त्वात्मसमदर्शनात्।
कृत्यापरिसमाप्तेश्च क्रियाप्रश्रब्धिराभवात्॥ १२ ॥

दूसरों के अधिकार को निर्याण के कारण सभी सत्त्वों में अपने समान भाव रखने के कारण, समग्र कृत्यों को समाप्त करने के कारण इनकी क्रिया सर्वत्र व्यापक होकर रहती है॥

यदनुत्पादानिरोधप्रभावितं बुद्धत्वमित्युक्तं तत्कथमिहासंस्कृतादप्रवृत्तिलक्षणाद्बुद्धत्वादनाभोगाप्रतिप्रश्रब्धमा-लोकादविकल्पं बुद्धकार्यं प्रवर्तत इति। बुद्धमाहात्म्यधर्मतामारभ्य विमतिसंदेहजातानामचिन्त्यबुद्धविषयाधिमुक्तिसंजननार्थं तस्य माहात्म्ये श्लोकः।

जो अनुत्पाद और निरोध से प्रभावित है वह बुद्धत्व कैसे यहाँ असंस्कृत, अप्रवृति लक्षणभूत है उससे अनाभोग अप्रतिश्रब्ध कहा गया और लोक से अविकल्प बुद्ध कार्य प्रवृत्त होता है। बुद्ध महात्म्य धर्म को लेकर विमति, सन्देह आदि से युक्त बुद्ध विषय में अधिमुक्ति उत्पन्न करने के लिए यह प्ररोचनात्मक श्लोक है।

शक्रदुन्दुभिवन् मेघब्रह्मार्कमणिरत्नवत्।
प्रतिश्रुतिरिवाकाशपृथिवीवत् तथागतः॥ १३ ॥

शक्र (इन्द्र) के दुन्दुभि के तरह, मेघ, ब्रह्मा, सूर्य और मणिरत्नों के तरह और प्रतिश्रुति के तरह जो आकाश और पृथिवी में होती है के तरह तथागत का स्वरूप है॥ १३ ॥

अस्य खलु सूत्रस्थानीयस्य श्लोकस्य यथाक्रमं परिशिष्टेन ग्रन्थेन विस्तर-विभागनिर्देशो वेदितव्यः।

इस सूत्र स्थानीय श्लोक का क्रमशः परिशिष्ट ग्रन्थ से विस्तार विभाग का निर्देश जानना चाहिए।

शक्रप्रतिभासत्वादिति।

शक्र के प्रतिभास के कारण।

विशुद्धवैडूर्यमयं यथेदं स्यान्महीतलम्।
स्वच्छत्वात्तत्र दृश्येत देवेन्द्रः साप्सरोगणः॥ १४ ॥
प्रासादो वैजयन्तश्च तदन्ये च दिवौकसः।
तद्विमानानि चित्राणि ताश्च दिव्या विभूतयः॥ १५ ॥
अथ नारीनरगणा महीतलनिवासिनः।
प्रतिभासं तमालोक्य प्रणिधिं कुर्युरीदृशम्॥ १६ ॥
अद्यैव न चिरादेवं भवेमस्त्रिदशेश्वराः।
कुशलं च समादाय वर्तेरंस्तदवाप्तये॥ १७ ॥
प्रतिभासोऽयमित्येवमविज्ञायापि ते भुवः।
च्युत्वा दिव्युपपद्येरंस्तेन शुक्लेन कर्मणा॥ १८ ॥
प्रतिभासः च चात्यन्तमविकल्पो निरीहकः।
एवं च महतार्थेन भुवि स्यात्प्रत्युपस्थितः॥ १९ ॥
तथा श्रद्धादिविमले श्रद्धादिगुणभाविते।
सत्त्वाः पश्यन्ति संबुद्धं प्रतिभासं स्वचेतसि॥ २० ॥
लक्षणव्यञ्जनोपेतं विचित्रेर्यापथक्रियम्।
चङ्क्रम्यमाणं तिष्ठन्तं निषण्णं शयनस्थितम्॥ २१ ॥
भाषमाणं शिवं धर्मं तूष्णींभूतं समाहितम्।
चित्राणि प्रातिहार्याणि दर्शयन्तं महाद्युतिम्॥ २२ ॥

तं च दृष्ट्वाभियुज्यन्ते बुद्धत्वाय स्पृहान्विताः।
तद्धेतुं च समादाय प्राप्नुवन्तीप्सितं पदम्॥ २३ ॥

यदि सभी पृथिवी तल वैडूर्य मणि से शुद्ध हो या ढक दिया जाय तब अत्यन्त स्वच्छ होने से देवेन्द्र अप्सराओं के सहित देखे जा सकते हैं। वैजयन्त नामक इन्द्र के भवन, अन्य देवतागण, उनके विमान, चित्र, वे दिव्य विभूतियाँ देखे जा सकते हैं। अब नरनारीगण – जो पृथिवी के वासी हैं, यह सब देवों की उपस्थिति देखकर इस प्रकार का संकल्प कर सकते हैं। आज ही, तत्काल ही हम भी देवता बन जायें। कुशल पुण्यों के लेकर उसकी प्राप्ति के लिए लग जायें। यह इस प्रकार का प्रतिभास है – पृथ्वी का, यह न जानते हुए भी च्युति के कारण स्वर्ग में पहुँच सकते है – अच्छे पुण्य कर्मों के कारण। यह प्रतिभास अत्यन्त अविकल्पात्मक है, विकल्पहीन है इस प्रकार बड़े अर्थ से पृथिवी में आ जाते हैं, उपस्थित हो जाते हैं। तथा अतिशय श्रद्धा के द्वारा विमल हुए, अतिशय श्रद्धा द्वारा भावित प्रतिभास को सत्त्वगण संबुद्ध को देखते हैं और प्रतिभास को अपने चित्त में देखते हैं। लक्षण और व्यञ्जन से युक्त विचित्र इर्या पथ की क्रिया को देखते हैं और इसके साथ चङ्क्रमण करते, उठते, बैठते शयन करते बोलते – शिवधर्म को, समाधि में मौन होते हुए देखते हैं साथ ही प्रतिहार्य चित्र को, महाद्युति को दिखाते हुए उनको देखकर उनके साथ हो जाते हैं बुद्धत्व की कामना करने वाले और उसके कारण को लेकर अपने इप्सित पद को प्राप्त कर लेते हैं॥ १४-२३॥

प्रतिभासः च चात्यन्तमविकल्पो निरीहकः।
एवं च महतार्थेन लोकेषु प्रत्युपस्थितः॥ २४ ॥
स्वचित्तप्रतिभासोऽयमिति नैवं पृथग्जनाः।
जानन्त्यथ च तत्तेषामवन्ध्यं बिम्बदर्शनम्॥ २५ ॥
तद्धि दर्शनमागम्य क्रमादस्मिन्नये स्थिताः।
सद्धर्मकायं मध्यस्थं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा॥ २६ ॥
भूर्यद्वत्स्यात् समन्तव्यपगतविषमस्थानान्तरमला
वैडूर्यस्पष्टशुभ्रा विमलमणिगुणा श्रीमत्समतला।

शुद्धत्वात्तत्र बिम्बं सुरपतिभवनं माहेन्द्रमरुता-
मुत्पद्येत क्रमेण क्षितिगुणविगमादस्तं पुनरियात्॥ २७ ॥
तद्भावायोपवासव्रतनियमतया दानाद्यभिमुखाः
पुष्पादीनि क्षिपेयुः प्रणिहितमनसो नारीनरगणाः।
वैडूर्यस्वच्छभूते मनसि मुनिपतिच्छायाधिगमने
चित्राण्युत्पादयन्ति प्रमुदितमनसस्तद्वच्चिनसुताः॥ २८ ॥
यथैव वैडूर्यमहीतले शुचौ सुरेन्द्रकायप्रतिबिम्बसंभवः।
तथा जगच्चित्तमहीतले शुचौ मुनीन्द्रकायप्रतिबिम्बसंभवः॥२९॥
बिम्बोदयव्ययमनाविलताविलस्व-चित्तप्रवर्तनवशाज्जगति प्रवृत्तम्।
लोकेषु यद्वदवभासमुपैति बिम्बं तद्वन्न तत्सदिति नासदिति प्रपश्येत्॥३०॥

वह प्रतिभास अत्यन्त अविकल्प एवं निरीह होता है। इस प्रकार महान् अर्थ से लोकों में उपस्थित होता है। अपने चित्त का ही यह विकल्प है इस प्रकार वे पृथग्जन नहीं जान सकते, इसीलिए उनका बिम्बदर्शन अबन्ध्य ही है। वह भी जब दर्शन की स्थिति में आ जाता है तब, क्रमशः इस नय में स्थित हाने पर सद्धर्म काय को जो मध्यस्थ है ज्ञान चक्षु से देखते हैं। भूमि में चारों ओर विषम स्थानों में मल रहते हैं, उसी जगह पर वैडूर्यमणि रख दिया जाय तो वह जगह अत्यन्त शुभ्र, विमल मणि के गुण से अत्यन्त स्व%छ हो जाता है। शुद्ध होने से वहाँ पर बिम्ब बन जाता है और सुरपति-इन्द्र का भवन तथा स्वर्गीय वायुगण भी वहाँ उत्पन्न हो जाते हैं तथा पृथिवी के गुण दूर हो जाते हैं उस प्रकार के स्वर्गीय विषयों को पाने के लिए नियमतः उपवास, व्रत, पूजा आदि विभिन्न नर नारीगण करते हैं और पुष्प आदि का निक्षेपण भी करते हैं - अच्छे मन से, इसी प्रकार वैडूर्यमणि द्वारा स्व%छ मन में मुनियों के पति - बुद्ध के छत्र छाया में चित्र आदि उत्पन्न करते हैं - प्रमुदित होकर, उसी प्रकार जिन सुत - बोधिसत्त्वगण भी किया करते हैं।

जैसे वैडूर्यमणि से पवित्र भूमि पर इन्द्र के काय का बिम्ब का होना संभव है उसी प्रकार जगत् के चित्त रूपी पवित्र भूमि में मुनीन्द्र - तथागत का प्रतिबिम्ब उपलब्ध होना भी संभव है

बिम्बों का उदय अभूत पदार्थों का या भूत पदार्थों का भी जो अन्यत्र है, काल्पनिक है – केवल चित्त के प्रवृत्ति के कारण हो जाता है। उसी प्रकार लोक में भी बिम्ब का अवभास – उपस्थित हो जाता है। इसीलिए सत् भी नहीं है, असत् भी नहीं है दोनों भी नहीं है यह देखना चाहिए॥ २४ – ३० ॥

देवदुन्दुभिवदिति।

देवों की दुन्दुभि के तरह जानना चाहिए।

यथैव दिवि देवानां पूर्वशुक्लानुभावतः।
यत्नस्थानमनोरूपविकल्परहिता सती॥ ३१ ॥
अनित्यदुःखनैरात्म्यशान्तशब्दैः प्रमादिनः।
चोदयत्यमरान् सर्वानसकृद्देवदुन्दुभिः॥ ३२ ॥
व्याप्य बुद्धस्वरेणैवं विभुर्जगदशेषतः।
धर्मं दिशति भव्येभ्यो यत्नादिरहितोऽपि सन्॥ ३३ ॥
देवानां दिवि दिव्यदुन्दुभिरवो यद्वत् स्वकर्मोद्भवो
धर्मोदाहरणं मुनेरपि तथा लोके स्वकर्मोद्भवम्।
यत्नस्थानशरीरचित्तरहितः शब्दः स शान्त्यावहो
यद्वत् तद्वदृते चतुष्टयमयं धर्मः स शान्त्यावहः॥ ३४ ॥
संग्रामक्लेशवृत्तावसुरबलजयक्रीडाप्रणुदनं
दुन्दुभ्याः शब्दहेतुप्रभवमभयदं यद्वत् सुरपुरे।
सत्त्वेषु क्लेशदुःखप्रमथनशमनं मार्गोत्तमविधौ
ध्यानारूप्यादिहेतुप्रभवमपि तथा लोके निगदितम्॥३५॥

जैसे स्वर्ग (अन्तरिक्ष) में पूर्वकृत पुण्यकर्मों के प्रभाव से देवताओं के यत्न, स्थान, इच्छा और विकल्प रहित होते हुए भी अनित्य, दुःख, नैरात्म्य आदि शान्त शब्दों से प्रमादि देवताओं को अनेक बार दुन्दुभि प्रेरित करता ही रहता है।

बुद्ध के स्वर इसी प्रकार जगत् को व्याप्त करते हुए भव्यों को धर्म का उपदेश देता है – विना किसी यत्न आदि।

देवताओं का स्वर्ग में दिव्यदुन्दुभि का स्वर जैसा उनके अपने कर्मों के प्रभाव से जन्य है उसी प्रकार धर्म का घोष भी भगवान् का लोक में उनके

अपने ही कर्मों के कारण है। वह शब्द (धर्म) यत्न, स्थान, शरीर, चित्त आदि से रहित होते हुए भी शान्ति का स्थल है उसी प्रकार यह चार प्रकार का धर्म शान्ति का स्थान है। संग्राम जन्य क्लेश वृत्ति के अवसर पर अपना जय होने पर बलपूर्वक असुरों को हटाने पर दुन्दुभि के अनेक मधुर धुन निकलते हैं वे अभयप्रद होते हैं देवताओं के लोक में, उसी प्रकार संसार के प्राणियों में क्लेश दुःखों का शमन करने वाले उत्तम विधि में ध्यान, आरूप्य आदि हेतुओं से उत्पन्न होता है लोक के लिए लोक में यह कहा गया है ॥ ३१-३५ ॥

कस्मादिह धर्मदुन्दुभिरेवाधिकृता न तदन्ये दिव्यास्तूर्यप्रकाराः। तेऽपि हि दिवौकसां पूर्वकृतकुशलकर्मवशादघट्टिता एव दिव्यश्रवणमनोहरशब्दमनुरुवन्ति। तैस्तथागतघोषस्य चतुःप्रकारगुणवैधर्म्यात्। तत्पुनः कतमत्। तद्यथा प्रादेशिकत्वमहितत्वमसुखत्वमनैर्याणिकत्वमिति। धर्मदुन्दुभ्याः पुनरप्रादेशिकत्व-मशेषप्रमत्तदेवगणासंचोदनतया च तत्कालानतिक्रमणतया च परिदीपितम्। हितत्वमसुरादिपरचक्रोपद्रवभयपरित्राणतया चाप्रमादसंनियोजनतया च। सुखत्वमसत्कामरतिसुखविवेचनतया च धर्मारामरतिसुखोपसंहरणतया च। नैर्याणिकत्वमनित्यदुःखशून्यानात्मशब्दोच्चारणतया च सर्वोपद्रवोपायासोपशान्तिकरणतया च परिदीपितम्। एभिः समासतश्चतुर्भिराकारैर्धर्मदुन्दुभिसाधर्म्येण बुद्धस्वरमण्डलं विशिष्यत इति। बुद्धस्वरमण्डलविशेषणश्लोकः।

क्यों यहाँ धर्म दुन्दुभि मात्र अधिकृत किया गया है न अन्य दिव्य वाद्य गण। वे भी देवताओं के पूर्वकृत कुशल कर्मों के कारण ही उपलब्ध हैं और दिव्य, मनोहर श्रवण योग शब्दों को, संगीत को प्रकट करते हैं। उन वाद्यों का तथागत घोष के साथ चार प्रकार के असमानतायें हैं। वह कौन सा है। जैसा कि प्रादेशिकत्व, अहितत्त्व, असुखत्व और अनैर्याणिकत्व। धर्मदुन्दुभि के द्वारा फिर अप्रादेशिकत्व, अशेष प्रमत्त देवगणों को प्रेरणा से तत्काल ही अनतिक्रमण से यह परिदीपित हुआ है। हितत्व - असुर आदि परचक्रों का उपद्रव जन्य भय से रक्षा के कारण और अप्रमाद को देखना भी है। सुखत्व -

असत्काय-रतिसुख के विवेचन से, धर्मरामरति सुखों का उपसंहार भी दिखाया गया है। नैर्याणिकत्वम् - अनित्य, दुःख, शून्य आदि शब्दों के उच्चारण से सर्वोपद्रवों की शान्तिकरण को भी दिखाया गया है। संक्षेप में इन चार आकारों से धर्मदुन्दुभि के समानता से बुद्ध का स्वरमण्डल विशिष्ट है। बुद्ध के स्वरमण्डल विशेषण श्लोक यह है।

सार्वजन्यो हितसुखः प्रातिहार्यत्रयान्वितः।
मुनेर्घोषो यतो दिव्यतूर्येभ्योऽतो विशिष्यते॥ ३६ ॥

सभी के लिए हित और सुख जो तीन प्रतिहार्यो से समन्वित हैं। यह मुनि का घोष अतएव दिव्यतूर्यों के घोषों से विशिष्ट है॥ ३६ ॥

एषां खलु चतुर्णामाकाराणां यथासंख्यमेव चतुर्भिः श्लोकैः समासनिर्देशो वेदितव्यः।

इन चार आकारों को क्रमशः चार श्लोकों से संक्षेप में निर्देश किया गया है।

शब्दा महान्तो दिवि दुन्दुभीनां क्षितिस्थितेषु श्रवणं न यान्ति।
संसारपातालगतेषु लोके संबुद्धतूर्यस्य तु याति शब्दः॥ ३७ ॥
बह्व्योऽमराणां दिवि तूर्यकोट्यो नदन्ति कामज्वलनाभिवृद्धौ।
एकस्तु घोषः करुणात्मकानां दुःखाग्निहेतुप्रशमप्रवृत्तः॥ ३८ ॥
शुभा मनोज्ञा दिवि तूर्यनिस्वना भवन्ति चित्तोद्धतिवृद्धिहेतवः।
तथागतानां तु रुतं महात्मना समाधिचित्तार्पणभाववाचकम्॥३९॥
समासतो यत्सुखकारणं दिवि क्षितावनन्तास्वपि लोकधातुषु।
अशेषलोकस्फरणावभासनं प्रघोषमागम्य तदप्युदाहृतम्॥ ४० ॥

दुन्दुभियों के महान् शब्द स्वर्ग में होते हैं किन्तु वे पृथिवी के क्षेत्र में नहीं सुने जा सकते। किन्तु बुद्ध के शब्द घोष संसार में, पाताल में भी सुन सकते हैं।

देवताओं के स्वर्ग में बहुत तूर्य के घोष वजते हैं जो उनके कामभाव को बढ़ाने में सहयोग करते हैं। बढ़ाते हैं। किन्तु एक ही घोष करुणात्मक बुद्धों का, समस्त संसार के दुःखाग्नि के कारण को शान्त करते हैं।

शुभ, मनोज्ञ तूर्यों का घोष स्वर्ग में होते है जो चित्त के औद्धत्य को बढ़ाते हैं। किन्तु महात्मा तथागतों का रुत - शब्द तो समाधि में चित्त को अर्पण कराने वाले हैं। संक्षेप में, जो स्वर्ग में सुख के कारण हैं, क्षिति में अनन्त लोक धातुओं में, अशेष-लोक-स्फरण का अवभास बुद्ध के घोष में आकर वह भी उदाहृत किया गया है॥ ३७ - ४० ॥

कायविकुर्वितेन दशदिगशेषलोकधातुस्फरणमृद्धिप्रातिहार्यमिति सूचितम्। चेतःपर्यायज्ञानेन तत्पर्यापन्नं सर्वसत्त्वचित्तचरितगहनावभासनमादेशनाप्रातिहार्यम्। वाग्घोषोदाहरणेन नैर्याणिकीं प्रतिपदमारभ्य तदववादानुशासनमनुशास्ति प्रातिहार्यम्। इत्येवमव्याहतगतेराकाशधातुवदपरिच्छिन्नवर्तिनोऽपि बुद्धस्वरमण्डलस्य यन्न सर्वत्र सर्वघोषोपलब्धिः प्रज्ञायते न तत्र बुद्धस्वरमण्डलस्यापराध इति। प्रत्यायनार्थमतत्प्रहितानामात्मापराधे श्लोकः।

शरीर के विकार से दशों दिशाओं में अशेष लोकधातु प्रकाशन के विषय में सूचित किया गया है। चित्त के पर्याय ज्ञान से उसमें स्थित सर्वसत्त्व चित्तचरित का गहनावभास देशना में लाने के लिए है। वाग्घोष के उदाहरण के द्वारा निर्याणिक प्रतिपद को लेकर अनुशासन को दिखा रहे हैं जो प्रतिहार्य है। इस प्रकार अव्याहत गतियुक्त आकाश धातु के तरह अपरि%छन्न बुद्धमण्डल का जो सर्वत्र सर्वघोष की उपलब्धि नहीं होती वहाँ पर बुद्ध के स्वर की स्थिति संभव नहीं है। बुद्ध के वचनों की अवहेलना करने से होने वाले अपराध को दिखा रहे हैं।

यथा सूक्ष्मान् शब्दाननुभवति न श्रोत्रविकलो
न दिव्यश्रोत्रेऽपि श्रवणपथमायान्ति निखिलम्।
तथा धर्मः सूक्ष्मः परमनिपुणज्ञानविषयः
प्रयात्येकेषां तु श्रवणपथमक्लिष्टमनसाम्॥ ४१ ॥

जैसे कान खराब हो जाने पर सूक्ष्म शब्दों को नहीं सुना जा सकता है और दिव्यश्रोत्र (कान) के होने पर भी सभी विषय सुने नहीं जा सकते - संसार के, उसी प्रकार सूक्ष्म धर्म अत्यन्त निपुण व्यक्ति के ज्ञान का विषय

है। वह वस्तुतः अत्यन्त तीक्ष्ण एवं अक्लिष्ट मनवालों के श्रवण का विषय बनता है – धर्म॥ ४१ ॥

मेघवदिति।

मेघ के तरह।

प्रावृट्काले यथा मेघः पृथिव्यामभिवर्षति।
वारिस्कन्धं निराभोगो निमित्तं सस्यसंपदः॥ ४२ ॥

वर्षाकाल में जैसे मेघ पृथिवी में वरषता है और जल का समूह बिना किसी रोक टोक के सर्वत्र फैलता है और वह धान्य सम्पत्ति का कारण हो जाता है॥ ४२ ॥

करुणाम्बुदतस्तद्वत् सद्धर्मसलिलं जिनः।
जगत्कुशलसस्येषु निर्विकल्पं प्रवर्षति॥ ४३ ॥

करुणा मूर्ति मेघ के तरह ही धर्म करुणा के मूर्ति भगवान् सद्धर्म जल को जगत् के कुशल कर्मयुक्त सत्त्वों के लिए (निर्विकल्प) धर्म को दर्शाते है॥ ४३ ॥

लोके यथा कुशलकर्मपथप्रवृत्ते वर्षन्ति वायुजनितं सलिलं पयोदाः।
तद्वत् कृपानिलजगत्कुशलाभिवृद्धेः सद्धर्मवर्षमभिवर्षति बुद्धमेघः॥४४॥

संसार में जैसे कुशलकर्म के उदय होने पर मेघगण वायु के सहयोग से जल की वर्षा करते हैं। उसी प्रकार करुणा रूपी वायु के सहयोग से जगत् के कल्याणार्थ बुद्धमेघ सद्धर्म की वर्षा करते हैं॥ ४४ ॥

भवेषु संवित्करुणावभृत्कः क्षराक्षरासङ्गनभस्तलस्थः।
समाधिधारण्यमलाम्बुगर्भो मुनीन्द्रमेघः शुभसस्यहेतुः॥४५॥

संसार के कल्याणार्थ ज्ञान और करुणा के वशीभूत होकर क्षार समुद्र के नमकीले जल को आकाश के सहयोग से बादलगण अत्यन्त निर्मल मीठा बनाते हैं उसी प्रकार समाधि, धारणी आदि के निर्मल ज्ञान रूपी जल समूह मुनीन्द्र (बुद्ध) मेघ शुभ सत्य (बोधि) के लिए वर्षाते हैं॥ ४५ ॥

भाजनविमात्रतायाम्।

भाजन (पात्र) के विमात्रता के लिए बता रहे हैं।

शीतं स्वादु प्रसन्नं मृदु लघु च पयस्तत्पयोदाद्विमुक्तं
क्षारादिस्थानयोगादतिबहुरसतामेति यद्वत् पृथिव्याम्।
आर्यांष्टाङ्गाम्बुवर्षं सुविपुलकरुणामेघगर्भाद्विमुक्तं
सन्तानस्थानभेदाद् बहुविधरसतामेति तद्वत् प्रजासु॥४६॥

जिस प्रकार क्षार समुद्र का नमकीला, अपेय जल जब मेघ उसे लेकर पृथिवी में वर्षाते हैं तब वह शीतल, स्वादु, निर्मल, मृदु, लघु हो जाता है, वह अत्यन्त सुपेय हो जाता है। उसी प्रकार व्यापक-विशिष्ट करुणा रूपी मेघ के गर्भ से वर्षित आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग रूपी जल जब प्रजाओं को उपलब्ध होता है तब, वह उन सत्त्वों के भेद के अनुरूप अनेक प्रकार के रस में परिवर्तित होकर सब को तृप्त करता है॥ ४६ ॥

निरपेक्षप्रवृत्तौ।

निरपेक्ष प्रवृत्ति के विषय में बता रहे हैं।

यानाग्रेऽभिप्रसन्नानां मध्यानां प्रतिघातिनाम्।
मनुष्यचातकप्रेतसदृशां राशयस्त्रयः॥ ४७ ॥

इस अग्रयान के प्रति जो अप्रसन्न हैं और इसका प्रतिघात करते है - आक्रमण करते हैं वे तीन प्रकार के हैं। एक - मनुष्य गण, दूसरे - चातक (पक्षी). गण और तीसरे - प्रेतगण ॥ ४७ ॥

ग्रीष्मान्तेऽम्बुधरेष्वसत्सु मनुजा व्योम्न्यप्रचाराः खगा
वर्षास्वप्यतिवर्षणप्रपतनात्प्रेताःक्षितौ दुःखिताः।
अप्रादुर्भवनोदयेऽपि करुणामेघाभ्रधर्माम्भसो
धर्माकाङ्क्षिणि धर्मताप्रतिहते लोके च सैवोपमा॥ ४८ ॥

ग्रीष्म ऋतु के अन्तिम में जब आकाश में मेघ नहीं होते हैं तब मनुष्य गण तथा आकाश में उड़ने वाले पक्षीगण अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। वर्षा ऋतु में भी यदि मेघ अति वृष्टि करते हैं तो उस अवसर में पृथिवी के प्रेतगण दुःखित हो जाते हैं। मेघों के न आने पर ग्रीष्मान्त में तथा वर्षा में अतिवृष्टि दोनों से जिस प्रकार सभी पृथिवी वासी दुःखी हो जाते है, कष्ट भोगते हैं उसी प्रकार धर्म चाहने वालों को धर्म जल का न मिलना और न चाहने वालों को वह धर्म जल का मिलना भी दुःख का कारण हो जाता है॥ ४८॥

स्थूलैर्बिन्दुनिपातनैरशनिभिर्वज्राग्निसंपातनैः
सूक्ष्मप्राणकशैलदेशगमिकान्नापेक्षते तोयदः।
सूक्ष्मौदारिकयुक्त्युपायविधिभिः प्रज्ञाकृपाम्भोधर-
स्तद्वत् क्लेशगतान्दृष्ट्यनुशयान्नापेक्षते सर्वथा॥ ४६ ॥

जैसे मेघ जब जल की वर्षा करते हैं अत्यन्त मधुर जल पृथिवी में उपलब्ध होता है किन्तु उस समय वे मेघ भयङ्कर वज्रों की वर्षा कभी भी नहीं चाहते हैं वे तो मनोहर जल ही वर्षाते हैं। उसी प्रकार प्रज्ञा-कृपा मेघ रूपी तथागत भी सूक्ष्म, उदार, युक्ति और उपाय से संयुक्त धर्म जल की वर्षा करते हैं तथा क्लेश, आगन्तुक मल, सत्काय दृष्टि को कभी नहीं चाहते हैं॥४६॥

दुःखाग्निप्रशमने।

दुःख की अग्नि का प्रशमन चाहते हैं।

संसारोऽनवराग्रजातिमरणस्तत्संसृतौ पञ्चधा
मार्गः पञ्चविधे च वर्त्मनि सुखं नोच्चारसौगन्ध्यवत्।
तद्दुःखं ध्रुवमग्निशस्त्रशिशिरक्षारादिसंस्पर्शजं
तच्छान्त्यै च सृजन् कृपाजलधरः सद्धर्मवर्षं महत्॥ ५० ॥

यह संसार निरन्तर जन्म, मरण, सृष्टि, स्थिति और लय आदि पाँच प्रकार से कार्य करता है। इस पाँच प्रकार के मार्ग में जो सुख है वह अत्यन्त दुःखमिश्रित अर्थात् सुख के नाम पर दुःख ही है जो रति क्रिया के तरह है। वह सांसारिक दुःख निश्चय ही, अग्नि, शस्त्र, शिशिर और क्षार आदि के संयोग हुआ करता है। उस दुःख के शान्ति के लिए ही कृपापूर्ण जल को धारण करने वाले सद्धर्म की वर्षा मनुष्यों में करते हैं॥ ५० ॥

देवेषु च्युतिदुःखमित्यवगमात् पर्येष्टिदुःखं नृषु
प्राज्ञा नाभिलषन्ति देवमनुजेष्वैश्वर्यमप्युत्तमम्।
प्रज्ञायाश्च तथागतप्रवचनश्रद्धानुमान्यादिदं
दुःखं हेतुरयं निरोध इति च ज्ञानेन संप्रेक्षणात्॥ ५१ ॥

देवताओं में स्वर्ग से च्युति का दुःख है और मनुष्यों में जन्म-मरण-व्याधि आदि का दुःख है। किन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति देव-मनुष्य आदि का

उत्तम ऐश्वर्य नहीं चाहते, क्योंकि प्रज्ञा यह समझती है कि उत्तम सुख के लिए तथागत के धर्म प्रवचन जन्य सम्पत्ति ही सुख में सहायक है, इसीलिए यह सांसारिक समृद्धि दुःखकारक है यह जानकर दुःख, दुःख का कारणऔर उसका निरोध ज्ञान ही है यह जान लेते हैं॥ ५१ ॥

व्याधिर्ज्ञेयो व्याधिहेतुः प्रहेयः स्वास्थ्यं प्राप्यं भेषजं सेव्यमेवम्।
दुःखं हेतुस्तन्निरोधोऽथ मार्गो ज्ञेयं हेयः स्पर्शितव्यो निषेव्यः ॥५२॥

रोग को जानना चाहिए। रोग का कारण जानकर उसे त्याग देनां चाहिए। स्वास्थ्य को प्राप्त करने के लिए औषधियों का सेवन करना चाहिए। दुःख, उसका कारण, निरोध और उसका उपाय को जानकर त्याज्य को त्यागकर जो सेवनीय है धर्म उसका ग्रहण करना ही उत्तम है॥ ५२ ॥

महाब्रह्मवदिति।

महाब्रह्मा के तरह ही वे दिखते हैं।

सर्वत्र देवभवने ब्राह्म्यादविचलन् पदात्।
प्रतिभासं यथा ब्रह्मा दर्शयत्यप्रयत्नतः॥ ५३ ॥
तद्वन्मुनिरनाभोगान्निर्माणैः सर्वधातुषु।
धर्मकायादविचलन् भव्यानामेति दर्शनम्॥ ५४ ॥

देव भवन में अपने स्थान से एक पग भी बिना चले ही, बिना किसी प्रयत्न के जैसे ब्रह्मा अपनी प्रतिभास (स्वरूप) को दिखाते है। उसी प्रकार मुनि-तथागत भी सभी धातुओं में अनाभोग, अनिर्माण आदि धर्मकाय से अविचलित रूप में ही भव्यों को दर्शन देते हैं॥ ५३-५४ ॥

यद्वद् ब्रह्मा विमानान्न चलति सततं कामधातुप्रविष्टं
देवाः पश्यन्ति चैनं विषयरतिहरं दर्शनं तच्च तेषाम्।
तद्वत् सद्धर्मकायान्न चलति सुतः सर्वलोकेषु चैनं
भव्याः पश्यन्ति शश्वत्सकलमलहरं दर्शनं तच्च तेषाम्॥५५॥

जैसे कि ब्रह्मा अपने विमान में स्थिर रहते हैं किन्तु देवगण उन्हें कामधातु (संसार) में देखते हैं - वे ब्रह्मा उस समय विषयरति को हरण करने वाले के रूप में दिखते हैं। उसी प्रकार सद्धर्म काय से सुगत बिना

चले ही सभी लोकों के बीच में भव्यों को दिखाई देते हैं – वे समस्त मल के हारक के रूप में प्रतीत होते हैं॥ ५५ ॥

स्वस्यैव पूर्वप्रणिधानयोगान् मरुद्‌गणानां च शुभानुभावात्।
ब्रह्मा यथा भासमुपैत्ययत्नान् निर्माणकायेन तथा स्वयंभूः॥५६॥

अपने ही प्रणिधान के योग से मरुद्‌गणों को शुभानुभाव के रूप में दिखाई देते हैं – ब्रह्मा बिना किसी प्रयत्न के उसी प्रकार निर्माण काय के रूप में स्वयंभू तथागत भी दिखाई देते हैं॥ ५६ ॥

अनाभासगमने।

अनाभास गमन के विषय को दिखाते हैं।

च्युतिं गर्भाक्रान्तिं जननपितृवेश्मप्रविशनं
रतिक्रीडारण्यप्रविचरणमारप्रमथनम् ।
महाबोधिप्राप्तिं प्रशमपुरमार्गप्रणयनं
निदर्श्याधन्यानां नयनपथमभ्येति न मुनिः॥ ५७ ॥

तुषित लोक से च्युति, गर्भ में प्रवेश, जन्म, पिता के घर में प्रवेश, रति क्रीडा, जंगल गमन, चङ्क्रमण, मार का निग्रह, महाबोधिप्राप्ति निर्वाण में प्रविष्ट होना आदि धन्य भाग्यवालों को भगवान् दिखाते हैं किन्तु अधन्य-दुर्भगोंको यह सब नहीं दिखाते हैं॥ ५७ ॥

सूर्यवदिति।

सूर्य के तरह ही यह सब है।

सूर्ये यथा तपति पद्मगणप्रबुद्धि-रेकत्र कालसमये कुमुदप्रसुप्तिः।
बुद्धिप्रसुप्तिगुणदोषविधावकल्पः सूर्योऽम्बुजेष्वथ च तद्वदिहार्यसूर्यः॥५८॥

भगवान् सूर्य के तपने पर कमल समूहों का एकत्र विकास कार्य होता है। उसी समय संसार के दूसरे स्थान में (जहाँ सूर्य न हो) कुमुदिनी रात्रि कालीन पुष्प फूलते हैं। उसी प्रकार बुद्धि के प्रसुप्ति जन्य गुण दोष के कारण धर्म सूर्य के उदय होने पर कहीं तो आर्यों की बुद्धि विकसित होती है किन्तु कहीं पर उसी समय उसका कोई प्रभाव नहीं होता॥ ५८ ॥

द्विविधः सत्त्वधातुरविनेयो विनेयश्च। तत्र यो विनेयस्तमधिकृत्य पद्मोपमता स्वछजलभाजनोपमता च।

दो प्रकार के सत्त्व धातु हैं - विनेय और अविनेय। जो विनेय है उसे लेकर कमल की उपमा और स्वच्छ जलपात्र की उपमा दे रहे हैं।

निर्विकल्पो यथादित्यः कमलानि स्वरश्मिभिः।
बोधयत्येकमुक्ताभिः पाचयत्यपराण्यपि॥ ५९ ॥

जैसा कि सूर्य निर्विकल्प होकर अपने किरणों से एक तरफ कमलों को विकसित करता है और दूसरी ओर अन्य कमल पत्तों को (कम लोभी) पकाता (जीर्ण करना) भी है॥ ५९ ॥

सद्धर्मकिरणैरेवं तथागतदिवाकरः।
विनेयजनपद्मेषु निर्विकल्पः प्रवर्तते॥ ६० ॥

सद्धर्म रूपी अपने किरणों से भगवान् तथागत विनेय-जनरूपी कमलों में निर्विकल्प का प्रवर्तन करते हैं॥ ६० ॥

धर्मरूपशरीराभ्यां बोधिमण्डाम्बरोदितः।
जगत्स्फरति सर्वज्ञदिनकृज्ज्ञानरश्मिभिः॥ ६१ ॥

धर्म, रूप-शरीरों से, बोधिमण्डप रूप आकाश में उदित होकर सर्वज्ञ रूपी सूर्य के ज्ञान किरणों से जगत् को प्रकाशित करते हैं॥ ६१ ॥

यतः शुचिनि सर्वत्र विनेयसलिलाशये।
अमेयसुगतादित्यप्रतिबिम्बोदयः सकृत्॥ ६२ ॥

क्योंकि सर्वत्र विनेय जनता रूपी पवित्र-स्व%छ जलाशय में अति पवित्र-निर्मल सुगत रूपी आदित्य का प्रतिबिम्ब का उदय (निरन्तर) होता है॥ ६२ ॥

एवमविकल्पत्वेऽपि सति बुद्धानां त्रिविधे सत्त्वराशौ दर्शनादेशनाप्रवृत्तिक्रममधिकृत्य शैलोपमता।

इस प्रकार अविकल्पत्व के होने पर बुद्धों के तीन प्रकार के सत्त्वराशि के दर्शन, आदेश और प्रवृत्ति क्रम को लेकर पर्वत की उपमा देते हैं।

सदा सर्वत्र विसृते धर्मधातुनभस्तले।
बुद्धसूर्ये विनेयाद्रितन्निपातो यथार्हतः॥ ६३ ॥

निरन्तर, सर्वत्र धर्मधातु-नभस्तल में व्यापक रूप से बुद्ध-सूर्य के

फैलने के कारण सभी विनेय-पर्वतों में वह प्रकाश योग्य रूप से पड़ता है ॥६३॥

उदित इह समन्ताल्लोकमाभास्य यद्वत्
प्रततदशशतांशुः सप्तसप्तिः क्रमेण।
प्रतपति वरमध्यन्यूनशैलेषु तद्वत्
प्रतपति जिनसूर्यः सत्त्वराशौ क्रमेण॥ ६४ ॥

चारों ओर संसार को प्रकाशित करते हुए जैसे सूर्य उदित होते हैं और क्रमशः अपने किरणों को सर्वत्र फैलाते हैं। अपने सातों रंगों को वे समग्र जगत् पर बिना किसी भेदभाव के वर्षाते हैं। उसमें उच्च, मध्य और नीचे भू भाग में क्रमशः जिस प्रकार प्रकाश के किरणें पड़ती हैं उसी प्रकार जिन सूर्य - तथागत भी क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम सत्त्व राशि में क्रमशः ही अपना उत्तम धर्म प्रकाशित करते हैं॥ ६४ ॥

प्रभामण्डलविशेषणे।

प्रभामण्डल के विशेषण में बता रहे हैं।

सर्वक्षेत्रनभस्तलस्फरणता भानोर्न संविद्यते
नाप्यज्ञानतमोऽन्धकारगहनज्ञेयार्थसंदर्शनम्।
नानावर्णविकीर्णरश्मिविसरैरेकैकरोमोद्भवै-
र्भासन्ते करुणात्मका जगति तु ज्ञेयार्थसंदर्शकाः॥ ६५ ॥

सभी क्षेत्र और आकाश में सूर्य का एक साथ प्रकाश करना संभव नहीं है और न ही अज्ञानान्धकार के गहनता को ज्ञेयार्थ से नाश ही किया जा सकता है। इसी प्रकार भगवान् तथागत भी नाना-वर्णों में फैले हुए तेज के विसरण द्वारा - जो अपने प्रत्येक रोम राशि से प्रकट हुए है, ज्ञेय पदार्थ के अर्थ (तत्त्व) को दिखाने के लिए जगत् में करुणा पूर्वक प्रकाशित होते हैं ॥६५॥

बुद्धानां नगरप्रवेशसमये चक्षुर्विहीना जनाः
पश्यन्त्यर्थमनर्थजालविगमं विन्दन्ति तद्दर्शनात्।
मोहान्धाश्च भवार्णवान्तरगता दृष्ट्यन्धकारावृता
बुद्धार्कप्रभयावभासितधियः पश्यन्त्यदृष्टं पदम्॥ ६६ ॥

बुद्धों के नगरों में प्रवेश करते समय, तीक्ष्ण पुण्य कर्मों के शुभोदय से नेत्र विहीन अन्धे भी उस अर्थ तत्त्व को तत्काल ही जानते हों जिससे अनर्थ दूर हो जाता है, वह सब उनके - तथागत के दर्शन के प्रभाव से ही संभव है। संसार रूपी समुद्र में स्थित मोहान्ध भी जो सत्त्वों के चक्षुओं को ढक कर बैठे हैं, बुद्ध-सूर्य के उदय-प्रभा से नेत्रों के उन्मीलन से अदृष्ट तत्त्व को भी देखते ही हैं॥ ६६ ॥

चिन्तामणिवदिति।

चिन्तामणि के सदृश ही।

युगपद्गोचरस्थानां सर्वाभिप्रायपूरणम्।
कुरुते निर्विकल्पोऽपि पृथक् चिन्तामणिर्यथा॥ ६७ ॥
बुद्धचिन्तामणिं तद्वत् समेत्य पृथगाशयाः।
शृण्वन्ति धर्मतां चित्रां न कल्पयति तांश्च सः॥ ६८ ॥

एक साथ देखने वालों के मनोरथों को तत्काल ही जैसे चिन्तामणि पूर्ति करता है उसी प्रकार निर्विकल्प होकर भी तथागत चिन्तामणि पूर्ति करते हैं। बुद्ध चिन्तामणि भी भिन्न आशय वालों के आशयों को जानकर निर्विकल्प रूप से ही विचित्र धर्मों को बताते हैं, वे सत्त्व भी सुनते और अपने-अपने आशयों के अनुरूप ग्रहण करते हैं। कल्पना नहीं करते॥ ६७-६८ ॥

यथाविकल्पं मणिरत्नमीप्सितं धनं परेभ्यो विसृजत्ययत्नतः।
तथा मुनिर्यत्नमृते यथार्हतः परार्थमातिष्ठति नित्यमाभवात्॥६९॥

जैसे अविकल्पमणि रत्न दूसरों के द्वारा चाहे हुए धनों को यत्न बिना ही दे देता है। उसी प्रकार मुनि भी बिना किसी यत्न के योग्य साधकों को नित्य रूप से दूसरों को भव से रक्षा के लिए देते हैं॥ ६९ ॥

दुर्लभप्राप्तभावास्तथागता इति।

तथागत दुर्लभ भावयुक्त होते हैं।

इह शुभमणिप्राप्तिर्यद्वज्जगत्यतिदुर्लभा
जलनिधिगतं पातालस्थं यतः स्पृहयन्ति तम्।
न सुलभमिति ज्ञेयं तद्वज्जागत्यतिदुर्भगे
मनसि विविधक्लेशग्रस्ते तथागतदर्शनम्॥ ७० ॥

जैसे विशिष्ट मणि को प्राप्त करना जगत् में अत्यन्त कठिन है, अतः उसके लिए समुद्र और पाताल तक लोक जाते हैं। उसी प्रकार अत्यन्त दुर्भग मन में, जो विविध क्लेशों से ग्रस्त है, तथागत का दर्शन सुलभ नहीं है। कठिन है॥ ७० ॥

प्रतिश्रुत्काशब्दवदिति।

झञ्झावात के तरह है।

प्रतिश्रुत्कारुतं यद्वत् परविज्ञप्तिसंभवम्।
निर्विकल्पमनाभोगं नाध्यात्मं न बहिः स्थितम्॥ ७१ ॥
तथागतरुतं तद्वत् परविज्ञप्तिसंभवम्।
निर्विकल्पमनाभोगं नाध्यात्मं न बहिः स्थितम्॥ ७२ ॥

झञ्झावात के द्वारा निकाले हुए शब्दों के तरह ही पर (दूसरों के) उपदेश हैं। वे शब्द निविच्कल्प तथा अनाभोग रूप हैं। न अध्यात्म में न बाहर ही हैं। उसी प्रकार तथागत के शब्द भी पर विज्ञप्ति के सदृश हैं जो निर्विकल्प, अनाभोग एवं अध्यात्म तथा बाह्य भी नहीं हैं॥ ७१-७२॥

आकाशवदिति।

आकाश के तरह ही हैं।

निष्किंचने निराभासे निरालम्बे निराश्रये।
चतुष्पथव्यतिक्रान्तेऽप्यरूपिण्यनिदर्शने॥ ७३ ॥
यथा निम्नोन्नतं व्योम्नि दृश्यते न च तत्तथा।
बुद्धेष्वपि तथा सर्वं दृश्यते न च तत्तथा॥ ७४ ॥

शून्य, निराभास, निरालम्ब, निराश्रय, चक्षु के मार्ग से दूर, रूपरहित, अनिदर्शन आकाश में जैसे न नीचे है न ऊपर है तथा न समान है उसी प्रकार बुद्ध में भी वे सब कुछ भी नहीं है॥ ७३-७४॥

पृथिवीवदिति।

पृथिवी के तरह ही हैं।

सर्वे महीरुहा यद्वदविकल्पां वसुंधराम्।
निश्रित्य वृद्धिं वैरूढिं वैपुल्यमुपयान्ति च॥ ७५ ॥

संबुद्धपृथिवीमेवमविकल्पामशेषतः।
जगत्कुशलमूलानि वृद्धिमाश्रित्य यान्ति हि॥ ७६ ॥

जैसे सभी पर्वत पृथिवी को आश्रय बनाकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं और बढ़े पर्वतों के रूप में प्रसिद्ध होते हैं उसी प्रकार संबुद्ध – तथागतरूपी पृथिवी में आश्रित होकर अशेषतः अविकल्प-जगत् के कुशलमूल वृद्धि को प्राप्त होते हैं जाने जाते भी हैं॥ ७६ ॥

उदाहरणानां पिण्डार्थः।

इन उदाहरणों का पिण्डार्थ निम्न है।

न प्रयत्नमृते कश्चिदद्दृष्टः कुर्वन् क्रियामतः।
विनेयसंशयच्छित्त्यै नवधोक्तं निदर्शनम्॥ ७७ ॥
सूत्रस्य तस्य नाम्नैव दीपितं तत्प्रयोजनम्।
यत्रैते नव दृष्टान्ता विस्तरेण प्रकाशिताः॥ ७८ ॥
एतच्छ्रुतमयोदारज्ञानालोकाद्यलंकृताः।
धीमन्तोऽवतरन्त्याशु सकलं बुद्धगोचरम्॥ ७९ ॥
इत्यर्थं शक्रवैडूर्यप्रतिबिम्बाद्युदाहृतिः।
नवधोदाहृता तस्मिन्तत्पिण्डार्थोऽवधार्यते॥ ८० ॥
दर्शनादेशना-व्याप्तिर्विकृतिर्ज्ञाननिःसृतिः।
मनोवाक्कायगुह्यानि प्राप्तिश्च करुणात्मनाम्॥ ८१ ॥
सर्वाभोगपरिस्पन्दप्रशान्ता निर्विकल्पिकाः।
धियो विमलवैडूर्यशक्रबिम्बोदयादिवत्॥ ८२ ॥
प्रतिज्ञाभोगशान्तत्वं हेतुर्धीर्निर्विकल्पता।
दृष्टान्तः शक्रबिम्बादिः प्रकृतार्थसुसिद्धये॥ ८३ ॥
अयं च प्रकृतोऽत्रार्थो नवधा दर्शनादिकम्।
जन्मान्तर्धिमृते शास्तुरनाभोगात् प्रवर्तते॥ ८४ ॥

बिना प्रयत्न के कोई भी कार्य कोई नहीं कर सकता। इसीलिए विनेयों के शंसयों के नाश के लिए ९ प्रकार के उदाहरण दिए गए हैं। सूत्र के नाम से ही उस सूत्र का प्रयोजन प्रष्ट हो जाते हैं। यहाँ यही ९ दृष्टान्त विस्तार पूर्वक रखे गए हैं। इन सूत्रों के प्रारंभ में मैंने ऐसा सुना है इन वाक्यों से उदार

ज्ञान आदि से अलंकृत होकर धीमान् पण्डितराज तत्काल ही समग्र बुद्धज्ञान को बता देते हैं। इसी के लिए शुक्र, वैडुर्य और प्रतिबिम्बों के उदाहरण रखे गए हैं। वे भी ९ प्रकार से रखे हैं जिनका पिण्डार्थ यहाँ दिया गया है। दर्शना, देशना, व्याप्ति, विकृति, ज्ञाननिसृति, मन, वाक्, काय, गुह्य और प्राप्ति - करुणा-मूर्ति तथागतों का। सभी आभोग परिस्पन्दन-प्रशान्तता, निर्विकल्प - जो बुद्धि के हैं, जो विमल - वैडुर्य, शक्र तथा बिम्बों के तरह हैं। प्रतिज्ञा, आभोग की शान्ति, हेतु, धी और उसकी विकल्पहीनता, वे सब दृष्टान्त हैं - शक्र और बिम्ब आदि के जिससे उपर्युक्त कथन की सिद्धि - प्रामाणिकता होती है। यह प्रकृतार्थ जो नव उदाहरणोंसे पल्लवित हैं जो शास्ता के अनाभोग से प्रवृत्त होता है - जन्मान्तर के सिद्धि या तपस्या, अथवा निर्विकल्प बुद्धि के द्वारा यह संभव है॥ ७७-८४॥

एतमेवार्थमधिकृत्योदाहरणसंग्रहे चत्वारः श्लोकाः।

इसी अर्थ को लेकर उदाहरणों का संग्रह है जिसमें चार श्लोक हैं।

यः शक्रवद् दुन्दुभिवत् पयोदवद् ब्रह्मार्कचिन्तामणिराजरत्नवत्।
प्रतिश्रुतिव्योममहीवदाभवात् परार्थकृद्यत्नमृते स योगवित्॥८५॥

जो इन्द्र के तरह, दुन्दुभि, मेघ, ब्रह्मा, सूर्य, चिन्तामणि, राजा, रत्न, प्रतिश्रुति, आकाश और पृथिवी के तरह ही बिना किसी प्रयत्न के परार्थ कृत्य करने वाले योगवित् तथागत हैं॥ ८५ ॥

सुरेन्द्ररत्नप्रतिभासदर्शनः सुदैशिको दुन्दुभिवद् विभो रुतम्।
विभुर्महाज्ञानकृपाभ्रमण्डलः स्फरत्यनन्तं जगदाभवाग्रतः॥८६॥

इन्द्र, रत्न और प्रतिभास का दर्शन, अच्छे उपदेश, जिनकी वाणी दुन्दुभी के तरह ही है। वह तथागत व्यापक महाज्ञान कृपा के मेघमण्डल हैं जो समग्र जगत् को प्रकाशित कर रहे हैं॥ ८६ ॥

अनास्रवाद् ब्रह्मवदच्युतः पदा-दनेकधा दर्शनमेति निर्मितैः।
सदार्कवज्ज्ञानविनिःसृतद्युति-र्विशुद्धचिन्तामणिरत्नमानसः॥८७॥

आस्रवहीन, ब्रह्म के तरह, जो च्युत नहीं है इत्यादि पदों (वाक्यों) से जो जाने जाते हैं - निर्मित रूप में, जो सर्वदा सूर्य के तरह ज्ञान किरणों को बिखेरते हैं और चिन्तामणि रत्न के सदृश विशुद्ध मन वाले हैं॥ ८७ ॥

प्रतिरव इव घोषोऽनक्षरोक्तो जिनानां
गगनमिव शरीरं व्याप्यरूपि ध्रुवं च।
क्षितिरिव निखिलानां शुक्लधर्मौषधीनां
जगत इह समन्तादास्पदं बुद्धभूमिः॥ ८८ ॥

प्रतिध्वनि के तरह जिनका उपदेश है, जो अक्षरों से बताया हुआ नहीं है। जिनका शरीर आकाश के तरह है जो अरूपी तथा ध्रुव है। पृथिवी के तरह सभी औषधियों का आश्रय है जो समीचीन धर्मरूप औषधी हैं, इन सभी पदार्थों का स्थान यह बुद्ध भूमि ही है॥ ८८ ॥

कथं पुनरनेनोदाहरणनिर्देशेन सततमनुत्पन्ना अनिरुद्धाश्च बुद्धा भगवन्त उत्पद्यमाना निरुध्यमानाश्च संदृश्यन्ते सर्वजगति चैषामनाभोगेन बुद्धकार्याप्रतिप्रश्रब्धिरिति परिदीपितम्।

इस उदाहरण के निर्देशन से अनुत्पन्न, निरुद्ध बुद्ध भगवान् उत्पत्तिशील एवं निरोधशील दिखाई देते हैं तब समग्र जगत् में इनके अनाभोग से बुद्ध कार्य की स्थिति कैसे होती है यह दिखा रहे हैं।

शुभं वैडूर्यवच्चित्ते बुद्धदर्शनहेतुकम्।
तद्विशुद्धिरसंहार्यश्रद्धेन्द्रियविरूढिता॥ ८९ ॥
शुभोदयव्ययाद्बुद्धप्रतिबिम्बोदयव्ययः।
मुनिर्नोदेति न व्येति शक्रवद्धर्मकायतः॥ ९० ॥
अयत्नात् कृत्यमित्येवं दर्शनादि प्रवर्तते।
धर्मकायादनुत्पादानिरोधादाभवस्थितेः॥ ९१ ॥
अयमेषां समासार्थ औपम्यानां क्रमः पुनः।
पूर्वकस्योत्तरेणोक्तो वैधर्म्यपरिहारतः॥ ९२ ॥

चित्त में वैडूर्य मणि के दर्शन के तरह ही बुद्ध दर्शन शुभ होता है। उस चित्त की विशुद्धि, असंहार्य श्रद्धा, इन्द्रियों की असङ्गता, शुभ का उदय, अशुभ का नाश, बिम्बों का उदय तथा नाश यह सब दिखाने के बहाने तथागत मुनि का न उदय होता है न नाश होता है जैसा कि शक्र और धर्मकाय के कारण ही इसे जानना चाहिए। प्रयत्नों के बिना ही बुद्ध के कृत्य होते हैं,

उनके प्रदर्शन प्रवृत्त हैं धर्मकाय के कारण जो अनुत्पन्न और अनिरोध रूप है- जब तक जगत् रहता है।

यही इनका संक्षिप्त अर्थ है। उपमाओं का फिर क्रम यहाँ बता रहे हैं। पूर्व का अर्थ उत्तर उपमा से प्रष्ट किया गया है जिसमें वैधर्म्य का परिहार होता है॥८६-९२॥

बुद्धत्वं प्रतिबिम्बाभं तद्वन्न च न घोषवत्।
देवदुन्दुभिवत् तद्वन्न च नो सर्वथार्थकृत्॥ ९३ ॥
महामेघोपमं तद्वन्न च नो सार्थबीजवत्।
महाब्रह्मोपमं तद्वन्न च नात्यन्तपाचकम्॥ ९४ ॥
सूर्यमण्डलवत् तद्वन्न नात्यन्ततमोऽपहम्।
चिन्तामणिनिभं तद्वन्न च नो दुर्लभोदयम्॥ ९५ ॥

बुद्धत्व प्रतिबिम्ब के तरह नहीं है। न ही वह दुन्दुभि घोष के तरह ही है। देव दुन्दुभि के तरह भी नहीं है और वह सर्वथा अर्थ को करने वाला भी नहीं है। महान् मेघ के तरह वह बुद्धत्व नहीं है। और अर्थ के बीज के तरह भी नहीं है। ब्रह्मा के तरह और अत्यन्त पाचक के तरह भी वह बुद्धत्व नहीं है। सूर्य मण्डल के तरह वह नहीं है। अत्यन्त अन्धकार का नाशक भी वह नहीं है। चिन्तामणि के तरह वह नहीं है। और उसका उदय दुर्लभ भी नहीं है॥९३-९५॥

प्रतिश्रुत्कोपमं तद्वन्न च प्रत्ययसंभवम्।
आकाशसदृशं तद्वन्न च शुक्लास्पदं च तत्॥ ९६ ॥
पृथिवीमण्डलप्रख्यं तत्प्रतिष्ठाश्रयत्वतः।
लौक्यलोकोत्तराशेषजगत्कुशलसंपदम्॥ ९७ ॥
बुद्धानां बोधिमागम्य लोकोत्तरपथोदयात्।
शुक्लकर्मपथध्यानाप्रमाणारूप्यसंभवः ॥ ९८ ॥

प्रतिश्रुत्क के तरह वह नहीं है। और प्रत्ययों से उत्पन्न भी वह नहीं है। आकाश के तरह भी वह नहीं है। शुक्लास्पद भी वह नहीं है। पृथिवीमण्डल के तरह भी वह नहीं है। क्योंकि वह तो उसकी भी प्रतिष्ठारूप है। वह (बुद्धत्व) तो समस्त लौकिक, लोकोत्तर जगत् की कुशल सम्पत्ति ही है। इस

प्रकार बुद्धों के बोधिमार्ग में आकर, उसमें लोकोत्तर मार्ग के उदय होने से शुक्लकर्म स्वतः प्रस्फुटित होते हैं उसके लिए बोधि-ध्यान का मार्ग प्रशस्त है। किन्तु उसमें कोई भी लौकिक प्रमाण की स्थिति अथवा उदाहरणों से समझाया नहीं जा सकता। उसमें अप्रमाण आरूप्य की उदाहरणों की संभावना ही नहीं है॥ ९६-९८॥

इति रत्नगोत्रविभागे महायानोत्तरतन्त्रशास्त्रे तथागतकृत्यक्रियाधिकारश्चतुर्थः परिच्छेदः श्लोकार्थसग्रहव्याख्यानतः समाप्तः॥ ४ ॥

रत्नगोत्र विभाग नामक महायानोत्तर तन्त्र शास्त्र में तथागत-कृत्य क्रियाधिकार नामक चतुर्थ परिच्छेद पूर्ण हुआ।

अथानुशंसाधिकारो नाम पञ्चमः परिच्छेदः

अतः परमेष्वेव यथापरिकीर्तितेषु स्थानेष्वधिमुक्तानामधिमुक्त्यनुशंसे षट् श्लोकाः।

इसके बाद ऊपर चर्चित विषयों में अधिमुक्तों के अनुशंसा में छ श्लोक लिखे गए हैं।

बुद्धधातुर्बुद्धबोधिर्बुद्धधर्मा बुद्धकृत्यम्।
गोचरोऽयं नायकानां शुद्धसत्त्वैरप्यचिन्त्यः॥ १ ॥

बुद्ध धातु, बुद्ध बोधि, बुद्ध धर्म और बुद्ध कृत्य बुद्ध गोत्रीय-सत्त्वों के लिए भी अचिन्त्य हैं किन्तु तथागत इन्हें जानते हैं॥ १ ॥

इह जिनविषयेऽधिमुक्तबुद्धि-र्गुणगणभाजनतामुपैति धीमान्।
अभिभवति स सर्वसत्त्वपुण्य-प्रसवमचिन्त्यगुणाभिलाषयोगात्॥२॥

यहाँ जिनों के विषयों में जो अधिमुक्ति बुद्धि होती है, उससे बुद्ध के अनन्त गुणों को रखने की पात्रता उस बुद्धि (व्यक्ति) में उत्पन्न होती है। वह व्यक्ति समस्त संसार के सत्त्वों के पुण्यों को स्वतः ही अपने पुण्यों से ढक देता है, और अचिन्त्य गुणों के अभिलाष रूप योग से यह संभव होता है॥२॥

यो दद्यान्मणिसंस्कृतानि कनकक्षेत्राणि बोध्यर्थिको
बुद्धक्षेत्ररजःसमान्यहरहो धर्मेश्वरेभ्यः सदा।
यश्चान्यः श्रृणुयादितः पदमपि श्रुत्वाधिमुच्येदयं
तस्माद्दानमयाच्छुभाद्बहुतरं पुण्यं समासादयेत्॥ ३ ॥

जो कोई बोधि का अर्थी संस्कृत रत्नों को और अनेक सुवर्ण क्षेत्रों को भी बुद्ध क्षेत्रों के परमाणु के सङ्ख्या के समान धर्मेश्वरों को सदा देता हो, वह व्यक्ति उस दान से जितना पुण्य कमाता है उसके अनन्त गुणों से ज्यादा पुण्य

केवल वह व्यक्ति जो इन ग्रन्थ से एक पद भी सुनता है और सुनाता है, प्राप्त करेगा॥ ३ ॥

यः शीलं तनुवाङ्मनोभिरमलं रक्षेदनाभोगव-
द्धीमान् बोधिमनुत्तरामभिलषन् कल्पाननेकानपि।
यश्चान्यः शृणुयादितः पदमपि श्रुत्वाधिमु%येदयं
तस्माच्छीलमयाच्छुभाद्बहुतरं पुण्यं समासादयेत्॥ ४ ॥
ध्यायेद्ध्यानमपीह यस्त्रिभुवनक्लेशाग्निनिर्वापकं
दिव्यब्रह्मविहारपारमिगतः संबोध्युपायाच्युतः।
यश्चान्यः श्रृणुयादितः पदमपि श्रुत्वाधिमुच्येदयं
तस्माद्ध्यानमयाच्छुभाद्बहुतरं पुण्यं समासादयेत्॥ ५ ॥

जो, शरीर, वचन और मन से अनाभोग दृष्टि से युक्त होकर अनेक कल्पों तक शील का धारण करता हो, उससे वह बहुत ज्यादा पुण्य कमाता है। उसी प्रकार कोई ध्यान करता हो जिससे त्रिभुवन का ही समस्त क्लेशगण का नाश होता हो और दिव्य ब्रह्म विहार में पारङ्गत हो तथा संबोधि के उपायों से अच्युत हो वह जितना पुण्य कमाता है, इन सभी से बहुत ज्यादा पुण्य समूह केवल इस धर्म पर्याय से १ पद श्रवण तथा प्रकाशन करने से प्राप्त करता है॥ ४-५॥

दानं भोगानावहत्येव यस्मा-च्छीलं स्वर्गं भावना क्लेशहानिम्।
प्रज्ञा क्लेशज्ञेयसर्वप्रहाणं सातः श्रेष्ठा हेतुरस्याः श्रवोऽयम्॥ ६ ॥

उपर्युक्त विषयों के विवेचन से यह सिद्ध होता है कि -दान, अनाभोगता, शील, स्वर्ग, भावना, क्लेशहानि, क्लेश-ज्ञेय-आवरणों का नाश यह प्रज्ञा करती है अतः इसके हेतु को हमें जानना चाहिए॥ ६ ॥

एषां श्लोकानां पिण्डार्थो नवभिः श्लोकैर्वेदितव्यः।

इन श्लोकों का पिण्डार्थ नौ श्लोकों से जानना चाहिए।

आश्रये तत्परावृत्तौ तद्गुणेष्वर्थसाधने।
चतुर्विधे जिनज्ञानविषयेऽस्मिन् यथोदिते॥ ७ ॥
धीमानस्तित्वशक्तत्वगुणवत्त्वाधिमुक्तितः।
तथागतपदप्राप्तिभव्यतामाशु गच्छति॥ ८ ॥

अस्त्यसौ विषयोऽचिन्त्यः शक्यः प्राप्तुं स मादृशैः।
प्राप्त एवंगुणश्चासाविति श्रद्धाधिमुक्तितः॥ ९ ॥
छन्दवीर्यस्मृतिध्यानप्रज्ञादिगुणभाजनम्।
बोधिचित्तं भवत्यस्य सततं प्रत्युपस्थितम्॥ १० ॥
तच्चित्तप्रत्युपस्थानादविवर्त्यो जिनात्मजः।
पुण्यपारमिता पूरिपरिशुद्धिं निगच्छति॥ ११ ॥
पुण्यं पारमिताः पञ्च त्रेधा तदविकल्पनात्।
तत्पूरिः परिशुद्धिस्तु तद्विपक्षप्रहाणतः॥ १२ ॥

इन श्लोकों का पिण्डार्थ नौ श्लोकों से जानना चाहिए। आश्रय, उसकी परावृत्ति, उसके गुण, अर्थसाधन तथा चार प्रकार के जिन ज्ञान के विषयों के उदित होने पर तथा अस्तित्व, शक्तत्व, गुणवत्व एवं अधिमुक्ति के कारण धीमान् बोधिसत्त्व तत्काल ही भव्य तथागत पद को प्राप्त कर लेता है। उसकी चित्त वृत्ति उस अवस्था में ऐसी होती है – यह विषय अचिन्त्य है, मेरे जैसे व्यक्तियों के द्वारा यह अचिन्त्य है इस प्रकार के गुण के प्राप्ति के कारण तथा अधिमुक्ति से भी यह उपलब्ध होता है। छन्द, वीर्य, स्मृति, ध्यान तथा प्रज्ञा आदि गुणों का स्थान-भूत यह बोधिचित्त निरन्तर उपस्थित होता है उस व्यक्ति के लिए। ऐसे चित्त के प्रत्युपस्थान द्वारा यह जिनात्मज अविवर्त्य रूप से पुण्यात्मक पारमिता के परिशुद्धि में पूर्ण हो जाता है॥ ७-१२॥

दानं दानमयं पुण्यं शीलं शीलमयं स्मृतम्।
द्वे भावनामयं क्षान्तिध्याने वीर्यं तु सर्वगम्॥ १३ ॥

पुण्य पारमितायें पाँच हैं, तीन प्रकार के अविकल्पों से उनकी पूर्णता तथा परिशुद्धता होती है और उसके विपक्ष के हानि से भी यह होता है।

दान, दानमय पुण्य, शील, शीलमय स्मृति, क्षान्ति तथा ध्यान जो भावनामय हैं और वीर्य सभी में समान रूप में स्थित है॥ १३ ॥

त्रिमण्डलविकल्पो यस्तज्ज्ञेयावरणं मतम्।
मात्सर्यादिविपक्षो यस्तत् क्लेशावरणं मतम्॥ १४ ॥
एतत्प्रहाणहेतुश्च नान्यः प्रज्ञामृते ततः।
श्रेष्ठा प्रज्ञा श्रुतं चास्य मूलं तस्माच्छ्रुतं परम्॥ १५ ॥

त्रिमण्डल का विकल्प - वह ज्ञेयावरण है। मात्सर्य आदि का विकल्प क्लेशावरण कहा गया है। इनके प्रहाण का हेतु प्रज्ञा ही है उसके अतिरिक्त अन्य नहीं है। प्रज्ञा ही श्रेष्ठ है इसका मूल भी श्रुत है और उसका अन्त्य भी प्रज्ञा ही है॥ १४-१५॥

इतीदमाप्तागमयुक्तिसंश्रया-दुदाहृतं केवलमात्मशुद्धये।
धियाधिमुक्त्या कुशलोपसंपदा समन्विता ये तदनुग्रहाय च॥१६॥

इस प्रकार यह आप्तों के आगम और युक्ति के संश्रय पूर्ण जो विषय रखे गए हैं वे केवल आत्मशुद्धि के लिए ही बताए गए हैं। ज्ञानपूर्वक अधिमुक्ति से और कुशल संपत्ति से भी जो अन्वित हैं उनके अनुग्रह हेतु भी यह लिखा गया है॥ १६ ॥

प्रदीपविद्युन्मणिचन्द्रभास्करान् प्रतीत्य पश्यन्ति यथा सचक्षुषः।
महार्थधर्मप्रतिभाप्रभाकरं मुनिं प्रतीत्येदमुदाहृतं तथा॥ १७ ॥

प्रदीप, विद्युत्, मणि, चन्द्र और सूर्य के सहयोग से लोग संसार को देखते हैं। किन्तु महार्थ-धर्म-प्रतिभा रूप मुनि का आश्रय ग्रहण करके वे उदाहरण यहाँ रखे गए हैं॥ १७ ॥

यदर्थवद्धर्मपदोपसंहितं त्रिधातुसंक्लेशनिबर्हणं वचः।
भवेच्च यच्छान्त्यनुशंसदर्शकं तदुक्तमार्षं विपरीतमन्यथा॥१८॥

जो यह जिस अर्थ को लेकर धर्मपदों से संयुक्त त्रिधातु संक्लेश को हटाने वाले वचन हैं। निश्चय ही वे वचन शान्ति के अनुशंसक हैं वे ऋषि के द्वारा बताए गए हैं इससे अन्यथा जो भी है वह धर्मपदों के विपरीत है॥ १८ ॥

यत्स्यादविक्षिप्तमनोभिरुक्तं शास्तारमेकं जिनमुद्दिशद्भिः।
मोक्षाप्तिसंभारपथानुकूलं मूर्ध्ना तदप्यार्षमिव प्रतीच्छेत्॥ १९ ॥

जो वचन कहे गए हैं वे, अविक्षिप्त मानसिक स्थिति में अर्थात् समाधि के अवस्था में कहे गए हैं। वे निश्चय ही एक ही शास्ता को प्रतिपादित करते हैं। और जिनको उद्देश करके ही बताए गए हैं। साथ ही वे मोक्ष प्राप्ति के विशालपथ के अनुकूल हैं, अतः उन्हें ऋषि - जिन - तथागत के तरह ही शिर से (प्रणाम करते है) धारण करते हैं॥ १९ ॥

यस्मान्नेह जिनात् सुपण्डिततमो लोकेऽस्ति कश्चित्क्वचित्
सर्वज्ञः सकलं स वेद विधिवत्तत्त्वं परं नापरः।
तस्माद्यत्स्वयमेव नीतमृषिणा सूत्रं विचाल्यं न तत्
सद्धर्मप्रतिबाधनं हि तदपि स्यान्नीति भेदान्मुनेः॥ २० ॥

इस जगत् में जिन-तथागत से बढ़कर कोई भी पण्डित कहीं भी नहीं है। वे सर्वज्ञ हैं अतएव विधिवत् सभी तत्त्वों को जानते हैं और इनसे परे कोई भी तत्त्व नहीं है। इसीलिए उन्होंने स्वयं जिनसूत्रों का उपदेश किया है उसे किसी को भी नहीं विगाड़ना चाहिए। यदि कोई उसे क्षति पहुँचाते हैं तो यह सद्धर्म के प्रति अपवाद है तथा धर्म का भेद भी कहलाता है॥ २० ॥

आर्याश्चापवदन्ति तन्निगदितं धर्मं च गर्हन्ति यत्
सर्वः सोऽभिनिवेशदर्शनकृतः क्लेशो विमूढात्मनाम्।
तस्मान्नाभिनिवेशदृष्टिमलिने तस्मिन्निवेश्या मतिः
शुद्धं वस्त्रमुपैति रङ्गविकृतिं न स्नेहपङ्काङ्कितम्॥ २१ ॥

जो इस धर्म की निन्दा करते हैं वे आर्यों का भी अपवाद करते हैं यह सब अन्य दुष्कृत मलों के अभिनिवेश का फल है और विमूढमति व्यक्तियों का क्लेश ही है। अतएव अभिनिवेश के द्वारा मलीन दृष्टियुक्त व्यक्ति या सिद्धान्तों में बुद्धि नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि शुद्ध वस्त्र में ही नया रङ्ग चढ़ता है पहले से ही अन्यरंग चढ़े हुए वस्त्रों में अन्य कोई रङ्ग नहीं चढ़ता॥२१॥

धीमान्द्यादधिमुक्तिशुक्लविरहान् मिथ्याभिमानाश्रयात्
सद्धर्मव्यसनावृतात्मकतया नेयार्थतत्त्वग्रहात्।
लोभग्रेधतया च दर्शनवशाद्धर्मद्विषां सेवना-
दाराद्धर्मभृतां च हीनरुचयो धर्मान् क्षिपन्त्यर्हताम्॥ २२ ॥

बुद्धि के मलीनता से, अधिमुक्ति शुक्ल कर्मों के न होने से, मिथ्या अभिमान के कारण, सद्धर्म के व्यसन के अभाव होने से, नेयार्थ तत्त्वों के ग्रहण से, लोभ में फँसने के कारण, विकृत दर्शनों के कारण, धर्म के द्वेषी जनों के संगत के कारण, धर्म के ग्राहक किन्तु हीन रुचि वालों को देखकर ही सामान्य लोग सद्धर्म की निन्दा करते है, जिसे आर्य अपनाते हैं॥ २२ ॥

नाग्नेर्नोग्रविषादहेर्न वधकान्नैवाशनिभ्यस्तथा
भेतव्यं विदुषामतीव तु यथा गम्भीरधर्मक्षतेः।
कुर्युर्जीवितविप्रयोगमनलव्यालारिवज्राग्नय-
स्तद्धेतोर्न पुनर्व्रजेदतिभयामावीचिकानां गतिम्॥ २३ ॥

न अग्नि से, न उग्रविष से, न ही वधिकों से, न वज्रों से ही विद्वानों को डरना चाहिए किन्तु गंभीर धर्म के क्षति से बहुत ज्यादा डरना चाहिए। उपर्युक्त हिंसक पदार्थ तो केवल इस शरीर को समाप्त कर सकते हैं किन्तु जो इस उत्तम धर्म को क्षति पहुँचाते हैं वे निश्चय ही नरक की गति को प्राप्त करते हैं॥ २३ ॥

योऽभीक्ष्णं प्रतिसेव्य पापसुहृदः स्याद्बुद्धदुष्टाशयो
मातापित्ररिहद्वधाचरणकृत् संघाग्रभेत्ता नरः।
स्यात्तस्यापि ततो विमुक्तिरचिरं धर्मार्थनिध्यानतो
धर्मे यस्य तु मानसं प्रतिहतं तस्मै विमुक्तिः कुतः॥ २४ ॥

जो निरन्तर पापियों के संगत के कारण बुद्ध के प्रति भी दुष्टाशय रखता है और माता और पिता की हत्या भी करता है और संघ का भेदन भी करता हो वह भी सद्धर्म का सेवन पूर्वक चित्त की शुद्धि करता है तो उसका उन जघन्य कृत्यों से मुक्ति मिलती है तथा अन्ततः निर्वाण की ओर उन्मुख होता है किन्तु जिस व्यक्ति का मन धर्म के विरोध में लगा हुआ होता है उसकी विमुक्ति कैसे संभव है? ॥ २४ ॥

रत्नानि व्यवदानधातुममलां बोधिं गुणान् कर्म च
व्याकृत्यार्थपदानि सप्त विधिवद्यत् पुण्यमाप्तं मया।
तेनेयं जनतामितायुषमृषिं पश्येदनन्तद्युतिं
दृष्ट्वा चामलधर्मचक्षुरुदयाद्बोधिं परामाप्नुयात्॥ २५ ॥

सद् रत्नों का संचयपूर्वक निर्मल धातुओं का, बोधि का, गुणों का और बुद्ध के कृत्यों का विवरणपूर्वक जो सप्त पदोंका (सप्त वज्र पद १, १) व्याख्यान मैंने किया है, उससे जो पुण्य प्राप्त किए हैं, उस पुण्य के बल से अनन्त काल तक अनन्त आयु वाले तथागत का साक्षात्कार समस्त सत्त्वगण

करते रहें और उनका दर्शन पाकर अमल धर्मचक्षु के उदय से परम बोधि को प्राप्त करें॥ २५ ॥

एषामपि दशानां श्लोकानां पिण्डार्थस्त्रीभिः श्लोकैर्वेदितव्यः।

इन दश श्लोकों का पिण्डार्थ तीन श्लोकोंसे जानना चाहिए।

यतश्च यन्निमित्तं च यथा च यदुदाहृतम्।
यन्निष्यन्दफलं श्लोकैश्चतुर्भिः परिदीपितम्॥ २६ ॥
आत्मसंरक्षणोपायो द्वाभ्यामेकेन च क्षतेः।
हेतुः फलमथ द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां परिदीपितम्॥ २७ ॥
संसारमण्डलक्षान्तिर्बोधिप्राप्तिः समासतः।
द्विधा धर्मार्थवादस्य फलमन्त्येन दर्शितम्॥ २८ ॥

जहाँ से, जिस निमित्त से, यथार्थ रूप में जिसको उदाहृत किया गया है उसका निष्यन्द (रस) फल चार श्लोकों के द्वारा उद्घाटित हुआ है। आत्मसंरक्षण का उपाय दो और एक के क्षति से, हेतु और फल दो श्लोकों से परिदीपित किया गया है। संसार मण्डल की क्षान्ति तथा बोधि की प्राप्ति संक्षेप में दो प्रकारों से तथा धर्म-अर्थवाद का फल अन्तिम श्लोक से दर्शाया (२५वें) गया है॥ २६-२८ ॥

इति रत्नगोत्रविभागे महायानोत्तरतन्त्रशास्त्रेऽनुशंसाधिकारो नाम पञ्चमः परिच्छेदः श्लोकार्थसंग्रहव्याख्यानतः समाप्तः॥ ५ ॥

इस प्रकार रत्न गोत्र विभाग में महायान तन्त्रोत्तर शास्त्र में अनुशंसाधिकार नामक पाँचवाँ परिच्छेद टीका सहित व्याख्यान पूर्ण हुआ।

यह ग्रन्थ पूरा हुआ।

Other books of related interest
published by us:

1. ***A Concise Dictionary of Indian Philosophy*** by *John Grimes*
2. ***The Aphorisms of Siva*** trans. with exposition and notes by *Mark S.G. Dyczkowski*
3. ***A Journey in the World of the Tantras*** by *Mark S.G. Dyczkowski*
4. **स्पन्दप्रदीपिका** ***Spandapradīpikā*** (Sanskrit) — A Commentary on the Spandakārikā by Bhagavadutpalācārya Edited by *Mark S.G. Dyczkowski*
5. ***Vijnana Bhairava : The Practice of Centring Awareness*** trans. and commentary by *Swami Lakshman Joo*
6. ***Abhinavagupta's Commentary on the Bhagavad Gita : Gītārtha Saṁgraha*** trans., introd. & notes by *Boris Marjanovic*
7. ***Stavacintāmaṇi*** of Bhaṭṭa Nārāyaṇa with the Commentary by Kṣemarāja **स्तवचिन्तामणि:** Translated from Sanskrit with Introduction and Notes by *Boris Marjanovic*
8. ***Aspects of Tantra Yoga*** by *Debabrata SenSharma*
9. ***An Introduction to the Advaita Saiva Philosophy of Kashmir*** by *Debabrata SenSharma*
10. **आगम-संविद्** ***Āgama-Saṁvid*** (Sanskrit) डॉ० कमलेश झा
11. ***The Khecarīvidyā of Ādinātha*** : A critical edition and annotated translation of an early text of ***haṭhayoga*** by *James Mallinson*

Other books of related interest published by us

11. ***The Khecarīvidyā of Ādinātha*** : A critical edition and annotated translation of an early text of ***haṭhayoga*** by *James Mallinson*
12. ***Shaivism in the Light of Epics, Puranas and Agamas*** by N.R. Bhatt
13. ***The Hindu Pantheon in Nepalese Line Drawings*** : Two Manuscripts of the Pratiṣṭhālakṣaṇasārasamuccaya compiled by *Gudrun Buhnemann*
14. ***Selected Writings of M.M. Gopinath Kaviraj***
15. **शिव-संबोध और गंगा प्रतीक** - डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
16. ***Śrī Tantrālokaḥ*** (Sanskrit Text with English Translation) (3 vols.) by *Gautam Chatterjee*
17. ***Fundamentals of the Philosophy of Tantras*** by *Manoranjan Basu*
18. ***Yantra Images*** Compiled and edited by *Dilip Kumar*
19. ***White Shadow of Consciousness***: Recognition of the actor by *Gautam Chatterjee*
20. ***The Stanzas on Vibration*** by *Mark S.G. Dyczkowski*
21. **Tantrasāra** (Text with English Translation) by *Gautam Chatterjee.*

डॉ० काशीनाथ न्यौपाने संस्कृत वाङ्मय के विशिष्ट साधक हैं। इन्होने वाराणसी में रहकर प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी योगीन्द्रानन्द जी के सान्निध्य में वेदान्त, न्याय, मीमांसा, बौद्धदर्शन, बौद्धतन्त्र, शैवदर्शन, शाक्ततन्त्र, पालि, प्राकृत एवं जैन दर्शन का गहन अध्ययन किया है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से पूर्वमीमांसा एवं बौद्धदर्शन में स्वर्णपदक सहित आचार्य करने के बाद विद्यावारिधि उपाधि प्राप्त किया है।

संस्कृत लेखन में सिद्धहस्त डॉ० न्यौपाने द्वारा लिखित मीमांसा पदार्थ विज्ञानम्, मीमांसातर्कभाषा, मीमांसानयभूषनम्, बौद्धदर्शनभूमिः, बौद्धप्रमाणशास्त्रम्, वज्रयानमहाशास्त्रम्, सौत्रान्तिकदर्शनम्, वज्रयोगसाधना, बौद्धागमरहस्यम्, दर्शनसंदोहः, तारिणीवरिवस्या, लाहिडी क्रियायोग संहिता आदि मौलिक कृतियाँ संग्रहणीय ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं जो विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी निर्धारित हैं।

नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व रिसर्च डाइरेक्टर डॉ० न्यौपाने सम्प्रति नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डु में बौद्धदर्शन विभाग के रूप में कार्यरत हैं।

ISBN 81-86117-25-3
9 788186 117255

₹ 425